मन : रहस्य और निग्रह

श्री स्वामी शिवानन्द

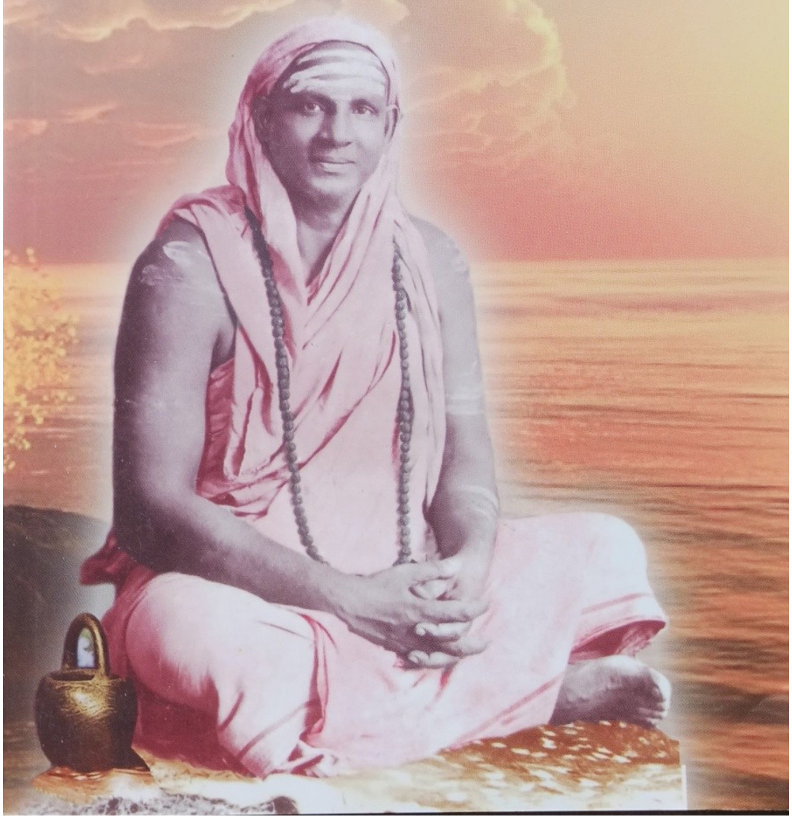

मन : रहस्य और निग्रह

MIND-ITS MYSTERIES AND CONTROL

का हिन्दी अनुवाद

लेखक

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

SERVE LOVE MEDITATE REALIZE
THE DIVINE LIFE SOCIETY

प्रकाशक

द डिवाइन लाइफ सोसायटी

पत्रालय : शिवानन्दनगर- २४९१९२

जिला : टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत

www.sivanandaonline.org, www.dishq.org

चतुर्थ हिन्दी संस्करण : २००५ :

पंचम हिन्दी संस्करण २०१८

(१,००० प्रतियां)

© द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी

ISBN 81-7052-063-0 HS 97

PRICE : ₹ 205/-

'द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए स्वामी पद्मनाभानन्द
द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी प्रेस,
पो. शिवनन्दनगर- २४९ १९२, जिला टिहरी गढ़वाल,
उत्तराखण्ड' में मुद्रित ।
For online orders and Catalogue visit: disbooks.org

पत्र

ॐ

१ जुलाई १९४६

प्रिय धीरेन्द्र

भयभीत न हों। निःसन्देह मन अतीव दुर्दान्त है। बार-बार के प्रयास से आप इसे पूर्णतया वश में कर सकते हैं।

आप मन के स्वामी हैं। अभ्यास तथा वैराग्य द्वारा अपने प्रभुत्व की दृढ़तापूर्वक घोषणा करें पूर्ण आत्मविजय से निष्पन्न होने वाले अधिकार, आनन्द तथा वैभव का अनुभव करें।

मन का निष्ठुरता से निरोध करें। वासनाओं का उन्मूलन करें। वासनाओं के समाप्त होते ही मन आपका दास बन जायेगा। निष्काम बनें और विजयी हों।

आप अपनी आदिम स्वतन्त्रता में विश्राम करें!

-स्वामी शिवानन्द

प्रार्थना

हे दृग्गोचर! हे आराध्यदेव ! हे परम तत्त्व! आप अनन्त आकाश से ले कर मेरे पैरों मेरे के नीचे की घास की नन्हीं पत्ती तक इस विशाल ब्रह्माण्ड में व्याप्त तथा अन्तः प्रविष्ट हैं। आप इन समस्त नाम-रूपों के आधार हैं। आप मेरे नेत्रों के तारे, मेरे हृदय के प्राण, मेरे जीवन के जीवन, मेरी आत्मा की आत्मा, मेरी बुद्धि तथा इन्द्रियों के प्रकाशक, के मधुर अनाहत संगीत तथा मेरे स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीरों के सारतत्त्व हैं।

मैं आपको ही इस ब्रह्माण्ड का महान् शासक तथा अपने शरीर-त्रय का अन्तर्यामी मानता हूँ। हे प्रभो! मैं आपको बारम्बार साष्टांग प्रणाम करता हूँ। आप ही मेरे एकमात्र शरण हैं। हे करुणा और प्रेम के सागर! मैं आप पर ही विश्वास रखता हूँ। मेरा उद्धार करें, मुझे प्रबुद्ध करें, मेरा पथ-प्रदर्शन करें तथा मेरी रक्षा करें। मेरे आध्यात्मिक पथ के अवरोधों को दूर करें। हे जगद्गुरु! अज्ञानावरण को हटायें। अब मैं और अधिक, एक क्षण के लिए भी इस शरीर इस जीवन के क्लेशों को सहन नहीं कर सकता। मुझे शीघ्र दर्शन दें। हे प्रभो! मैं लालावित हो रहा हूँ। मैं द्रवित हो रहा हूँ। मेरी भक्तिमयी आन्तरिक प्रार्थना पर ध्यान दें, ध्यान दें। हे प्रभो ! निष्ठुर न बनें। आप दीन बन्धु हैं। आप अधम-उद्धारक हैं। आप पतितपावन हैं।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

प्रकाशक का वक्तव्य

यद्यपि परम पूज्य श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की सभी पुस्तकें लोकप्रिय है; किन्तु 'Mind Its Mysteries and Control' नामक पुस्तक सर्वाधिक लोकप्रिय है। यही कारण है कि अंगरेजी में इसके अनेक संस्करण प्रकाशित होने पर भी इसकी माँग बराबर बनी हुई है। हमें खेद है कि हिन्दी जनता के हार्दिक अनुरोध के होते हुए भी बहुत दिनों से इसका हिन्दी-संस्करण प्रकाशित नहीं हो सका। यह सन्तोष का विषय है कि इसका नवीन संस्करण अपने नवीन रूप में सुधी जनता की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है। इसका प्रथम संस्करण दो भागों में प्रकाशित हुआ था जिससे एक ही प्रकार का विषय कई स्थानों पर बिखर गया था। नवीन संस्करण में सभी सम्बद्ध विषयों को एक ही शीर्षक के अन्तर्गत लाने का प्रयास किया गया है। आशा है कि इससे यह संस्करण पूर्वापेक्षा अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रस्तुत पुस्तक में अनेक आध्यात्मिक ग्रन्थों के प्रणेता, अध्यात्मविद्या-विशारद योगीराज श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती जी ने मन की रचना, उसकी कार्यविधि, उसकी अलौकिक शक्तियाँ तथा उनके समुचित प्रयोग द्वारा दिव्यानन्द की प्राप्ति का वर्णन बड़े विस्तृत, सुबोध और सरल ढंग से किया है। संक्षेप में यह पुस्तक मन की फिलासफी पर एक छोटा-सा विश्व ज्ञानकोश है जिसमें विद्वान् लेखक ने अपने गम्भीर अध्ययन और यौगिक आत्मानुभव के आधार पर मन के समस्त रहस्यों का उद्घाटन किया है। इस संसार में जितने भी उच्च कोटि के साधक तथा सन्त-महात्मा हुए हैं, उनका कहना है कि यह संसार मन का खेल है। मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण बनता है। यदि आप विश्व विजय प्राप्त करना चाहते हैं, तो सबसे पहले मन को विजित करें। मन की - विजय के उपरान्त संसार की किसी अन्य वस्तु के विजय की आवश्यकता नहीं रहती। मन का साम्राज्य ही सच्चा साम्राज्य है। जिसने श्रवण, मनन और निदिध्यासन के सतत अभ्यास से मन को वश में कर लिया है, जो धारणा, ध्यान और समाधि के दिव्यानन्द की सरिता में गोते लगा चुका है, उस महापुरुष के लिए राजाधिराजों का सिंहासन भी तुच्छ और निर्मूल्य है। सत्यं शिवं, सुन्दरम् के पुनीत ध्येय की ओर अग्रसर होने वाले जिज्ञासु साधक के लिए जहाँ यह पुस्तक परम उपयोगी है, वहाँ साधारण संसारी पुरुषों के लिए भी इस पुस्तक का कम महत्व नहीं है। साधारण गृहस्थ इस पुस्तक के श्रद्धापूर्वक अध्ययन और तदनुकूल आचरण से अपने दैनिक जीवन और सांसारिक व्यवहारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकते हैं। इस पुस्तक में अनेक नवीन विषयों का समावेश किया गया है जो साधना के लिए सर्वथा अनूठी वस्तु है।

पुस्तक के हिन्दी अनुवाद की भाषा अत्यन्त सरल, सुबोध, सरस और माधुर्य से भरी हुई है। कहीं-कहीं कविता की धारा स्वच्छन्द, मस्त सरिता की तरह बहती चली जाती है। पुस्तक के कई अंश इतने प्रभावशाली हैं कि पुस्तक पढ़ते ही हृदय-सागर में अनिर्वचनीय आनन्द की उत्ताल तरंगें उठने लगती हैं। पुस्तक की भाषा हृदयस्पर्शी है और उसमें इतनी ताकत मौजूद है कि वह दिलों को हिला सके, दिमागों में परिवर्तन कर सके।

आशा है, प्रेमी पाठक प्रस्तुत पुस्तक से लाभ उठायेंगे; इसी में हमारे प्रयास की मफलता है।

- द डिवाइन लाइफ सोसायटी

प्रस्तावना

हममें से प्रत्येक व्यक्ति सुख की खोज में संलग्न है; किन्तु इस आनन्द की प्राप्ति के लिए हमने जिस उपाय का अवलम्बन किया है, वह ठीक नहीं है। प्रस्तुत आनन्द प्राप्ति - की खोज के मार्ग में हम भटक गये हैं। हम जीवन भर तो सांसारिक कामों में अनुरक्त रहते हैं। बालपन से ले कर वृद्धावस्था तक यह मोह हमारे पीछे लगा ही रहता है। बचपन में माता की स्नेहमयी गोद, खेल-खिलौने, युवक होने पर ढेर-की-ढेर पुस्तकें और विश्वविद्यालय की उपाधियाँ, संसार में प्रवेश के समय पत्नी प्रेम और धन कमाने की अतृप्त लालसा, सन्तान की इच्छा अभिमान और झूठे गौरव के विचार आदि के मोह में हम लिप्त रहते हैं।

किन्तु इस संसार में पुत्र, दारा और प्राण से भी बढ़ कर एक वस्तु है जो आत्मा या पुरुष के रूप में आपके अन्तस्तल या हृदयदेश में छिपी हुई है। हम सांसारिक विषयों से मन को हटा कर, इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर, ध्यान, तपस्या, समाधि और योग-साधना द्वारा ही अपने अन्दर छिपी हुई इस दिव्य शक्ति को प्राप्त कर सकते हैं।

मनुष्य अविद्या की तीन ग्रन्थियों अज्ञान, इच्छा और कर्म के कारण जन्म, मृत्यु और रोग की निरन्तर बहने वाली धारा में गिरता रहता है। बाह्य पदार्थों को देखने और इहलौकिक आनन्दोपभोग की ओर मन की स्वाभाविक प्रवृत्ति आत्म-साक्षात्कार में बाधक है। वह परब्रह्म, अन्तः नियन्त्रक, विनश्वर पदार्थों में अविनाशी, अनित्यों में नित्य और अचेतनों में चेतन भगवान् सब प्राणियों के हृदय मन्दिर में विराजमान है जो उस भगवान् के दर्शन कर लेता है, वह शाश्वत शान्ति और दिव्यानन्द प्राप्त करता है। जरा,

यह सच है कि आत्मा या ब्रह्म प्रत्येक प्राणी में छिपा हुआ है; परन्तु वही इसके दर्शन कर पाता है जिसका मन शुद्ध, पवित्र और उसके पूर्ण नियन्त्रण में है।

मन और इन्द्रियों पर नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए हमें प्रकृति विज्ञान की पूरी जानकारी और कठिन मनोनिग्रह की आवश्यकता है; क्योंकि जैसा ऊपर कहा गया है, मानस-तत्त्व का पूर्ण ज्ञान तथा मन और इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण करके ही हम आत्मा या सच्चे सुख को प्राप्त कर सकते हैं।

जिसने मन के स्वभाव और क्रिया-पद्धति को पूर्णतया समझ लिया है, उसके लिए मनोनिग्रह बड़ा सरल है। सम्पूर्ण साधना का लक्ष्य मनोजय है जिससे आत्म-ज्ञान मिलता है और जीव जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा पा लेता है।

मन को वशीभूत कर राजयोगी दर्शन, ध्यान और समाधि प्राप्त करते हैं। इसी की सहायता से वेदान्तियों को श्रवण, मनन और निदिध्यासन की आत्मिक शक्तियाँ सुलभ हो जाती हैं। इसी से भक्तगण भगवान के चरणारविन्दों के ध्यान में लीन हो जाते हैं। यह सब मनोनिग्रह के महत्व का ही प्रसाद है।

मन के दृढ़ नियन्त्रण का नाम योग है। योग एकता है। योग भगवान् के साथ समरसता है। जब पाँचों इन्द्रियों सहित मन शान्त हो जाता है, तभी परमानन्द, अनन्त ज्ञान, अमरता और परम शान्ति की उपलब्धि होती है। जिसका मन पर पूर्ण नियन्त्रण है, वह अपने जीवन के लक्ष्य को सुगमता से प्राप्त कर लेता है; क्योंकि इस शरीर रथ को खींचने वाली इन्द्रियाँ उसके लिए अच्छे घोड़ों की तरह अपना कार्य सम्पादन करती है।

इस पुस्तक में मन को नियन्त्रित करने के कुछ क्रियात्मक उपाय बतलाये गये हैं। इसलिए यह आत्म-साक्षात्कार के पथ पर चलने वाले साधकों के लिए बड़ी सहायक सिद्ध होगी। इसमें मन को नियन्त्रित करने के योग के विभिन्न उपायों का सरल, सुबोध भाषा में वर्णन किया गया है। यह पुस्तक निरन्तर तीव्र अध्ययन के लिए है; क्योंकि इसमें योग के साधकों के लिए क्रियात्मक अनुभव, निर्देश और सुझाव हैं। यदि कोई भी पाठक इस पुस्तक के अध्ययन से सत्य और आत्म-साक्षात्कार के पथ पर आरूढ़ हो सका, , तो मैं अपने प्रयत्नों को सफल समझँगा।

मेरी शुभ कामना है कि परमात्मा आपको आत्मबल प्रदान करें जिससे आप अपने मन पर विजय प्राप्त कर सकें, आपके जीवन में चिरस्थायी शान्ति और आत्मानन्द की प्राप्ति हो! आप कैवल्य प्राप्त करें, यही परम प्रभु से विनय है।

-स्वामी शिवानन्द

विषय-सूची

पत्र....3
प्रार्थना....4
प्रकाशक का वक्तव्य....5
प्रस्तावना....6
परिच्छेद- १....13
मन क्या है?....13
परिच्छेद- २....29
मन और शरीर....29
परिच्छेद- ३....34
मन, प्राण और कुण्डलिनी....34
परिच्छेद-४....37
मन और आहार....37
परिच्छेद-५....40
अवस्था - त्रय....40
परिच्छेद- ६....45
गुण- त्रय....45
परिच्छेद-७....48
मानसिक अवस्थाएँ....48
परिच्छेद-८....56
मानसिक शक्ति....56
परिच्छेद-९....60
दोष-त्रय....60
परिच्छेद- १०....62
शुद्ध और अशुद्ध मन....62
परिच्छेद- -११....66

वृत्तियाँ......66

परिच्छेद- १२......70

प्रत्यक्ष ज्ञान का सिद्धान्त......70

परिच्छेद- १३......77

चित्त और स्मृति......77

परिच्छेद- १४......82

संस्कार......82

परिच्छेद- १५......89

संकल्प......89

परिच्छेद- १६......93

विचार ही संसार की सृष्टि करता है......93

परिच्छेद-१७......99

अविद्या और अहंकार......99

परिच्छेद- १८......103

विचार-शक्ति......103

परिच्छेद- १९......113

विचार-संस्कृति......113

परिच्छेद-२०......122

वासनाएँ......122

परिच्छेद- २१......127

कामनाएँ......127

परिच्छेद- २२......133

राग-द्वेष......133

परिच्छेद-२३......138

सुख तथा दुःख......138

परिच्छेद- २४......143

विवेक......143

परिच्छेद-२५......144

वैराग्य और त्याग......144

परिच्छेद- २६......149

इन्द्रिय-संयम......149

परिच्छेद-२७......154

मौन तथा आत्मनिरीक्षण......154

परिच्छेद- २८......159
कुवृत्तियाँ तथा उनका उन्मूलन......159
परिच्छेद- २९......180
सद्गुणों का संवर्धन......180
परिच्छेद-३०......182
मन के निग्रह की विधि......182
परिच्छेद - ३१......202
धारणा......202
परिच्छेद-३२......209
ध्यान......209
परिच्छेद-३३......222
ध्यान में अनुभव तथा बाधाएँ......222
परिच्छेद - ३४......232
समाधि......232
परिच्छेद-३५......239
मनोनाश......239
परिच्छेद - ३६......243
मन की तुलना......243
परिच्छेद - ३७......247
ज्ञानयोग का सार......247
परिच्छेद-३८......257
जीवन्मुक्त पुरुष में मन......257
परिच्छेद - ३९......261
एक योगी की शक्तियाँ......261
परिच्छेद-४०......263
गुरु की आवश्यकता......263
परिच्छेद-४१......265
साधकों को संकेत......265
परिशिष्ट-१......269
मन के प्रति......269
परिशिष्ट-२......294
अतीन्द्रिय-संवेदन......294
परिशिष्ट-३......305

मनोनाश...305

मन : रहस्य और निग्रह

परिच्छेद- १

मन क्या है?

"*यो ह वा आयतनं वेदायतनं ह स्वानां भवति मनो ह वा आयतनम्*"

—जो आयतन को जानता है, वह स्वजातियों का आयतन (आश्रय) होता है। निश्चय मन ही आयतन है।

(छान्दोग्य उपनिषद् ५-१-५)

जो आपको ईश्वर से पृथक् करता है, वह मन है। इस मन को ओंकार-चिन्तन या भक्ति के द्वारा हटा दें, तो आपको ईश्वर का दर्शन हो जायेगा।

मन : एक रहस्य

अधिकांश मनुष्य मन के अस्तित्व और इसकी क्रियाओं से अवगत नहीं हैं। तथाकथित शिक्षित लोगों को भी मन तथा इसके स्वभाव और कार्यों के विषय में बहुत स्वल्प जानकारी है। उन्होंने केवल सुन रखा है कि मन होता है।

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों को इसकी किंचित् जानकारी है।

पाश्चात्य चिकित्सक केवल आंशिक रूप से ही मन को जानते हैं। अभिवाही चेताएँ परिणाह अथवा मेक-रज्जु के अयांगों से संवेदनाएं लाती हैं। फिर ये संवेदनाएँ वहाँ से शिर के पश्च भाग, मस्तिष्क-पुच्छ में, जहाँ चेता-तन्तु व्यत्यस्त होते हैं, पहुँचती हैं और वहाँ से वे उत्तरवर्ती पुरोभागीय संवेल्लक अथवा ललाट में, जो बुद्धि अथवा मन का स्थान माना जाता है, मस्तिष्क के ऊर्ध्ववर्ती पुरोभागीय संवेल्लक में पहुँचती हैं। मन संवेदनाओं को अनुभव करता है तथा अभिवाही चेताओं के द्वारा हाथ, पैर आदि अग्रांगों को प्रेरक प्रणोदन प्रेषित करता है। उन लोगों के लिए यह सब केवल मस्तिष्क का कार्य है। उनके मत से जैसे पित्त यकृत का उत्सर्जन है, वैसे ही मन भी मस्तिष्क का उत्सर्जन है। वे चिकित्सक अब भी निपट अन्धकार में ही भटक रहे हैं। उनके मन में हिन्दू-दार्शनिक विचारों को प्रवेश कराने के लिए उनको (मन का) प्रचुर परिमार्जन करने की आवश्यकता है।

केवल योगी जन अथवा वे लोग जो ध्यान तथा आत्म-निरीक्षण का अभ्यास करते हैं, मन के अस्तित्व, इसके स्वभाव तथा व्यवहार, इसकी जटिल क्रियाविधि आदि के विषय में जानते हैं वे इसको यश में करने के अनेक उपाय भी जानते हैं।

मन आष्ट प्रकृतियों में से एक है:

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।।

-- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार- यह मेरी आठ प्रकार की प्रकृति है ।
(गीता : ७-४) ।

मन आत्म-शक्ति है। विश्राम (निद्रा) की आवश्यकता मस्तिष्क को होती है, मन को नहीं। जिस योगी ने मन का निग्रह कर लिया है, वह कभी नहीं सोता। उसे ध्यान से ही विश्राम प्राप्त हो जाता है।

मन का अधिष्ठान

मन आत्म-शक्ति है। मन के द्वारा ब्रह्म अनेक प्रकार की सृष्टि में प्रकट होता है। ऐतरेय उपनिषद् में बताया जाता है कि सृष्टि के आदिकाल में ब्रह्म ने सोचा :

"स ईक्षतेमे नु लोका लोकपालान्नु सृजा इति । सोऽद्भ्य एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्छयत्।।"
"तमभ्यतपत्तस्याभितप्तस्य... हृदयं निरभिद्यत हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा ।"

ये तो हुए लोक, अब मुझे लोकपालों की भी रचना करनी चाहिए। तब उसने जल में से पुरुष (हिरण्यगर्भ) को निकाल कर मूर्तिमान किया तथा उसे ध्यान की अग्नि से तपाया। इस प्रकार तपाये जाने से उसका हृदय प्रकट हुआ। हृदय से मन का आविर्भाव हुआ और मन से उसका अधिष्ठातृ देवता चन्द्रमा उत्पन्न हुआ। (मन का अधिष्ठान हृदय है, इसलिए मन हृदय में से निकला। समाधि-काल में मन अपने अधिष्ठान हृदय में प्रवेश कर जाता है । सुषुप्ति अवस्था में भी यह हृदय में प्रवेश करता है। तब मन और ब्रह्म के बीच में अज्ञान का आवरण होता है) (ऐतरेयोपनिषद् १-१-३, ४) ।

वैश्य मन और व्यष्टि मन

हिरण्यगर्भ अथवा कार्य ब्रह्म अथवा सम्भूति ही वैश्व मन है वह सारे मनों की समष्टि है। व्यक्ति का मन वैश्व मन से सम्बन्ध रखता है। वैश्व मन, हिरण्यगर्भ, अतिचेतन मन, असीम मन अथवा विराट् मन पर्यायवाची शब्द हैं। भिन्न-भिन्न लेखकों ने भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग किया है। इनसे भ्रम में न पड़ें। इनमें न उलझें यह केवल शब्द-भेद है।

हिरण्यगर्भ वैश्व प्राण भी है। वह सूत्रात्मा है। वह विश्व का विद्युत् गृह है। अनेक जीव भाँति-भाँति के छोटे-छोटे लट्टू है। विद्युत्गृह से विद्युत् शक्ति का संचार ताम्र-तन्तुओं द्वारा लड्डुओं में होता है। इसी भाँति हिरण्यगर्भ से शक्ति का संचार जीवों में होता है।

यद्यपि मस्तिष्क भिन्न-भिन्न होते हैं, तथापि मन के अति सूक्ष्म होने के कारण एक - मनुष्य का मन दूसरों के मन के निकट सान्निध्य अथवा सम्पर्क में रहता है। जैसे-जैसे मन की उन्नति होती जाती है, मानसिक प्रवाहों से या निकट तथा दूर के जीवित अथवा मृतक अन्य पुरुषों के मन से आपका सचेत सम्पर्क होता है। 'अ' का व्यष्टि मन यद्यपि अन्य पुरुषों के मन से अति सूक्ष्म पदार्थ के पतले से परदे के द्वारा पृथक् होता है; परन्तु वास्तव में वह अपने अंशी हिरण्यगर्भ के तथा अन्य व्यक्तियों के प्रतीयमानतः पृथक् मन के संसर्ग में रहता है।

यदि श्याम राम का मित्र है तो उनके मन का परस्पर सम्बन्ध है। श्याम के मित्रों, सम्बन्धियों और भाइयों के मन का सम्बन्ध श्याम के मन से है। इसी प्रकार राम के मन में भी कई मन सम्बद्ध हैं। राम के सम्बन्धियों के मन धीरे-धीरे श्याम के सम्बन्धियों के मन से सम्बद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार एक व्यक्ति का मन समस्त संसार के मन से सम्बन्ध बना लेता है। यह राजयोग का मन के विभु होने का सिद्धान्त है।

सांख्य-दर्शन में मन

सांख्य दर्शन में वैश्व मन को महत् कहा गया है। अव्यक्त से यह प्रथम तत्त्व प्रकट होता है। यह अव्यक्त से व्यक्त होने वाला प्रथम तत्त्व है। छकड़े के पहिये का आधार उसके अरे होते हैं। अरे नाभि में टिके हुए होते हैं। इसी प्रकार मन प्रकृति पर और प्रकृति ब्रह्म पर आश्रित होती है।

महत् से अहंकार प्रकट होता है। सात्त्विक अहंकार से मन, राजसिक अहंकार से प्राण और तामसिक अहंकार से तन्मात्राएँ प्रकट होती हैं। तन्मात्राओं से महाभूत और पंचमहाभूतों से स्थूल जगत् प्रकट होता है। अहंकार, अहंभाव के अतिरिक्त मन और कुछ नहीं है। इस अहंभाव से बचना बहुत कठिन है। मन सदा किसी स्थूल पदार्थ से संसक्त होता है। यह अकेला नहीं ठहर सकता। यह मन ही शरीर में 'मैं' की घोषणा करता है।

मन रूपी वृक्ष का बीज अहंभाव है। इस अहंकार के बीज से बुद्धि रूपी कॉपल निकलती है। इसी में संकल्प-रूपी शाखाएँ- प्रशाखाएँ उद्भूत होती हैं।

लिंग शरीर और अन्तर्वाह शरीर

मन लिंग शरीर का सबसे मुख्य तत्त्व है। लिंग शरीर या सूक्ष्म शरीर स्थूल प्राण के द्वारा स्थूल शरीर से संयुक्त होता है। मृत्यु-काल में यह स्थूल शरीर से पृथक् हो कर स्वर्ग-गमन करता है। यह सूक्ष्म शरीर ही कर्मफल से सुख या दुःख भोगता है। यह शरीर ही आवागमन करता रहता है। विदेह मुक्ति होने पर सूक्ष्म शरीर लय हो जाता है।

लिंग शरीर और अन्तर्वाह शरीर में भेद है। लिंग शरीर सतरह तत्त्वों वाला सूक्ष्म शरीर है। पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच प्राण, मन और बुद्धि-ये सतरह तत्त्व हैं। अन्तर्वाह शरीर अत्यन्त शुद्ध होता है। यह सत्य से पूर्ण तथा रजोगुण और तमोगुण से रहित होता है। इस शरीर के द्वारा योगी परकाय प्रवेश करता है। भगवती सरस्वती की कृपा से, लीला ने इसी अन्तर्वाह शरीर के द्वारा स्थूल देह से निकल कर, ऊर्ध्व लोकों में गमन किया था। आपको यह योगवार में मिलेगा। श्री शंकराचार्य, राजा विक्रमादित्य, हस्तामलक और तिरुमूलार के अन्तर्वाह शरीर थे। इस प्रकार के विशेष शुद्ध शरीर की सहायता से वे अन्य पुरुषों की देह में प्रवेश करते थे। अन्तर्वाह शरीर वाले योगी का सत्संकल्प या शुद्ध संकल्प होता है।

मन सूक्ष्म पदार्थ है

मन कोई स्थूल पदार्थ नहीं है, जो देखा या स्पर्श किया जा सके। इसका अस्तित्व कहीं भी नहीं देखा जाता। इसका परिमाण (नाप-तौल) भी नहीं बतलाया जा सकता है। इसके रहने के लिए स्थान की भी आवश्यकता नहीं है।

मन और पदार्थ एक ही परिपूर्ण ब्रह्म के दो रूप हैं। ब्रह्म दोनों में से एक भी नहीं है, अपितु दोनों ही उसके अन्तर्गत हैं। मन पदार्थों से पहले बनता है। यह वेदान्त का सिद्धान्त है। विज्ञान का सिद्धान्त यह है कि पदार्थ मन से पहले बने हैं।

मन को इस भाव से अपार्थिव कहा जा सकता है कि उसमें अन्य पदार्थों की सी नहीं है जिसे इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया जा सके; परन्तु जिस भाव से ब्रह्म पार्थिव (अपदार्थनीय) कहा जाता है, उस भाव से मन अपार्थिव नहीं है। मन स्थूल पदार्थ का सूक्ष्म रूप है, इसलिए यह शरीर का प्रेरक भी है। मन सूक्ष्म सात्त्विक अपंचीकृत तन्मात्राओं से बना है। मन विद्युत् शक्ति है। छान्दोग्य उपनिषद् के मत से मन भोजन के सूक्ष्मतम अंशों से बनता है।

मन पदार्थमय है। यह सूक्ष्म पदार्थ है। यह भेद इस सिद्धान्त पर किया जाता है कि ज्ञान का स्रोत केवल आत्मा में है। यह (आत्मा) स्वयंसिद्ध है, स्वयं-प्रकाश है; परन्तु मन और इन्द्रियाँ अपना जीवन और क्रिया-शक्ति आत्मा से प्राप्त करते हैं। वे अकेले आप ही निर्जीव (जड़) हैं। इसलिए आत्मा सदा कर्ता ही रहता है, कार्य नहीं। मन आत्मा का कार्य हो सकता है। और, यह वेदान्त का मुख्य सिद्धान्त है कि जो पदार्थ किसी दूसरे का कार्य होता है, वह जड़ होता है। अहंकार तत्त्व (अहं प्रत्यक् विषयत्व) भी जड़ है; क्योंकि इसकी पृथक् सत्ता नहीं है। यह आत्मा के अभिबोध का कार्य है।

मनोमय शरीर

जिस प्रकार स्थूल शरीर ठोस, द्रव तथा वातीय पदार्थों से बना हुआ है, इसी प्रकार मन भिन्न-भिन्न सघनता की श्रेणी और कम्पन की गति वाले सूक्ष्म द्रव्यों से बना हुआ है। राजयोग उग्र साधना के द्वारा मन के भिन्न-भिन्न स्तरों का भेदन कर देता है।

भिन्न-भिन्न मनुष्यों में भिन्न-भिन्न मनोमय शरीर होता है। जिसके अन्दर चैतन्य जितना अधिक या कम अभिव्यक्त होता है, उतने ही स्थूल या सूक्ष्म पदार्थ से उसका मनोमय शरीर बना हुआ होता है। शिक्षित मनुष्यों में यह चेतना क्रियाशील तथा अधिक प्रकट होती है तथा अविकसित लोगों में यह धुंधली और कम प्रकट होती है।

जिस प्रकार विशेष विचारों के लिए मस्तिष्क में अनेक खाने बने हुए होते हैं, उसी प्रकार मनोमय शरीर में भी भिन्न-भिन्न क्षेत्र या खण्ड बने होते हैं। तीव्र क्रोध के आवेश में सम्पूर्ण मन द्वेष तथा दुर्भाव के काले बादलों से घिर जाता है और उनमें से क्रोध के अमिय बाग निकलते हैं जो उन भूत पदार्थों को आहत कर देते हैं जिनके प्रति क्रोध रहता है।

मन के प्रकार

प्रत्येक मनुष्य का अपना मानसिक संसार निराला ही होता है। प्रत्येक मनुष्य विचार शैली, स्वभाव, रुचि, मनोवृत्ति, शारीरिक लक्षण आदि में दूसरे से भिन्न होता है। शारीरिक दृष्टि से भी मनुष्य एक-दूसरे से भिन्न होता है, भले ही उनमें थोड़ी-सी समानता हो। भिन्न-भिन्न मनुष्यों के नासिका, कान, ओष्ठ, नेत्र, भृकुटियाँ, दन्त-विन्यास, स्कन्ध, हाथ, उँगलियों, अंगूठों, दृष्टि, स्वर, गति, बातचीत के ढंग आदि को ध्यानपूर्वक देखें। आपको किन्हीं भी दो व्यक्तियों में बहुत बड़ा अन्तर मिलेगा। हथेलियों की रेखाएँ भी भिन्न होती हैं। कोई दो पत्तियाँ भी एक समान नहीं होतीं। विविधता ही सृष्टि का सौन्दर्य है।

मन के अनेक प्रकार होते हैं। बंगाली मन भावुक होता है और कला तथा भक्ति के उपयुक्त होता है। मद्रासी मन बौद्धिक तथा गणित में निपुण होता है। पंजाबी और महाराष्ट्रीय मन वीर और साहसी होता है। बंगाल ने श्री गौरांग महाप्रभु श्री रामकृष्ण परमहंसदेव आदि भावप्रवण सन्तों को जन्म दिया है। मद्रास में श्री रामानुजाचार्य और श्री शंकराचार्य-जैसे प्रतिभाशाली दार्शनिक हुए हैं। पंजाब में श्री गुरुगोविन्दसिंह जैसे वीर उत्पन्न हुए हैं। साधना और योगपथ मन के प्रकार, स्वभाव और शक्ति के अनुकूल पृथक्-पृथक् हुआ करता है। रुचियाँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं। मछली देख कर बंगाली को अत्यन्त हर्ष होता है। इमली और मिर्च देख कर मद्रासी के मुँह में पानी भर आता है। ताड़ के फल को देख कर लंका के जाफना तामिल बहुत प्रसन्न होते हैं। मांस देख कर मांसाहारी को विशेष प्रसन्नता होती है। क्या यह रहस्य की बात नहीं है कि एक वस्तु बाहर पड़ी रहे और उसे देख कर ही मुँह में पानी भर आये? अपने दैनन्दिन जीवन में आपको नित्य ही यह अनुभव होता है, अतः आप इस बात को महत्त्व नहीं देते। मन बड़ा रहस्यमय है और ऐसी ही माया भी है।

अत्यन्त उन्नत मनुष्य का मन भी मन ही रहता है, अर्थात् साधारण मनुष्य के मन की भाँति वह भी अपने गुण और धर्म को नहीं छोड़ता।

मनोमय शरीर का आकार

न्याय दर्शन के मत से मन अणु है, महर्षि पतंजलि के मत से यह विभु (विश्वव्यापी) है और वेदान्त मत से वह सारे शरीर में व्याप्त है।

मनोमय प्रभा

मन की प्रभा दिव्य हुआ करती है। प्रभा मन से निकलने वाला तेज अथवा दीप्ति है। जिनके मन परिपक्व हो गये हैं, उनकी प्रभा अतीव प्रकाशमान होती है। इसकी गति दूर तक हो सकती है और बहुत से मनुष्यों को वह अपने प्रभाव से लाभ पहुँचा सकती है। आत्मिक प्रथा मानसिक वा प्राणमय प्रभा से भी अधिक शक्तिशाली होती है।

बलवान् मन का दुर्बल मन पर प्रभाव

बलवान् मन दुर्बल मन पर अपना प्रभाव डालता है। शक्ति-युक्त मन वाला सम्मोहक व्यक्ति (hypnotist) दुर्बल मन वाले बालकों के पूरे समूह या मण्डली को सम्मोहित कर देता है। हममें से ऐसे मनुष्य भी हैं जिनकी शरीर रचना दूसरों की अपेक्षा बहुत अधिक संवेदनशील होती है। अवयवी के रूप में उनके शरीर अधिक सूक्ष्म तथा अधिक संवेदी निर्मित होते हैं। साधारणतया ऐसे लोग जिन लोगों के संग में रहते या जिनके संसर्ग में आते हैं, उनकी मनोवृत्ति से सदा प्रभावित होते हैं।

जिसने अपने मन को पवित्र कर लिया है, वह शक्ति का केन्द्र बन जाता है। समस्त दुर्बल, अपवित्र और हीन मन अनजाने ही शुद्ध तथा महत्तर मन की ओर खिंचे आते हैं; क्योंकि उन्हें ऐसे शुद्ध और उन्नत मन से शान्ति, शक्ति और बल प्राप्त होते हैं।

देखिए, पूर्ण विकसित मन का अल्प विकसित मन पर कैसे प्रभाव पड़ता है! समर्थ पुरुषों के सम्मुख रहने में मन पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका वर्णन करना असम्भव है। चाहे वे कुछ भी न कहें, फिर भी उनके सामने बैठने में बड़ा आनन्द होता है; क्योंकि मन को नयी प्रेरणा मिलती है। यह बड़ा असाधारण अनुभव होता है।

यदि आप नल से पानी पीना चाहें, तो आपको अपना शरीर झुकाना पड़ेगा। इसी प्रकार निम्नतर मन यदि परिपक्व मन के सद्गुण ग्रहण करना चाहता है, तो उसे उसके सम्मुख झुकना पड़ेगा अर्थात् विनीत होना पड़ेगा। विचार को ही शान्त तथा अक्षुब्ध होना चाहिए, तभी आपको प्रेरणा प्राप्त हो सकेगी। ऐसी दशा में ही उच्च मन अपना हितकर प्रभाव निम्न मन पर डाल सकेगा। ऐसी शान्त मानसिक स्थिति में आप ईश्वर के साथ संसर्ग रख सकेंगे। योजना बनाना, क्रोध और विषाद की मनोदशा —— ये सब ही मन में उद्वेग उत्पन्न करते और ईश्वर प्राप्ति में बाधक बनते हैं।

मन सतत परिवर्तनशील है

मन संस्कारों का समूह है। यह स्वभावों (आदतों) की पोटली है। अनेक पदार्थों के संग से उत्पन्न हुई इच्छाओं का समुच्चय मन है। सांसारिक चिन्ताओं से उत्पन्न होने वाली भावनाओं का समूह मन है। यह विविध पदार्थों से संग्रहीत विचारों का समूह है। ये इच्छाएँ, विचार और अनुभव निरन्तर परिवर्तित होते रहते हैं। कुछ पुराने विचार, इच्छाएँ और अनुभव मन रूपी भण्डार गृह से निकलते रहते हैं और नये-नये उनका स्थान लेते रहते हैं।

परन्तु यह निरन्तर होने वाला परिवर्तन मानसिक क्रियाओं की सुव्यवस्था में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता। पुराने विचारों, इच्छाओं और अनुभवों में से कुछ थोड़े से ही बाहर जाते हैं और जो रह जाते हैं, वे नये आने वाले विचारों के साथ सहयोग और सामंजस्य से काम करते हैं। नये विचारों पर पुराने विचारों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। ये दोनों मेल से कार्य करते हैं और इसलिए मन की सत्ता की सारूप्यता बनी रहती है।

मन न केवल प्रतिदिन बनता है, अपितु सर्वदा बनता है। यह गिरगिट की भाँति प्रतिक्षण अपना रंग-रूप बदलता रहता है। "यह अत्यन्त चंचल और अस्थिर है" (गीता : ६-२६) । मन बराबर बदलता रहता है। आप नित्य नये-नये अनुभव प्राप्त करते रहते हैं। आपकी जो धारणाएँ, अन्तःकरण और विवेक-बुद्धि आज है, वह कल बदल जायेगी। अनुभव के द्वारा मन विकसित होता है। संसार सर्वोत्तम शिक्षक अथवा गुरु है।

मनुष्य की चेतना (conscience) उसके ज्ञान के अनुसार बनती है, कालान्तर में नया ज्ञान प्राप्त होने पर जैसे-जैसे उसके विचारों या दृष्टिकोणों में संशोधन होता है, वैसे-वैसे उसकी चेतना परिवर्तित होती रहती है। सहज ज्ञान अथवा तर्कणा से मनुष्य जो दृढ धारणाएं बना लेता है, वहीं चेतना कहलाती है। बच्चे की या बर्बर मनुष्य की चेतना पूर्ण परिपक्व सभ्य मनुष्य की चेतना से भिन्न होती है और सभ्य मनुष्यों में भी ज्ञान का अन्तर इतना होता है कि उनकी अपनी-अपनी चेतनाएँ भिन्न भिन्न क्रिया-पद्धति का - निर्देश करती है। सात्त्विक मनुष्य की चेतना राजसी मनुष्य की चेतना से बहुत ही भिन्न होती है। सात्त्विक मनुष्य की चेतना अत्यधिक निर्मल और शुद्ध होती है।

अन्तःकरण चतुष्टय (चार प्रकार के मन)

वेदान्ती अन्तःकरण में मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार का समावेश करते हैं। व्यापक भाव में इसका अर्थ है आन्तरिक उपकरण (अन्तः - आन्तरिक, करण उपकरण) । यह एक ऐसा आन्तरिक यन्त्र है जिससे आप बोध, अनुभव, विचार तथा निश्चय कर सकते हैं। यह बाह्य करण अर्थात् इन्द्रियों से भिन्न है।

तन्मात्राएँ सूक्ष्म भूत हैं। पांचों स्थूल भूत तन्मात्राओं से बने हैं। अहंकार पृथ्वी- तन्मात्रा से, चित्त जल-तन्मात्रा से, बुद्धि अग्नि-तन्मात्रा से मन वायु तन्मात्रा से तथा हृदय आकाश- तन्मात्रा से बनता है।

मन इन्द्रियों की तुलना में चेतन है और बुद्धि की तुलना में जड़ है। सांख्य योग में इच्छा-शक्ति और बुद्धि (विवेक शक्ति) को मिला कर बुद्धि कहते हैं। कोई-कोई चित्त को मन के अन्तर्गत और अहंकार को बुद्धि के अन्तर्गत बनाते हैं।

मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार केवल वृत्ति-भेद या मन के कार्यात्मक रूप हैं। मन के कार्य सारे पदार्थ होते हैं और यह भूत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों कालों में व्यापता है। यह एक ही है; परन्तु क्रियाएँ अनेक करता है। जब आप न्यायालय में अपने न्याय के अधिकार का उपयोग करते हैं, तब आप न्यायाधीश बनते हैं, जब आप रसोईघर में काम करते हैं, तब आप रसोइया कहलाते हैं और जब आप किसी संस्था के अध्यक्ष के आसन पर बैठते हैं तो अध्यक्ष कहलाते हैं। आप एक ही मनुष्य हैं; परन्तु जब-जब जो-जो कार्य करते हैं, उसके अनुसार वैसे ही नाम से आप पुकारे जाते हैं। इसी प्रकार मन जब संकल्प-विकल्प करता है तब इसका नाम मन होता है, जब विवेक से निश्चय करता है। तो बुद्धि कहलाता है, जब अहंभाव प्रस्तुत करता है तो अहंकार कहलाता है और जब संस्कारों का भण्डार तथा स्मृति का अधिष्ठान बनता है एवं धारणा और अनुसन्धान करता है तब चित्त कहलाता है।

जल में शीतलता, अग्नि में तेज और वायु में गति किसने प्रदान की? यह इनके स्वभाव हैं। ऐसे ही मन का स्वभाव वस्तुओं की ओर भागना, बुद्धि का स्वभाव निश्चयः करना, अहंकार का स्वभाव स्वाग्रह और चित्त का स्वभाव अहंकार द्वारा अभिज्ञात विषयों की स्मृति है।

जब मन काम करता है, तब बुद्धि और अहंकार साथ-साथ काम करते हैं। मन, बुद्धि तथा अहंकार परस्पर स्वस्थ सहयोग से कार्य करते हैं। मन संकल्प-विकल्प करता है। यह पदार्थों की अच्छाई और बुराई सोचता है। बुद्धि निश्चय तथा विषय का विवेचन करती है (निश्चयात्मिका, व्यवसायात्मिका)।

मन का स्वरूप विचार है। मन संकल्प-विकल्पात्मक है। जब यह बुद्धि के निर्णयों बुद्धि के सन्देशों के निष्पादन के लिए उन्हें कर्मेन्द्रियों के आगे प्रस्तुत का देता है तो व्याकरणात्मक हो जाता है। मन पसन्द करता, ध्यान देता और अस्वीकार करता है।

मन के कार्य

संवेदन, विचार और संकल्प ——— ये मन के त्रिविध कार्य हैं। संज्ञान, इच्छा तथा संकल्प —— ये तीन मानसिक प्रक्रम हैं।

मन की तीन अवस्थाएँ होती हैं——सक्रिय, निष्क्रिय तथा तटस्थ। मन को सदैव अनेकरूपता तथा नयी-नयी संवेदनाएँ पसन्द हैं। एकरसता से यह ऊब जाता है।

साहचर्व-नियम, सातत्य नियम और सापेक्षता नियम ये मन के तीन मुख्य नियम है।

मन के ये स्वभाव है परिणाम, चेष्टा, निरोध, शक्ति, जीवन और धर्म ।

विचार करना, योजना बनाना, अनुभव करना और जानना ये क्रियाएँ मन में सदा चलती रहती हैं। कभी योजना बनाते हैं, कभी आप अनुभव करते हैं, कभी जानने का प्रयास करते हैं, कभी गम्भीरतापूर्वक सोचते हैं और कभी इच्छा करते हैं। इच्छा से मन की सारी शक्तियाँ सक्रिय हो जाती है। आत्मनिरीक्षण के द्वारा आपको यह जान सकने में समर्थ होना चाहिए कि भिन्न-भिन्न समय पर आपके मन में क्या हो रहा है?

मन के स्वरूप

अचेतन मन अथवा विषयपरक मन, अवचेतन मन अथवा आत्मपरक मन या चित्त और अतिचेतन मन मन के तीन रूप है। आप विषयपरक मन (सचेतन मन) के द्वारा देखते, सुनने तथा पढ़ते हैं।

पाश्चात्य वैज्ञानिकों के वर्गीकरण के अनुसार संवेदनात्मक मन, तर्कणापरक मन और अन्तर्ज्ञानी मन——ये मन के तीन स्वरूप है।

मन का स्थान

प्राण, मन, अहंकार और आत्मा —— इन चारों तत्त्वों का स्थान हृदय है। वेदान्त के अनुसार मन का स्थान हृदय है। जाग्रत अवस्था में यह मस्तिष्क में रहता है। हठयोग के मत से अस्थायी रूप से मन का स्थान आज्ञा चक्र है जो दो कमलों के आकार का है और जिसका स्थान दोनों भृकुटियों के बीच में है।

मन की अनेक शक्तियाँ और केन्द्र होते हैं। वह मस्तिष्क में स्थूल शरीर के तत्सम्बन्धी केन्द्रों के द्वारा काम करता है। मन, बुद्धि तथा विवेक लिंग शरीर में हैं; परन्तु वे भौतिक मस्तिष्क में तत्सम्बन्धी केन्द्रों के द्वारा ही कार्य करते हैं। मस्तिष्क मन नहीं है। जैसा कि पाश्चात्य विद्वानों का मत है। मन का स्थान भौतिक मस्तिष्क में है। वह इस भौतिक जगत् की अनुभूति मस्तिष्क के कम्पन द्वारा करता है।

यद्यपि अपने सम्पूर्ण देश पर राजा का एकाधिकार होता है, सारा राज्य उसका ही होता है; फिर भी उसके निवास के लिए विशेष स्थान होते हैं। एक विशाल राजप्रासाद राजधानी में होता है और ग्रीष्मऋतु के लिए एक सुन्दर भव्य भवन मसूरी या आबू पर्वत पर बना होता है। इसी प्रकार, मन यद्यपि सारे शरीर में व्यापक है; किन्तु जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति – इन तीनों अवस्थाओं में इसके लिए तीन स्थान नियत हैं। सुषुप्ति में मन का स्थान हृदय, स्वप्न में कण्ठ तथा जाग्रति में दक्षिण नेत्र या आज्ञा चक्र होता है। देखिए, आलोचना के समय आप क्या करते हैं? आप चिम्बुक पर उँगली रख कर, ग्रीवा दाय ओर को झुकाते हुए दृष्टि को भ्रू-मध्य में स्थित करके अपनी समस्या पर विचार करते हैं। इससे प्रतीत होता है कि मन का स्थान आज्ञा चक्र है।

मन आत्मा नहीं है

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक ऐसा कहने में बड़ी भारी भूल करते हैं कि चेतना मन की एक क्रिया और उपाधि है। चित्त या आत्मा ही स्वयं शुद्ध चेतना है। मन आत्मा से ही समय-समय पर अपना प्रकाश प्राप्त करता है और थोड़े काल तक चेतना की भाँति वैसे ही चमकता है जैसे पीतल पर सोने का मुलम्मा चमकता है। आत्मा ही प्रकाश का स्रोत तथा ज्योतियों की ज्योति और सूर्यों का सूर्य है। जैसे लौह-शलाका अपनी उष्णता तथा प्रकाश अग्नि से प्राप्त करती है, वैसे ही मन अपनी ज्योति और शक्ति ब्रह्म से प्राप्त करता है। मन जड़ है। जैसे धूप में रखा हुआ जल सूर्य के ताप से उष्ण हो जाता है, वैसे ही यह जड़ मन ब्रह्म से प्रकाश प्राप्त करके बुद्धियुक्त-सा हो जाता है।

मन एक समय में एक ही कार्य कर सकता है। यह परिच्छिन्न है, जड़ है और सत्वगुण का कार्य है। यह विनाशी तथा चंचल है। यह विचारों, संस्कारों, स्वभावों, प्रेरणाओं तथा भावनाओं की एक पोटली है। यह अपने अधिष्ठान ब्रह्म से प्रकाश प्राप्त करता है। आप मन पर नियन्त्रण कर सकते हैं। विचार करने वाला विचार से भिन्न होता है। प्रगाढ़ निद्रा में मन की क्रिया बन्द हो जाती है। आप सदा 'मेरा मन' कहा करते हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि मन भी छतरी या छड़ी-जैसा आपका एक उपकरण है, इसलिए मन स्वयं-प्रकाश आत्मा नहीं है।

मूर्च्छा की अवस्था में, मानसिक क्रियाओं के स्तम्भित होने और स्मृति के पूर्णत: अथवा अंशतः नष्ट होने पर भी व्यक्ति का अस्तित्व रह जाता है—'मैं' बना रहता है **'अहमस्मि'** मन आपसे बाहर रहते हुए भी आपकी उसी प्रकार सम्पत्ति है, जैसे | आपके स्थूल शरीर के दूसरे अंग, आपके पहनने के वस्त्र या आपके रहने का घर आपसे बाहर रहते हुए भी आपकी सम्पत्ति है। इसलिए मन इस 'मैं' से भिन्न है।

मन अन्धकार में टटोलता है। यह प्रतिपल भूलता तथा प्रतिक्षण बदलता रहता है। यदि कुछ दिन तक आहार न मिले, तो यह सुचारु रूप से विचार भी नहीं कर सकता। सुषुप्ति — प्रगाढ़ निद्रा में मन की क्रिया नहीं होती। मन मल, वासनाओं और तृष्णाओं से परिपूर्ण है। क्रोध आने पर यह मोह को प्राप्त होता है, भय होने पर इसे कम्प होता है. और प्रघात लगने पर यह मरणासन्न-सा हो जाता है। फिर, आप मन को शुद्ध आत्मा कैसे मान सकते हैं?

मन संवेदन और विचार का एक साधन है। यह उपकरण उसके नियन्त्रण में होना चाहिए जो इसका उपयोग करता है। जीव मन का निर्देशक नहीं है; क्योंकि हम देखते हैं कि सामान्य व्यक्ति अपने मन को वश में नहीं रख सकते। वे तुच्छ राग-द्वेष, आवेग, भय आदि से सहज ही इधर-उधर दोलायमान होते रहते हैं। इसलिए यह निश्चित है कि कोई ऐसी सत्ता अवश्य है जो मन की निर्देशक है। यहाँ प्रश्न उठता है, वह कौन है ? वह है मनसस्पति, अन्तर्यामी, कूटस्थ ब्रह्म ।

आप जैसे अपने सामने वृक्ष को देखते हैं, इसी प्रकार जीवों के मन में क्या हो रहा है, इस सबको देखने तथा जानने के लिए भी कोई न कोई होना चाहिए। वह कूटस्थ है। - उसी को ब्रह्म कहते हैं। आपके सामने एक पात्र रखा है। पात्र अपने-आपको देख नहीं सकता है। उसे देखने के लिए एक द्रष्टा और देखने का करण अर्थात् नेत्र की आवश्यकता होती है। यदि आप कहें कि पात्र अपने आपको देख सकता है तो इसमें तर्कशास्त्र के कर्म-कर्तृत्व-भाव का विरोध होगा। तर्कानुसार यह एक असंगति है। इसलिए आपको मानना पड़ेगा कि मन का एक मूक साक्षी है जो अनादि, अनन्त, अपरिवर्तनशील और नित्य ज्ञाता है। वह जीवों के मन में उठने वाले भावों और विकारों को देखता है।

ईश्वर या सगुण ब्रह्म को निर्गुण ब्रह्म की पूर्ण चेतना होती है। यह उसका स्वरूप लक्षण है। साथ-ही-साथ उसे पूर्ण वैश्व चेतना भी होती है। वह जानता है कि प्रत्येक मन में क्या-क्या हो रहा है।

स्वाभाविक चेतना अथवा निरपेक्ष चेतना सबमें समान होती है। यह शुद्ध चेतना एक ही होती है। यह कूटस्थ चैतन्य है। मन की सारी क्रियाएँ और सभी लोगों के मन में उठने वाले विकार उस एक सामान्य चेतना के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं जो कि मन की सारी वृत्तियों की साक्षी है। यद्यपि चेतना एक ही होती है तो भी जब राम को बिच्छू डंक मारता है तो केवल राम को ही पीड़ा होती है। उसके पास खड़ा उसका मित्र कृष्ण इस पीड़ा को अनुभव नहीं करता। प्रत्येक व्यक्ति का अन्तःकरण भिन्न होता है। वास्तव में तो मनुष्य और परमात्मा में कोई भेद नहीं होता, परन्तु यह अन्तःकरण ही मनुष्य को सीमाबद्ध रखता है। जब अविद्या का आवरण हट जाता है, तो इस अभेद का साक्षात्कार होता है।

ब्रह्म के लिए मन ज्ञान की वस्तु है। मन के सारे प्रपंचों, जैसे-इच्छा, कल्पना, शंका, विश्वास, अविश्वास, लज्जा, चातुर्य, भय आदि को आत्मा अपरोक्ष रूप से देखता है; परन्तु वह सर्वव्यापी आकाश या विविध रंगों वाले पदार्थ को प्रतिबिम्बित करने वाले स्फटिक अथवा सूर्य की भाँति उनसे सर्वथा अनासक्त तथा अप्रभावित रहता है।

आत्मा मन का स्रोत है

यह मन जो संकल्प-विकल्प के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता है, अपने कारणभूत ब्रह्म से उत्पन्न होता है। अनन्त रूप आत्मा संकल्प के द्वारा जो रूप धारण करता है, वह मन है। पहले इसने विवेक से पीठ मोड़ी और इसलिए पदार्थों की वासनाओं की शक्ति के लपेट में आ गया। मन का मूलाधार, अधिष्ठान तथा मूल स्रोत आत्मा, ब्रह्म अथवा शुद्ध चैतन्य है। सारी शक्तियों की शक्ति जो मन को शक्ति देती है, सारी ज्योतियों की ज्योति जो मन को प्रकाश देती है, सारे द्राओं का द्रष्टा जो मन के आशय और कार्यों का साक्षी है. सारे आधारों का आधार जिसमें सुषुप्ति में मन विश्राम करता है, ब्रह्म है।

"ॐ केनेषितं पतति प्रेषितं मनः" अर्थात् किसके द्वारा स्फूर्ति पा कर और संचालित हो कर मन अपने विषयों तक पहुँचता है (केनोपनिषद्) मैं उस सर्वशक्तिमान् को हाथ जोड़ कर प्रणाम करता है। वह शक्तियों की शक्ति में है- **"सोऽहम्, शिवोऽहम्।"**

वह अद्वितीय परमात्मा जो आपके हृदय-प्रकोष्ठ में अन्तर्यामी, सूत्रधार, साक्षी अथवा परमात्मा के रूप में निवास करता है; जो आदि, मध्य और अन्त-रहित है; जो इस संसार का, वेदों का तथा शरीर, मन, इन्द्रियों और प्राणों का स्रोत है; जो सर्वव्यापक, निर्विकार है जो सदा एकरस है; जो सर्वकाल में विद्यमान रहता है तथा जो स्वयम्भू, है; स्वतन्त्र और स्वयं ज्योति है; वही ईश्वर है, आत्मा है, ब्रह्म है, पुरुष है, चैतन्य है, भगवान् या पुरुषोत्तम है।

स्वप्न में आप अत्यन्त तेजोमय प्रकाश देखते हैं। यह कहाँ से आता है ? आत्मा से। स्वप्न में प्रकट होने वाला प्रकाश आत्मा के स्वयं ज्योति अथवा स्वयं-प्रकाश होने का स्पष्ट द्योतक है।

ईश्वर सत्य, प्रेम, ज्योतियों की ज्योति, शान्ति, ज्ञान तथा आनन्दविग्रह है। वह सच्चिदानन्द, अनन्त, अमृत तथा असीम है। वह अविनाशी, परम वस्तु तथा सर्वव्यापी तत्त्व है। ईश्वर ही सार वस्तु और अनन्त सौन्दर्य है।

भगवान् ईश्वर शब्द का पर्याय है। जिसमें ज्ञान, वैराग्य, यश, ऐश्वर्य, श्री और धर्मये षड्गुण अपने पूर्ण रूप में विद्यमान हों, वह भगवान् है।

वायुपुराण के अनुसार सर्वज्ञता, सन्तोष, अनन्त ज्ञान, स्वतन्त्रता, सर्वदा शक्तिमत्ता और असीम शक्तिमत्ता —ये छह लक्षण परमात्मा के बताये गये हैं।

सर्वज्ञत्व, सर्वेश्वरत्व, सर्वान्तर्यामित्व, सर्वकारणत्व, सर्वनियन्तृत्व, सर्वकर्तृत्व, सर्वशक्तिमत्व और स्वतन्त्रत्व- ये आठ लक्षण ईश्वर के हैं।

ज्ञान, निष्कामता, संयम-शक्ति, तप, सत्य, क्षमा, तितिक्षा, सर्जन, आत्मज्ञान और समस्त क्रियाओं की आधार भूमि होना—वे दश अव्यय लक्षण सर्वसुखमूल परमात्मा में सदा निवास करते हैं।

सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान और अनुग्रह-ये ईश्वर के पंच कृत्य है।

ईश्वर नियामक, अन्तर्यामी और प्रेरक भी है। वह स्वप्न, अन्तर्वाणी, नित्य की बातचीत में दूसरों के मुख द्वारा, मित्रों के परामर्श आदि द्वारा अनेक प्रकार से साधकों की सहायता करता है।

नित्य सुख, परम शान्ति, नित्य तृप्ति, अनन्त आनन्द तथा अखण्ड सुख केवल ईश्वर में ही प्राप्त हो सकते हैं। इस भागवत-चेतना, आत्म-साक्षात्कार या भगवद्-दर्शन को अनन्य भक्ति या विचार द्वारा प्राप्त करें। यही जीवन का लक्ष्य है। यही आपका परम धर्म है; अन्य सारे धर्म गौण हैं।

इन्द्रियों का सार मन है; मन का सार बुद्धि है; बुद्धि का सार अहंकार है तथा अहंकार का सार जीव है। ब्रह्म या शुद्ध चैतन्य प्रत्येक वस्तु की योनि या गर्भ अथवा उसका अधिष्ठान है। वह प्रत्येक वस्तु का साक्षी है।

आत्मा इस विशाल मानसिक कार्यालय का स्वामी है, बुद्धि प्रबन्धक तथा मन मुख्य लिपिक है। मुख्य लिपिक को दो कार्य करने पड़ते हैं उसे सीधे प्रबन्धक से आदेश प्राप्त करना पड़ता है और श्रमिकों के कार्य का पर्यवेक्षण करना होता है। इसी प्रकार मन को दो कार्य करने पड़ते हैं। इसका सम्बन्ध बुद्धि-रूपी प्रबन्धक और कर्मेन्द्रिय-रूपी श्रमिकों से होता है।

मन वाणी से अधिक आन्तरिक है, बुद्धि मन से अधिक आन्तरिक है, अहंकार बुद्धि से अधिक आन्तरिक है, जीव-चैतन्य अहंकार से अधिक आन्तरिक है तथा आत्मा या कूटस्थ जीव- चैतन्य से अधिक आन्तरिक है। आत्मा से अधिक आन्तरिक अन्य कोई वस्तु नहीं है। यह परिपूर्ण है।

जब अपने मन का विश्लेषण करके आप किसी ऐसे तत्त्व के सम्मुख होंगे जो अविनाशी है और स्वभाव से ही निर्मल, पूर्ण, स्वयं-प्रकाश और अविकारी है, तब आप कभी खिन्न नहीं होंगे, दुःखी नहीं होंगे।

केवल एक ही तत्त्व है। वह **'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म'** है। वह अनन्त निष्कलंक, नित्य शुद्ध और परिपूर्ण है। मन को स्थिर करके उसी का ध्यान करें और मन की सच्ची शान्ति प्राप्त करके सारे दुःखों से मुक्त हो जायें।

मन के अस्तित्व का प्रमाण

आत्मा और ब्रह्म का स्वरूप क्या है? आत्मा सच्चिदानन्द है, व्यापक है। फिर जीवात्मा की दृष्टि को कौन परिच्छिन्न बनाता है? मन इस तथ्य से एक अन्तरंग अवयव (मन) की सत्ता का प्रमाण मिलता है।

बृहदारण्यक के भाष्य में श्री शंकराचार्य ने मन की सत्ता के दो प्रमाण दिये हैं। एक तो यह है कि इन्द्रियों द्वारा संवेदन को प्राप्त करना मन का ही कार्य है। यह सर्व कर्म विषय- योग कहलाता है। मन और ज्ञानेन्द्रियों के संसर्ग से इन्द्रियजन्य ज्ञान संवेदन प्राप्त होता है। इसीलिए अनेक इन्द्रियों द्वारा प्राप्त होने वाले संवेदन एक ही समय में एक-साथ नहीं व्यापते। मनुष्य कहा करते हैं कि मेरा मन अन्यत्र था, मैंने उसे नहीं देखा। इस समकालीन संवेदन की असम्भवता से भी मन की सत्ता का प्रमाण मिलता है।

अन्तःकरण (मन) की सत्ता के लिए युक्ति यह है। आत्मा अव्यय तत्त्व है। आत्मा और ज्ञानेन्द्रियों के बीच में एक संयोजक की आवश्यकता है। हमें एक आन्तरिक अवयव (मन) की सत्ता माननी पड़ेगी जिसके अवधान तथा अनवधान से पदार्थों का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। यदि हम इस आन्तरिक अवयव की सत्ता को स्वीकार नहीं करते तो, या तो सदा दर्शन ही होता रहेगा या अदर्शन ही — जब आत्मा, इन्द्रिय और विषय का संयोजन होगा तो दर्शन ही होगा; क्योंकि ये ही तीनों दर्शन के कारण हैं और यदि इन तीनों के संयोजन से दर्शन नहीं प्राप्त होता तो सदा अदर्शन ही बना रहेगा। परन्तु वास्तव में इन दोनों बातों में से एक भी सत्य नहीं है। इसलिए हमें एक आन्तरिक अवयव की सत्ता माननी पड़ती है। जिसके अवधान और अनवधान के फल स्वरूप पदार्थ का दर्शन या अदर्शन प्राप्त होता है।

दूसरा प्रमाण हमारी निश्चयात्मक क्षमता है। कोई मनुष्य जिसे हम नहीं देख सकते, हमें स्पर्श करता है और हम उसका अनुमान कर लेते हैं। केवल स्पर्श से ही हमें इसका ज्ञान नहीं हो सकता। जिस शक्ति के द्वारा हम ऐसा अनुमान करते हैं, वह मन है।

मनुष्य और पशु में भिन्नता बताने वाला विशेष ज्ञान

पशु स्वयं अपने को नहीं जान सकता। उसको केवल शारीरिक चेतना होती है। उसको आत्म-चेतना का अनुभव नहीं होता। पशु को असुविधा और पीड़ा की संवेदना होती है। वह अपनी मनोदशाओं का विश्लेषण नहीं कर सकता। मनुष्य केवल जानता ही नहीं, अपितु उसे यह भी ज्ञान होता है कि वह जानता है। यह उच्च मानसिक चेतना या आत्म चेतना है। मनुष्य केवल संवेदन और भावना ही नहीं करता, अपितु अपनी भावनाओं और संवेदनों को अभिव्यक्त करने को उसके पास शब्द भी हैं। वह अपनी भावनाओं का विशद वर्णन कर सकता है। वह अपने आपको अनुभव करता हुआ जान सकता है तथा अपने को उस संवेदन या भाव से पृथक् भी कर सकता है। वह सोच सकता है, 'मैं स्पर्श करता हूँ, मैं देखता हूँ, मैं सुनता हूँ, मैं सूँघता हूँ, मैं स्वाद लेता हूँ, मैं कामना करता हूँ, मैं भोगता हूँ।'

मैं इस पुस्तक को जानता हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि मैं इस पुस्तक को जानता हूँ। यह आत्म-चेतना कहलाती है, जो केवल मनुष्यों की विशिष्टता है।

पुलिस चौकी पर चपरासी दश का घण्टा बजाता है। वह शब्द मनुष्यों और पशुओं के कानों में जाता है। पशु भी घण्टे की ध्वनि दश बार सुनते हैं; परन्तु मनुष्य उनको गिनते हैं और बुद्धि के द्वारा जान लेते हैं कि अब दश बज गये। मनुष्य में यह विशेष ज्ञान होता है। और पशुओं में सामान्य ज्ञान होता है। यह विशेष ज्ञान ही मनुष्य और पशुओं में भेद करता है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन दोनों में समान हैं। इस विशेष ज्ञान के द्वारा मनुष्य भलाई-बुराई, उचित-अनुचित, कर्तव्याकर्तव्य की पहचान करता है।

ज्ञान के चार स्रोत

प्रेरणा, उद्घाटन, अन्तर्दृष्टि, सहज प्रवृत्ति, हर्षोद्रेक, दिव्य दृष्टि और परमानन्द-ये ज्ञान के सात स्तर हैं। ज्ञान के चार स्रोत हैं : सहज प्रवृत्ति, विवेक, अन्तःप्रज्ञा और ब्रह्मज्ञान ।

सहज प्रवृत्ति

जब आपकी दाहिनी भुजा पर चींटी रेंगती है, तो बायीं भुजा उसे हटाने के लिए दाहिनी भुजा की ओर स्वयं ही उठ जाती है, इसके लिए मन को तर्क-वितर्क नहीं करना पड़ता। जब आप अपने पैर के सामने बिच्छू को देखते हैं तो आप स्वतः ही पैर हटा लेते हैं। यह सहज प्रवृत्ति की अथवा अविवेचित क्रियाएँ हैं। सड़क पार करते मोटरगाड़ियों से आप अपने शरीर को इस सहज प्रवृत्ति के द्वारा कैसे बचा लेते हैं? ऐसी यान्त्रिक गति में कोई वृत्ति काम नहीं करती।

सहज प्रवृत्ति पशुओं और पक्षियों में पायी जाती हैं। पक्षियों के अन्दर का अहंकार दिव्य प्रवाह अथवा दिव्य लीला में हस्तक्षेप नहीं करता। इसलिए उनका सहज प्रवृत्ति से किया हुआ कार्य मनुष्यों के कार्य से भी अधिक पूर्ण होता है। पक्षियों के उत्कृष्ट घोंसले निर्माण करने के सुन्दर कार्य को क्या आपने नहीं देखा है।

विवेक

विवेक सहज प्रवृत्ति से उच्चतर वस्तु है और केवल मनुष्यों में ही पाया जाता है। विवेक बहुत-सी बातों को इकट्ठा करके उनमें से समान धर्म का नियम निकाल देता है, कारण से कार्य तक और कार्य से कारण तक युक्ति सोचता है तथा आधार वाक्यों से निष्कर्ष तक, प्रतिज्ञप्ति से उपपत्ति तक युक्ति करता है। यह निष्कर्ष निकालता, निश्चय करता तथा निर्णय देता है। यह आपको सुरक्षित रूप से अन्तःप्रज्ञा के द्वार तक पहुँचाता है।

विश्वास, तर्क, ज्ञान और श्रद्धा – ये चार महत्त्वपूर्ण मानसिक क्रियाएँ हैं। पहले आपको किसी चिकित्सक में विश्वास होता है और आप उसके पास रोग निदान तथा चिकित्सा के लिए जाते हैं। वह आपकी भली-भाँति परीक्षा करके कुछ औषधि निश्चित करता है। आप औषधि का सेवन करते हैं और तर्क करते हैं कि 'अमुक रोग है। डाक्टर ने लौह और जम्बेय (आयोडाइड) दिया है। लोहे से रक्त में वृद्धि होगी और जम्बेय (आयोडाइड) लसीकाओं को उद्दीप्त तथा यकृत के स्राव तथा वृद्धि का अवशोषण करेगा। अतः मुझे औषधि लेनी चाहिए।' इन औषधियों का क्रम पूरा करने से रोग एक माह में दूर हो जाता है, तब आपको उस औषधि की क्षमता तथा चिकित्सक की निपुणता का ज्ञान होता है, आपकी उसमें पूर्ण श्रद्धा हो जाती है और आप अपने मित्रों को भी उसी चिकित्सक तथा उसकी औषधि की अनुशंसा करते हैं।

अन्तःप्रज्ञा

अन्तःप्रज्ञा आध्यात्मिक अनुभव होता है। कारण शरीर की क्रियाओं द्वारा प्राप्त हुआ ज्ञान अन्तःप्रज्ञा है। श्री अरविन्द इसे अतिमानसिक चेतना कहते हैं। वहाँ आपको समाधि में सत्य का अपरोक्ष ज्ञान होता है। आपको एक ही झलक में पदार्थ का ज्ञान हो। जाता है। प्रोफेसर वर्गसन ने फ्रांस में अन्तःप्रज्ञा का प्रचार किया ताकि लोग समझ जायें। कि बुद्धि के अतिरिक्त भी ज्ञान का अन्य उच्च स्रोत है। अन्तःप्रज्ञा में तर्क-विधि नहीं होती। यह प्रत्यक्ष होता है। अन्तः प्रज्ञा विवेक से अतीत होती है; परन्तु इसका खण्डन नहीं करती। बुद्धि मनुष्य को अन्तःप्रज्ञा की ड्योढ़ी तक पहुँचा कर लौट जाती है।

अन्तःप्रज्ञा दिव्य दृष्टि या ज्ञान चक्षु है। अन्तः प्रज्ञा के द्वारा सत्य की कौंध तथा झलक आया करती है। प्रेरणा, प्रकटन और आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि —ये सब अन्तःप्रज्ञा के द्वारा प्राप्त होते हैं।

आत्म-ज्ञान

आत्म-ज्ञान अन्तः प्रज्ञा से ऊपर है। यह कारण शरीर का भी अतिक्रमण कर जाता है। यह ज्ञान का उच्चतम स्वरूप है। एकमात्र सत्य यही है।

परिच्छेद- २

मन और शरीर

शरीर मन के उपभोग के लिए एक साँचा है

इन्द्रियों सहित शरीर मन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। स्थूल शरीर मन की बाह्य अभिव्यक्ति है। मन इस स्थूल शरीर का सूक्ष्म रूप है। शरीर का ध्यान करते-करते मन स्वयं शरीर बन जाता है और इसमें फँस कर दुःख भोगता है। समस्त शरीरों का स्थान मन में ही होता है। यदि मन शक्तिहीन हो जाता है, तो शरीर भी बुद्धि के कार्य प्रकट नहीं करता। क्या बिना पानी के उद्यान बना रह सकता है? मन ही सारे कार्य करता है और शरीरों में श्रेष्ठतम है। मानसिक क्रियाएँ ही वास्तविक क्रियाएँ होती हैं। लिंग शरीर में मन बड़ी द्रुत गति से सारे कार्य करता है और इसी से अस्थिर रहता है; परन्तु स्थूल शरीर कुछ भी नहीं जानता और निष्क्रिय रहता है। स्थूल शरीर के नाश हो जाने पर मन अपनी रुचि के अनुसार शीघ्र ही नवीन शरीर धारण कर लेता है। ऐसा लगता है कि मन ने अपने उपयोग के लिए तथा अपनी शक्ति को प्रकट करने के लिए और उसके द्वारा पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के मार्ग से संसार के नाना प्रकार के अनुभव प्राप्त करने के लिए भौतिक शरीर का एक साँचा-सा बनाया हुआ है।

विचार शरीर को बनाते हैं

वस्तुतः केवल मन के कर्म ही कर्म हैं, शरीर के नहीं। हमारे अपने विचार, मनोदशाएँ, विश्वास और मनोभावनाएँ ही विषयीकृत हो कर हमारे शरीर बनते हैं और नेत्रों को दृष्टिगोचर होते हैं। यह ध्यान देने योग्य बात है कि जैसा विचार मन में प्रवेश करता है, उसी के अनुसार शरीर का प्रत्येक कोशाणु वृद्धि या ह्रास को प्राप्त होता है, जीवन या मृत्यु का

प्रणोदन प्राप्त करता है; क्योंकि जिस विषय का आप अधिक चिन्तन किया करते हैं, उसकी ही प्रतिकृति आप बनते जाते हैं।

जब मन किसी विचार-विशेष की ओर मुड़ता है और उसमें देर तक संलग्न रहता है, तो पदार्थ का एक स्पन्दन-विशेष चलता है और जितनी बार यह स्पन्दन होता रहता है, वह स्वभाव का रूप लेने के लिए, स्वयंचालित बनने के लिए उतना ही अधिक अपनी पुनरावृत्ति करता है। शरीर मन का अनुगामी होता है और इसके परिवर्तनों का अनुकरण करता है। यदि आप अपने विचार संकेन्द्रित करते हैं तो नेत्र निश्चल हो जाते हैं।

विचार के प्रेरक परिवर्तन से आपके मनोमय शरीर में स्पन्दन होता है और जब यह स्पन्दन स्थूल शरीर में पहुँचता है तो मस्तिष्क के स्नायविक द्रव्य में क्रिया-संचालन करता है। इस क्रिया से नाड़ियों के कोशाणुओं में अनेक वैद्युत और रासायनिक परिवर्तन होते हैं। विचार-क्रिया से ही ये सब परिवर्तन हुआ करते हैं।

मुख मन का अभिसूचक है

मन इस स्थूल शरीर का सूक्ष्म रूप है। स्थूल शरीर मन की बाह्य अभिव्यक्ति है। इसलिए जब मन रुक्ष हो जाता है, तो शरीर भी रुक्ष हो जाता है। जैसे रुक्ष रूप-रंग वाला व्यक्ति दूसरों के अन्दर दया और प्रेम उत्पन्न नहीं कर सकता, ऐसे ही रुक्षमनस्क मनुष्य भी अन्य मनुष्यों में दया और प्रेम पैदा नहीं कर सकता मन अपनी अनेक अवस्थाओं की छाया मुख पर विशेष रूप से प्रकट करता है, जिसको एक बुद्धिमान् मनुष्य बड़ी सुगमता से पहचान लेता है जैसे जिह्वा उदर की अभिसूचक है, वैसे ही मुख मन का अभिसूचक है।

शरीर मन का अनुगामी है। यदि मन में ऊंचाई से गिरने का विचार उत्पन्न होता है, तो शरीर तुरन्त ही इसके लिए तैयार हो जाता है और बाहरी चिह्न प्रकट करता है। भय, चिन्ता, शोक, प्रसन्नता, हर्ष, क्रोध —— ये सब ही मुख पर अपने-अपने विविध चिह्न अंकित कर देते हैं।

नेत्र आत्मा के वातायन रूप हैं, जो मनोदशा तथा मनःस्थिति बताते हैं। आँखों में एक तार यन्त्र होता है जो विश्वासघात, धूर्तता, धोखा, शुद्ध प्रेम, दया, भक्ति, उदासी, शोक, घृणा, प्रसाद, शान्ति, एकरसता, स्वास्थ्य, शक्ति, बल और सौन्दर्य का सन्देश बाहर सम्प्रेषित करता है।

यदि आपमें अन्य व्यक्तियों की दृष्टि पहचानने की कला है तो आप तुरन्त उनके मन का हाल भी जान सकते हैं। यदि आप किसी मनुष्य की मुख-मुद्रा, वाणी और आचरण को सतर्क हो कर देखें, तो आप उसके मन के प्रमुख विचार को जान सकते हैं। इसके लिए थोड़ा-सा साहस, चातुर्य, बुद्धि और अनुभव की आवश्यकता है।

आपके विचार और भाव मुख पर अपना गहरा प्रभाव उत्पन्न करते हैं। मन के अन्दर क्या हो रहा है, उसको बताने के लिए मुख विज्ञापन-पट के समान है। आप अपने विचारों को मुख से कठिनता से छिपा सकते हैं आप मूर्खतावश भले ही सोचते रहें कि आपने विचारों को गुप्त रखा हुआ है। कामुकता, लोभ, ईर्ष्या, क्रोध, प्रतिकार, घृणा आदि के विचार तत्काल ही आपके मुख पर अपनी गहरी छाप प्रकट करते हैं। मुख बहुत विश्वासपात्र लेख-पत्र - रक्षक और बहुत सूक्ष्म-ग्राही निबन्धक-यन्त्र है, जो आपके मन में गतिमान विचारों को निबद्ध करता है। किसी विशेष समय में मन तथा उसकी अन्तर्वस्तु के स्वरूप को प्रकट करने के लिए मुख एक परिमार्जित दर्पण है।

जो यह समझता है कि वह अपने विचारों को छिपा सकता है, वह प्रथम श्रेणी का मूर्ख है। उसकी दशा उस शुतुरमुर्ग जैसी है जो शिकारियों से पीछा किये जाने पर रेत के नीचे अपना शिर छिपा लेता है और सोचता है कि उसे कोई देख नहीं सकता।

आपका मुख ग्रामोफोन रेकार्ड के समान है जो कुछ आप विचार करते हैं, वह तत्काल आपके मुख पर अंकित हो जाता है। प्रत्येक दूषित विचार मन के भाव को मुख-मण्डल पर अंकित करने के लिए छेनी या सूई का काम करता है। घृणा, क्रोध, कामवासना, ईर्ष्या, प्रतिकार आदि दूषित विचारों द्वारा किये हुए व्रणों और व्रण चिह्नों - से आपका मुख आच्छादित है। आपके मुख पर के व्रण-चिह्नों के लक्षणों से मैं आपके मन की दशा को तुरन्त पहचान सकता हूँ। मैं आपके मन के रोग का तुरन्त निदान कर सकता हूँ।

मन और शरीर का पारस्परिक प्रभाव

मन और शरीर का अति घनिष्ठ सम्बन्ध है। मन शरीर पर प्रभाव डालता है तथा - शरीर मन पर प्रतिक्रिया करता है। मन का प्रभाव शरीर पर होता है। शुद्ध स्वस्थ मन हो तो शरीर भी स्वस्थ होता है। मन में विवाद होने से शरीर दुर्बल हो जाता है। ऐसे ही शरीर का प्रभाव मन पर होता है। स्वस्थ तथा सबल शरीर हो तो मन भी स्वस्थ तथा सबल होता है। यदि शरीर रुग्ण है तो मन भी रूग्ण होता है। पेट में दर्द हो तो मन पर उदासी छा जाती है।

बुरे विचार रोगों के मुख्य कारण हैं

शरीर को आक्रान्त करने वाले रोगों का मुख्य कारण दुर्विचार होता है। जो कुछ आपके मन में होगा, वही आपके स्थूल शरीर में प्रकट हो जायेगा। यदि किसी मनुष्य के प्रति कोई भी दुर्भावना या कटुता हो तो वह शरीर पर तत्काल अपना प्रभाव डालती है और उसमें किसी-न-किसी प्रकार का रोग पैदा कर देती है। तीव्र भावावेश, घृणा, दीर्घकालीन कटु ईर्ष्या, क्षयकारी चिन्ता और क्रोध के आवेश से शरीर के कोशाणु नष्ट होते हैं और हृदय, यकृत, वृक्क (गुरदा), तिल्ली और पेट के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। क्रोध के तीव्र आवेश मस्तिष्क के कोशाणुओं के लिए विशेष हानिकारक होते हैं, रक्त में विषैले रासायनिक पदार्थ पैदा कर देते हैं, एक व्यापक आघात पहुँचाते और उदासी पैदा करते हैं, अन्ननाल में आमाशय-रस, पित्त और अन्य पाचक रसों के स्राव को दबा देते हैं, आपकी शक्ति और ओजस्विता का शोषण करते, असामयिक ही वृद्धावस्था उत्पन्न करते और जीवन का हास करते हैं।

जब मन में उद्वेग हो तो शरीर भी अद्विग्न हो जाता है। मन और शरीर का सदा साथ है। जब दोनों में उद्वेग पैदा होता है तो प्राण की गति गलत दिशा में हो जाती है। उस समय यह सारे शरीर में निरन्तर तथा समान रूप से चलने की जगह विषम गति से चलता है। तब भोजन भी ठीक-ठीक नहीं पचता जिससे रोग पैदा हो जाते हैं। यदि मुख्य कारण को हटा दिया जाये तो सारे रोग स्वयं ही मिट जायेंगे।

शारीरिक रोग तो गौण रोग कहलाते हैं, जब कि मन को प्रभावित करने वाली वासनाएँ मानसिक अथवा मुख्य रोग कहलाती है। यदि कुविचारों को नष्ट कर दिया जाये तो शरीर के सभी रोग जाते रहेंगे। मन के निर्मल होने से शरीर स्वस्थ होता है। इसलिए अपनी विचार-क्रिया और विचारों के चुनाव में सावधान रहें। सदा उन्नत, सौम्य, प्रेमपूर्ण और कृपापूर्ण विचार बनाये रहें। आपको एकरसता, स्वास्थ्य और सौन्दर्य मिलेंगे।

शोचनीय व्यवहार

यह बड़े खेद का विषय है कि संसार के अधिसंख्य चिकित्सक अपने रोगियों को लाभ पहुँचाने के स्थान पर हानि ही अधिक करते हैं। वे अपने रोगियों से उनके रोग के स्वरूप को बढ़ा-चढ़ा कर बताते हैं। वे उनके मन में सब प्रकार से काल्पनिक भय भर देते हैं। वे संकेतों की शक्ति और रोगियों के मन पर उसके प्रभाव को नहीं जानते। उनके मन में लोभ भरा हुआ होता है, धनवान् बन जाने की वासना मूलबद्ध होती है, वे रोगियों से यथा-सम्भव अधिक-से-अधिक धन प्राप्त करने का पूरा प्रयत्न करते हैं। यदि वे रोगी को कहें, 'यह रोग तो कुछ भी नहीं है, मैं आपको थोड़े से

घण्टों में ही स्वस्थ कर दूँगा' तो उनको अधिक पैसा कौन देगा? वे रोगियों को झूठे संकेत देते हैं—'यह बड़ा भयानक रोग है, असाध्य रोग है। तुम्हारे फेफड़ों में खतरनाक विष या रोगाणु छिपा हुआ है।' चिकित्सक द्वारा दिये गये झूठे संकेत से उत्पन्न इन काल्पनिक भय के कारण बेचारा रोगी निद्रा रहित रात्रियाँ बिताता है। वह प्रतिक्षण सोचता है- "मैं किसी भी क्षण मर जाऊँगा। डाक्टर ने कहा है कि मेरा रोग भयानक और असाध्य है।" वह खिन्न जीवन घसीटता है। चिन्ता और भय नित्य ही रक्त में लाल कीटाणु लाखों की संख्या में नष्ट कर देते हैं। डाक्टर ऐसे झूठे संकेत व्यवसाय में अपना कौशल और निपुणता दिखाने के लिए भी दिया करते हैं।

सब अनिष्टों का मूल

यह मिथ्या कल्पना ही कि आप शरीर हैं, सब अनिष्टों का मूल है। गलत विचार करने के कारण आप अपने को शरीर मानते हैं, जिससे देहाध्यास पैदा होता है। आप शरीर में आसक्त हो जाते हैं। यह अभिमान है। फिर ममता आती है। आप अपने को पत्नी, पुत्र तथा घर से अभिन्न समझने लगते हैं। यह तादात्म्यता अथवा आसक्ति बन्धन, दुःख और संकट लाती है। जब युद्ध में लाखों जर्मन मारे गये तो आप कभी नहीं रोये। क्यों? क्योंकि उनमें आपकी एकात्मता या आसक्ति नहीं थी। परन्तु जब आपका पुत्र मर जाता है, तो आसक्ति या ममता के कारण आप बड़ी कातरता से रोते हैं। 'मेरा' शब्द से मन में बड़ा विचित्र प्रभाव होता है। 'घोड़ा मर गया' और 'मेरा घोड़ा मर गया' – इन दोनों वाक्यों को सुन कर मन पर दो प्रकार का प्रभाव होता है। इनके भेद को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

दुःख केवल मन में है

जब तक आप अपने मन से अपना सम्बन्ध रखते हैं, तभी तक दुःख मिलता है। नींद में वेदना नहीं रहती। यदि आपकी पीठ पर तीव्र पीड़ायुक्त सूजन हो तो रात्रि में सो जाने के पश्चात् आपको वेदना का अनुभव नहीं होता। केवल उसी समय जब कि मन नाड़ियों और चिन्तन द्वारा पीड़ित अंग के साथ सम्बद्ध होता है, आपको वेदना का अनुभव प्राप्त होता है। जब क्लोरोफार्म आदि के प्रयोग से मन का सम्बन्ध शरीर से नहीं रहता तो वेदना का अनुभव नहीं होता। अत्यन्त हर्ष की घड़ियों में तीव्र वेदना बिलकुल बन्द हो जाती है, क्योंकि मन दुःख के स्थान, शरीर से हटा लिया जाता है। यदि आप सचेत हो कर इच्छापूर्वक मन को ईश्वर या किसी अन्य आकर्षक पदार्थ पर लगा कर पीड़ित अंग से हटा सकें तो जाग्रत अवस्था में भी आपको वेदना का अनुभव नहीं होगा। यदि आपकी दृढ़ इच्छा-शक्ति या बलवती तितिक्षा होगी, तो भी आपको वेदना का अनुभव नहीं होगा। किसी दुःख या रोग का निरन्तर चिन्तन करते रहने से आप अपने दुःख को बढ़ाते ही हैं। दुःख तो मन में होता है। आत्मा आनन्दस्वरूप है।

शरीर पर नियन्त्रण हेतु मन पर विजय

अधिकतर मनुष्यों के मन पर शरीर का प्रभुत्व अधिक होता है। उनका मन परिपक्व नहीं होता, इसलिए अन्नमय कोश में ही रहता है। विज्ञानमय कोश (बुद्धि) की वृद्धि करें और इसके द्वारा मनोमय-कोश (मन) का निग्रह करें। विज्ञानमय कोश की वृद्धि और पुष्टि गूढ़ विचार तथा तर्क, सुव्यवस्थित ध्यान-क्रिया, ब्रह्म-चिन्तन तथा उपनिषदों, योगवासिष्ठ और ब्रह्मसूत्रों के स्वाध्याय द्वारा होती है।

मन का संयम करने से शरीर का भी पूर्ण संयम हो जाता है। शरीर मन की छाया है। यह मन का तैयार किया हुआ साँचा है जिसमें वह अपने को अभिव्यक्त करता है। जब आप मन को जीत लेते हैं, तब शरीर आपका दास हो जाता है।

परिच्छेद- ३

मन, प्राण और कुण्डलिनी

प्राण : मन का ओवरकोट

संसार में दो मुख्य तत्त्व है मन और प्राण जब-जब प्राण की गति होती है, तभी मन की गति होती है। नाशिका के बाहर श्वास जाने पर भी मन श्वास के साथ बाहर निकलता है। प्राण मन का ओवरकोट है। प्राण अन्न को पचाता, इसको रस और रक्त में बदलता और उसे मस्तिष्क तथा मन में भेजता है। ऐसा होने पर ही मन सोच सकता और ब्रह्म-विचार कर सकता है। मन का जीवन विचार-निर्माण करने वाले सूक्ष्म आत्मिक प्राण के स्पन्दन से ही बना रहता है।

प्राण स्थूल है। मन सूक्ष्म है। मन पाँचों तन्मात्राओं के सात्त्विक अंश के पंचीकृत रूप से बना है। प्राण इनके राजसिक अंश के पंचीकृत रूप से बना है। यही कारण है कि मन प्राण से भी अधिक सूक्ष्म है।

प्राणमय कोश स्थूल शरीर से अधिक सूक्ष्म है। यह अन्नमय कोश को आच्छादित करता है और उससे अधिक विस्तृत है। मनोमय कोश प्राणमय कोश से भी अधिक सूक्ष्म और विस्तृत है। किसी मनुष्य पर भौतिक प्रभाव डालने के लिए आपको उसके शरीर का स्पर्श करना पड़ता है; परन्तु उसे अपना प्राण आप दूर खड़े रह कर भी केवल 'पासों' के द्वारा ही दे सकते हैं; क्योंकि प्राण स्थूल शरीर से अधिक सूक्ष्म है। आप विचार-शक्ति द्वारा किसी मनुष्य पर मानसिक प्रभाव डाल सकते हैं, चाहे वह आपसे हजारों मील दूर रहता हो; क्योंकि मानसिक शक्ति प्राण से सूक्ष्मतर है ।।

प्राण और मन अन्योन्याश्रित हैं

प्राण और मन का सम्बन्ध आधार और आधेय का है। इन दोनों का सम्बन्ध ऐसा है, जैसा सुगन्धि और फूल का या तेल और तिलों का। यदि दोनों में से एक भी नष्ट हो जाये तो दूसरे का अस्तित्व नहीं रहेगा। यदि मन और प्राण का अस्तित्व न रहे तो विचार उत्पन्न ही नहीं होंगे। दोनों के नाश से मोक्ष की प्राप्ति हो जायेगी।

एकाग्रता और निरोध मन की दो अवस्थाएँ हैं। स्पन्द और निरोध प्राण की दो अवस्थाएँ हैं। जब मन एकाग्र हो जाता है तो प्राण की स्पन्दावस्था स्वयं ही हो जाती है। यदि शुद्ध सत्त्वगुण के द्वारा मन को निर्मल कर दिया जाये तो सारे शरीर में प्राण की गति स्वच्छन्द हो जाती है और भोजन भली प्रकार पच जाता है।

मन, प्राण और वीर्य

मन, प्राण और वीर्य एक ही सम्बन्ध-सूत्र में बँधे हैं। यदि इनमें से एक का भी संयम हो जाता है तो शेष दोनों का संयम बड़ी सुगमता से हो जाता है। हठयोगी प्राण का निग्रह करने का प्रयत्न करते हैं और राजयोगी मन का संयम करते हैं। ज्ञानयोगियों की साधना बुद्धि और इच्छा-शक्ति से आरम्भ होती है।

प्राणायाम के लाभ

प्राणायाम से आप मनोबल को बढ़ा सकते हैं और विचार-निग्रह तथा विचार-संस्कृति का विकास भी कर सकते हैं। इससे धारणा और ध्यान में सहायता मिलती है, मन स्थिर हो जाता है तथा रजोगुण और तमोगुण दूर हो जाते हैं। वह मन के कमल को जला देता है।

प्राणायाम द्वारा मन स्थूल पदार्थों से सूक्ष्म की ओर जाता है; इसलिए काम वासना का निग्रह करने के लिए प्राणायाम को अच्छा नियन्त्रक माना गया है। जब कभी भी कोई दूषित विचार आपके मन को शुब्ध करे तो तुरन्त पद्मासन या सिद्धासन में बैठ जायें और प्राणायाम करने लगें। कुविचार आपको तुरन्त ही छोड़ देगा।

मन से प्राण की वरिष्ठता

दृष्टि वाणी से अधिक आन्तरिक होती है; क्योंकि साधारणतया दृष्टि बिना किसी विरोध के सूचना देती है। इसी प्रकार श्रवण शक्ति दृष्टि से अधिक आन्तरिक है, क्योंकि आँख भले ही धोखा दे जाये (जैसे—सीपी को चाँदी देखना), परन्तु कान अस्तित्वहीन शब्द कभी नहीं सुनता। इसी प्रकार कान भी मन के अवधान की सहायता से क्रिया करता है और मन प्राण के ऊपर आश्रित रहता है। इसलिए प्राण सबसे आन्तरिक है; वही ब्रह्म है।

छान्दोग्योपनिषद् में एक दृशन्त दिया हुआ है जिससे इस बात को समझने में आसानी होगी। "तत्पश्चात् मन ने उत्क्रमण किया। उसने एक वर्ष प्रवास करने के अनन्तर फिर लौट कर इन्द्रियों से पूछा- 'मेरे बिना तुम कैसे जीवित रह सकी?' उन्होंने कहा- 'जिस प्रकार बच्चे, जिनका कि मन विकसित नहीं होता, प्राण से प्राणन-क्रिया करते, वाणी से बोलते, नेत्र से देखते और कान से सुनते हुए जीवित रहते हैं। उसी प्रकार हम भी जीवित रहे।' यह सुन कर मन ने शरीर में प्रवेश किया। तदनन्तर प्राण से मन ने कहा—'मैं जो आयतन हूँ, सो तुम्हीं आयतन हो। लोक में इन्द्रिय को मन नहीं कहते, परन्तु 'प्राण' ऐसा कहते हैं; क्योंकि वह प्राण ही है" (छान्दोग्योपनिषद् : ५-१-११,१४,१५) । इस दृष्टान्त से यह प्रकट होता है कि प्राण मन तथा अन्य इन्द्रियों से श्रेष्ठ है। वस्तुतः किसी प्रकार का विवाद नहीं था।

मन और कुण्डलिनी

कुण्डलिनी शक्ति, पृष्ठवंश के अन्त में मूलाधार चक्र के अन्दर नीचे को मुख कर साढ़े तीन बल दिये सर्पिणी के रूप में प्रसुप्त पड़ी रहती है। यह कुण्डलिनी प्राण से सम्बद्ध है और प्राण का मन से सम्बन्ध है। एक वेदान्ती भी

कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करके ही ज्ञान-निष्ठा प्राप्त कर सकता है। चाहे राजयोग हो, भक्तियोग हो अथवा ज्ञानयोग हो, इस आद्य शक्ति को जाग्रत किये बिना अतिचेतनावस्था या समाधि सम्भव नहीं है।

कुण्डलिनी शक्ति तभी जाग्रत हो सकती है, जब मन वास्तव में कामनाओं तथा वासनाओं से मुक्त हो जाता है। शक्ति-चालन या अश्विनी मुद्रा, ताड़न और प्रचारण- ये सब कुण्डलिनी को जाग्रत करने में सहायक होते हैं। महावेध कुण्डलिनी को और ऊपर ले जाने में सहायक होता है। जब कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हो जाती है तो मन प्राण और जीव के साथ सुषुम्ना में प्रवेश कर जाता है और सारा प्रत्यक्ष दर्शन चिदाकाश में ही होता है। कुण्डलिनी के जाग्रत होने पर मन प्राण और अग्नि के सहित मेरुरज्जु में स्थित सुषुम्ना नाड़ी अथवा ब्रह्म-नाड़ी के द्वारा ऊपर को जाने लगता है। योगी भौतिक (स्थूल) चेतना से मुक्त हो जाता है। उसके बाह्य स्थूल अनुभव बन्द हो जाते हैं। कुण्डलिनी जब प्रथम बार जाग्रत होती है तो योगी को छह प्रकार के अल्पकालिक अनुभव होते हैं अर्थात् आनन्द, कम्पन, उद्भव (शरीर का पृथ्वी के ऊपर उठ जाना), घूर्णा (दिव्योन्माद में शरीर का झूमना), निद्रा और मूर्च्छा। कुण्डलिनी को जाग्रत करके उसे कपाल में सहस्रार चक्र में ले जाना होता है।

जब कुण्डलिनी एक चक्र से दूसरे चक्र में जाती है तो मन की परतें एक के बाद एक खुलती जाती हैं। योगी प्रत्येक नये चक्र पर पृथक् प्रकार का आनन्द अनुभव करता है। उसे भाँति-भाँति के अनुभव और शक्तियाँ प्राप्त होते हैं तथा पाँच तत्त्वों पर वश्यता प्राप्त होती है। वह संसार को सूक्ष्म रूप में देखता है तथा सूक्ष्म जगत् के अनेक प्रकार के प्रारूपों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करता है। जब कुण्डलिनी सहस्रार चक्र में प्रवेश करती है तो योगी चिदाकाश में रहता है।

परिच्छेद-४

मन और आहार

आहारशुद्धी सत्त्वशुद्धिः ।
सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः ।
स्मृतिलाभे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः ।।

- आहार-शुद्धि होने पर अन्तःकरण की शुद्धि होती है; अन्तःकरण की शुद्धि होने पर निश्चल स्मृति होती है तथा स्मृति की प्राप्ति होने पर सम्पूर्ण ग्रन्थियों की निवृत्ति हो जाती है। (छान्दोग्योपनिषद् : ७-२६-२)

मन भोजन से बना है

जो भोजन हम करते हैं, उससे मन बनता है। आहार का सूक्ष्मतम अंश हृदय में पहुँचता है और वहाँ से हिता-नाड़ी में प्रवेश करके वाक्-इन्द्रिय-समूह को बनाता है। इस प्रकार आहार से वर्धित मन भौतिक है और जैसा वैशेषिक मानते हैं, नित्य नहीं है।

उपनिषद्-वेत्ता शास्त्रज्ञों का विश्वास था कि मन की बनावट आहार पर निर्भर रहती है। "खाया हुआ अन्न तीन प्रकार का हो जाता है। उसका जो अत्यन्त स्थूल भाग होता है वह मल हो जाता है, जो मध्यम भाग है वह मांस हो जाता है, और जो अत्यन्त सूक्ष्म भाग होता है वह मन हो जाता है" (छान्दोग्योपनिषद् : ६-५-१) ।

"मथे जाते हुए दही का जो सूक्ष्मतम भाग होता है वह ऊपर इकट्ठा होता है, वह नवनीत होता है। उसी प्रकार खाये हुए अन्न का जो सूक्ष्मतम अंश होता है, वह सम्यक् प्रकार से ऊपर आ जाता है, वह मन होता है" (छान्दोग्योपनिषद् : ६-६-१,२) । हमें पता लगता है कि परवर्ती भगवद्गीता-काल में भी सात्त्विक, राजस और तामस —— तीनों प्रकार के स्वभावों के कारण तीनों भिन्न-भिन्न प्रकार का भोजन ही समझा जाता था (भगवद्गीता १७८ तथा १०) ।

मन की कोटि भोजन की कोटि पर निर्भर करती है

भोजन का मन के साथ सीधा तथा घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा मन के गठन में यह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सात्त्विक आहार से मन शान्त होता है तथा राजसिक भोजन से मन में उत्तेजना होती है। मांसाहारी शेर और दुर्वा चुगने वाली गाय के स्वभावों के भेद देखिए आप नित्य स्पष्ट रूप से देखते हैं कि भोजन का मन पर कैसा महत्त्वपूर्ण प्रभाव होता है। भारी, राजसी और अपाच्य भोजन करने पर मन का निग्रह बड़ा कठिन हो जाता है। मन भागता, विचरण करता तथा बन्दर की भाँति सदा उछल-कूद करता रहता है। मदिरा मन के अन्दर अत्यधिक उत्तेजना उत्पन्न करती है।

ध्यान में भोजन की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। ध्यान के लिए भोजन हलका, सात्विक और पुष्टिकारक होना चाहिए। शरीर अन्नमय है। इसी अन्नमय कोश में भैरवी चक्र है। भैरवी चक्र माया का नाम है। दूध, फल आदि हलका सात्त्विक भोजन मन को विष्णु चक्र की ओर, और फिर वहाँ से बड़ी सुगमता से निर्विकल्प समाधि की ओर ले जाता है।

जब मन का स्वरूप हमारे भोजन के स्वरूप पर निर्भर करता है तो ध्यान-परायण जीवन-यापन करने वाले साधकों तथा संसार में रह कर आध्यात्मिक जीवन यापन में प्रयत्नशील गृहस्थों के हित में शुद्ध सात्त्विक भोजन-शैली पर जोर देना समुन्नत नैतिकता के लिए स्वाभाविक ही है। इसीलिए श्रद्धेय सनत्कुमार ने नारद का मल घुल जाने के बाद ही उनको मोक्ष मार्ग बताया था। अन्धकार से परे ले जाने वाले मार्ग की खोज भोजन की शुद्धि में ही करनी चाहिए; क्योंकि आहार-शुद्धि से मन की शुद्धि स्वतः ही हो जाती है।

हानिकारक भोजन

भिन्न-भिन्न भोजन मस्तिष्क के नाना विभागों में भिन्न-भिन्न प्रभाव उत्पन्न करते हैं। मसालेदार पकवान, खट्टे पदार्थ, उड़द, प्याज, लहसुन, चाय, शराब, मछली, मांस, राई, तेल इत्यादि कामवर्धक हैं; अतः ये त्याज्य हैं। साधकों को ये पदार्थ प्रत्येक अवस्था में त्यागने चाहिए। जिज्ञासु को मांस, मछली और मद्य का नितान्त त्याग कर देना चाहिए; क्योंकि ये पदार्थ मन को स्थूल बनाते हैं और उसमें उत्तेजना उत्पन्न करते हैं। भारी भोजन से तन्द्रा और आलस्य आता है। चाय छोड़ देनी चाहिए; क्योंकि इससे वीर्य नष्ट होता है। चीनी सामान्य परिमाण में खानी चाहिए। यदि बिलकुल छोड़ दी जाये तो अच्छा है।

साधना में सहायक भोजन

दूध, फल, बादाम, मिश्री, मक्खन, ताजी जई, रात में भिगोई हुई चिनाई, रोटी आदि भोजन ध्यान करने में सहायक है। तेड़ एक प्रकार का कन्दमूल, जो ब्रह्मपुरी, बहिगुहा और हिमालय के अन्य भागों में बहुत मिलता है बड़ा सात्विक भोजन है। इससे ध्यान में सहायता मिलती है मेरे मित्र स्वामी पुरुषोत्तमानन्द जी ऋषिकेश से ची मील दूर प्रसिद्ध वसिष्ठगुहा में रह कर कुछ दिनों तक वहाँ इस पर ही निर्वाह करते थे। साधकों के लिए सोंठ का सेवन अच्छा होता है। इसका सेवन दूध के साथ किया जा सकता है। इससे मन में ताजगी रहती है और पाचन-क्रिया को सहायता मिलती है। योगी इसका सेवन प्रायः करते हैं। त्रिफला का जल भी योगी पिया करते हैं। इससे कोडबद्धता और स्वप्नदोष दूर हो कर शरीर को शीतलता मिलती है। हरीतकी भी चबायी जा सकती है। इससे वीर्य की रक्षा और स्वप्न-दोष का निग्रह होता है। उबाले या भूने हुए बिना नमक के आलू भी अच्छे होते हैं।

चेतावनी

आकस्मिक परिवर्तन की अपेक्षा क्रमिक सुधार अच्छा होता है। किसी बात में, विशेषकर भोजन में कोई परिवर्तन एकाएक नहीं करना चाहिए। धीरे-धीरे परिवर्तन करें। आपका शरीर परिवर्तन को बिना किसी रुकावट के अपना लेगा। "प्रकृति में सहसा कोई परिवर्तन नहीं हुआ करता।"

जो राजयोगी मन का संयम करना चाहता है, उसको विलासिता और तीव्र तामसिक तप दोनों ही अतियों से बचना चाहिए। अधिक उपवास करने से अत्यधिक दुर्बलता बढ़ती है। आप कुछ भी साधना नहीं कर सकते। आप विचार नहीं कर सकते। आप युक्ति नहीं सोच सकते। जो भी भोजन आपके अनुकूल हो, वही खायें। इसके लिए अधिक सोच-विचार न करें। जो भी आहार सुगमता से प्राप्य और आपके शरीर के अनुकूल हो, वही हानिरहित है।

भोजन कब छोड़ा जा सकता है ?

भोजन केवल शक्ति का समूह है जल और वायु से भी शक्ति मिलती है। बिना भोजन के कई दिनों तक जीवित रहा जा सकता है; परन्तु वायु के बिना थोड़ी देर भी जीवित नहीं रहा जा सकता। ऑक्सीजन इससे भी अधिक आवश्यक है। शरीर धारण करने के लिए शक्ति की आवश्यकता है। यदि इस शक्ति को आप किसी और स्रोत से प्राप्त कर सकें, तो आप भोजन बिलकुल ही छोड़ सकते हैं। योगी लोग ब्रहारन्ध्र में से स्रवित अमृत का पान करते हैं और इस प्रकार बिना भोजन के शरीर धारण करते हैं। ज्ञानी को अपनी शुद्ध और दृढ इच्छाशक्ति से वह शक्ति मिलती है और बिना भोजन के शरीर धारण कर सकता है। यदि आप विश्व शक्ति अथवा सूर्य मण्डल की शक्ति से बल ग्रहण करने की क्रिया जानते हैं तो आप इस शक्ति के आधार पर चाहे जितने काल तक बिना भोजन के शरीर धारण कर सकते हैं।

मधुकरी भिक्षा का रहस्य

मन भोजन के सूक्ष्म सार से बनता है। इसलिए जिन मनुष्यों से भोजन प्राप्त होता है, उनसे मन आसक्त हो जाता है। यदि आप कुछ महीनों तक अपने किसी मित्र के साथ रहें और उसी का भोजन करें तो उस अन्नदाता मित्र में आपका मन आसक्त हो जायेगा। यही कारण है कि संन्यासियों को तीन या पाँच घरों से मधुकरी भिक्षा पर निर्वाह करने का नियम है। वह आसक्ति से बचता है तथा एक गाँव से दूसरे गाँव में फिरता है। परिव्राजक- जीवन में उसे एक ग्राम में एक दिन से अधिक ठहरने का निषेध है। जो परमहंस इस प्रकार की भिक्षा पर रहता है, उसका मन गंगाजल के समान निर्मल हो जाता है और वह सब प्रकार की आसक्तियों से मुक्त रहता है। आसक्ति बन्धन लाती है। आसक्ति मृत्यु है। आसक्ति सारी बुराइयों की जड़ है।

परिच्छेद-५

अवस्था - त्रय

मन की तीन अवस्थाएँ होती है— जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति ।

जाग्रत अवस्था

जीव जब तक मन के विकारों द्वारा विभिन्न बाह्य पदार्थों से सम्बद्ध रहता है तब तक वह जाग्रत कहलाता है। यह इन पदार्थों को समझता है तथा अपने को स्थूल देह से अभिन्न मानता है; जो उन बाह्य पदार्थों में से एक है। जाग्रत अवस्था में मन मस्तिष्क में निवास - करता है।

स्वप्न- अवस्था

जब मन हिता नाड़ी में प्रवेश करता है, जो कि हृदय में से निकल कर इसके चारों ओर बड़ी झिल्ली को घेरे हुए है और बाल के सहस्रांश के समान सूक्ष्म है और सफेद, काले, पीले और लाल रंगों के सूक्ष्म अंशों से पूर्ण है, उस समय जीव स्वप्नावस्था को भोगता है।

स्वप्न में इन्द्रियाँ वैसे ही अलग फेंक दी जाती हैं जैसे आप सोने से पूर्व अपने भारी वस्त्रों को उतार फेंकते हैं। स्वप्नावस्था में इन्द्रियाँ शान्त होती हैं और मन में लीन हो जाती हैं। स्वप्न में केवल मन ही क्रिया करता है, स्वतन्त्र और अबाध गति से कार्य करता है। स्वप्न में पृथ्वी, समुद्र, घोड़ा और हाथी कुछ भी नहीं रहता; परन्तु मन अपने ही शरीर में से जाग्रत अवस्था में प्राप्त हुई सामग्री से सब पदार्थ बना लेता है। मन स्वयं ही मधु मक्षिका, पुष्प, पर्वत, हाथी, घोड़ा, नदी आदि के रूप में बन जाता है। यही कर्ता है - और यही पदार्थ भी बन जाता है। द्रष्टा और दृश्य दोनों एक होते हैं।

जाग्रत अवस्था में प्राप्त हुए आकार ही स्वप्नावस्था के पदार्थ बन जाते हैं और केवल स्वप्न के द्रष्टा के लिए उनका बाहरी तत्त्व रहता है। जब बाह्य पदार्थों के संस्कारों से विकार होता है, तो जीव स्वप्न देखता है। स्वप्न-दर्शन एक आन्तरिक अंग से होता है। जिसे 'मनस्' कहते हैं। इसीलिए इसे मानसिक दर्शन कहते हैं।

प्रत्येक मनुष्य का अपना न्यारा ही मानसिक संसार और न्यारे ही स्वप्न के पदार्थ होते हैं। युवती स्त्री के स्वप्न के पदार्थ उसका पति और नवजात शिशु होते हैं। उसके मन में से ही दो दृढ मूर्तियाँ बनी रहती है। निरन्तर विचार करते रहने से इन मूर्तियों की प्रबलता बढ़ जाती है। डाक्टर के स्वप्न के पदार्थ उसके रोगी और बैरिस्टर (विधिवक्ता) के स्वप्न के पदार्थ उसके मुवक्किल होते हैं।

मनुष्यों में स्वभाव का भेद हुआ करता है। कुछ को स्वप्न बहुत कम आते हैं। आत्म ज्ञानी को कभी स्वप्न नहीं होता।

जाग्रत तथा स्वप्न अवस्थाओं में भेद

जाग्रत और स्वप्न अवस्था का अन्तर यह है कि जाग्रत अवस्था में मन बाह्य पदार्थों के अंगों का आश्रय लेता है और स्वप्नावस्था में यह अपने ही अंक (रूपरेखा) बनाता है और उनको भोगता है; परन्तु निश्चय ही इसके लिए भी जाग्रत काल से सामग्री लेता है।

जाग्रत अवस्था में मन से स्वतन्त्र रूप से पदार्थों की स्थिति रहती है। इसीलिए सो कर उठते ही आप प्रतिदिन वही पदार्थ देखते हैं, परन्तु स्वप्न में पदार्थों की स्थिति उतने ही काल तक रहती है जब तक मन वहाँ रहता है, जब तक स्वप्न टिका रहता है; क्योंकि स्वप्न के पदार्थ मन की कल्पना से बने हैं। मन अपने ही शरीर में से जाग्रत अवस्था में प्राप्त हुई सामग्री से सब पदार्थ बना लेता है। जब मन जाग्रत अवस्था में आता है तो स्वप्न के सारे पदार्थ तुम हो जाते हैं।

जाग्रत अवस्था एक दीर्घ स्वप्न ही है

आप स्वप्न देखते हैं कि आप राजा है, आप सारे राजोचित ऐश्वर्यों का उपभोग करते हैं। ज्यों ही आप जागते हैं, सब कुछ लुप्त हो जाता है। परन्तु आप इस हानि से दुःख नहीं मानते; क्योंकि आप जानते हैं कि स्वप्न के सारे पदार्थ मिथ्या होते हैं। जाग्रत अवस्था में भी यदि आपकी इसी भाव में निष्ठा हो जाये कि संसार एक मिथ्या भ्रम है तो आपको दुःख का अनुभव नहीं होगा। जब आप परम तत्त्व (ब्रह्म) को जान लेंगे तो जाग्रत- -चेतना भी स्वप्न के समान मिथ्या प्रतीत होने लगेगी। जाग्रत अवस्था दीर्घ स्वप्न ही है। जाग्रत अवस्था की चेतना स्वप्न या सुषुप्ति में नहीं रहती; इसलिए यह भ्रममूलक है। तस्व पदार्थ सारी अवस्थाओं में वर्तमान रहता है। मेरे बच्चे जागो और ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करो!

स्वप्न- जाग्रत

मनोराज्य (मनसूबे गढ़ना), स्वप्न के पदार्थों और घटनाओं को याद करना, सुदूर जाग्रत अवस्था की स्मृति — ये सब स्वप्न - जाग्रत (अर्थात् जाग्रत अवस्था में स्वप्न देखने के समान) हैं।

सुषुप्त अवस्था

जब मन पुरीतत्-नाड़ी में प्रवेश करता है तो सुषुप्ति-अवस्था होती है। दृढ सुषुप्ति में अनुभवमूलक चेतना रुक जाती है। इस अवस्था में मन की क्रिया भी नहीं रहती और राग-द्वेष भी नहीं रहते। मन अपने अधिष्ठान में लय हो जाता है। यह मनोलय कहलाता है। इन्द्रियों की भी क्रिया नहीं रहती।

यह दृढ सुषुप्ति की अवस्था अतिशय अभाव की दशा नहीं है; क्योंकि यदि ऐसा मान लिया जाये तो जागने पर सुखपूर्ण निद्रा की स्मृति कैसे हो सकती है? आत्मा की सत्ता रहती है और उसमें कोई अनुभव नहीं रहता। चेतना अविरल (धारावाही) रहती है। जागने पर आप जानते हैं कि आपका अस्तित्व सुषुप्ति में भी बना रहता है। आप समझते हैं कि आप सर्वदा विद्यमान रहते हैं। वेदान्ती अपना शास्त्र-निर्माण इस सुषुप्ति अवस्था के ही चारों ओर करते हैं। यह अवस्था उनकी अद्वैत दशा का संकेत देती है। वेदान्त को भली प्रकार समझ लेने के वास्ते जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं को भली प्रकार जानना चाहिए।

बृहदारण्यक उपनिषद् (२-१-१६) में अजातशत्रु ने गार्ग्य को समझाते हुए कहा है- "वह जो विज्ञानमय पुरुष है, जब सोया हुआ था, तब कहीं था? यह जो विज्ञानमय पुरुष है, जब यह सोया हुआ था, उस समय यह विज्ञान के द्वारा इन इन्द्रियों की ज्ञान-शक्ति को ग्रहण कर यह जो हृदय के भीतर आकाश है, उसमें शयन करता है। जिस समय

यह ज्ञान-शक्तियों को ग्रहण कर लेता है, उस समय इस पुरुष का 'स्वपिति' नाम होता है। उस समय घ्राणेन्द्रिय लीन रहती है, वाणी लीन रहती है, चक्षु लीन रहता है, श्रोत्र लीन रहता है और मन भी लीन रहता है।"

जब स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और तद्भव विकारों के पृथक् हो जाने पर यह मन आत्मा में लीन हो कर सुषुप्तावस्था में रहता है, भासता है तो इसको सोया हुआ कहते हैं। "जिस अवस्था में यह पुरुष 'सोता है' ऐसा कहा जाता है; उस समय सौम्य ! यह सत् से सम्पन्न हो जाता है—यह अपने स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। इसी से इसे 'स्वपिति' ऐसा कहते हैं; क्योंकि उस समय यह स्व-अपने को ही प्राप्त हो जाता है" (छान्दोग्योपनिषद् : ६-८-१) ।

शंकराचार्य कहते हैं कि मन की क्रिया से उत्पन्न द्वैत-भाव केवल जाग्रत और स्वप्न अवस्था में ही रहते हैं; सुषुप्ति-काल में नहीं रहते। जाग्रत और स्वप्न दोनों अवस्थाओं में विचार, नाम और रूप साथ-ही-साथ आते हैं; अतः संसार भी प्रकट होता है। स्वप्न-रहित सुषुप्ति में कुछ भी भाव नहीं रहते और इसलिए संसार भी नहीं रहता। मन ही भेद, पार्थक्य और द्वैत-भाव उत्पन्न किया करता है। यदि सत्त्व की वृद्धि करके और अहंग्रह - उपासना द्वारा इस अशुद्ध मन का नाश कर दिया जाये तो आपको सर्वात्म भाव का अनुभव होने लगेगा। इसके लिए साधक को दृढ़ और सतत प्रयत्न करना चाहिए।

तीनों अवस्थाओं में चेतना की श्रेणियाँ

निद्रा में आपके मनोमय या प्राणमय शरीर में सदा कुछ-न-कुछ क्रिया चलती रहती है। वही क्रिया जाग्रत अवस्था में भी प्रकट हो जाती है। उदाहरणार्थ कोई-कोई अपने को पूर्ण बनाने को बहुत उत्सुक रहते हैं और इसके लिए दिन में बड़ा प्रयत्न करते हैं। वे रात को सो जाते हैं और जब अगले दिन जागते हैं तो पूर्व-दिन के प्रयत्नों के लाभ का उन्हें कोई चिह्न नहीं मिलता। उन्हें उतना ही प्रयत्न फिर प्रारम्भ से करना पड़ता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जो 1-कुछ प्रयत्न और सफलता प्राप्त हुई थी, वह जीव की जाग्रत अवस्था से ही सम्बन्ध रखती थी, सूक्ष्म तथा प्रसुप्त अवयवों तक तो उसका प्रभाव पहुँचा ही नहीं था। निद्रा में वे इन सूक्ष्म अवयवों के वश में पड़ गये और कठोर श्रम से जो कुछ सफलता जाग्रत अवस्था में प्राप्त की थी, वह सब इन अज्ञात सूक्ष्म अवयवों ने हड़प ली।

सचेत रहें। दिन में और रात्रि में भी सदा चेत रखें। पहले चेतना प्राप्त करनी होगी। उसके बाद वश्यता प्राप्त होगी। आप लोगों में से जिनको स्वप्न की बात याद रहती है, उन्हें ऐसा अनुभव भी हुआ होगा कि कभी-कभी स्वप्न देखते हुए भी आपको यही मालूम होता है कि यह स्वप्न ही है। आप जानते हैं कि यह अनुभव स्थूल जगत् से सम्बन्ध नहीं रखता। यदि एक बार आपको मालूम हो जाये तो आप वहाँ भौतिक जगत् का सा व्यवहार कर सकते हैं। स्वप्नावस्था में भी आप अपनी चैतन्य इच्छा-शक्ति का प्रयोग करके अपने स्वप्नानुभव की गति बदल सकते हैं और जैसे-जैसे आप विशेष रूप से चैतन्य होते जायेंगे, आप अपने ऊपर उतना ही संयम रात्रि में भी रख सकेंगे जितना दिन में, शायद रात्रि में ज्यादा संयम रख सकेंगे, क्योंकि रात्रि में आप शरीर के बन्धन से मुक्त रहते हैं। शरीर-सम्बन्धी चेतन क्रियाओं का संयम करना अधिक कठिन होता है; क्योंकि ये क्रियाएँ मन और प्राण की क्रियाओं से अधिक दृढ़ और अपरिवर्तनशील होती हैं। रात्रि में आपके प्राण-सम्बन्धी और मानसिक विभाग विशेष क्रियाशील होते हैं। दिन में उन पर विशेष प्रतिबन्ध लगा होता है; क्योंकि स्थूल शरीर की चेतना मानसिक और प्राणाम चेतना का स्थान स्वतः ले लेती है । सुषुप्ति में यह प्रतिबन्ध हट जाता है और मानसिक तथा प्राणमय क्रियाएँ विशेष रूप से प्रकट हो जाती हैं।

सुषुप्ति और अद्वैत-निष्ठा में प्रभेद

"सुषुमि में मन सूक्ष्म दशा में रहता है। वृत्तियों की भी सूक्ष्म दशा हो जाती है। परन्तु अद्वैत-निष्ठा में मन होता ही नहीं, संसार नहीं रहता तथा संसार ब्रह्म में लीन प्रपंचोपशमम्) रहता है" (माण्डूक्योपनिषद् ७) ।

तीनों अवस्थाओं में परमात्मा के विविध रूप

समस्त प्राणियों के अन्दर रहने वाले परमात्मा के चार रूप हैं जो विश्व, तैजस्, प्राज्ञ और तुरीय बहलाते हैं। विश्व का निवास दक्षिण नेत्र, तैजसू का मन ('मनस्यन्तस्तुतैजसः 'माण्डूक्योपनिषद् पर गौडपाद कारिका) और प्राज्ञ का विकाश है। इनके भोग्य-पदार्थ तीन प्रकार के स्थूल, सूक्ष्म और आनन्द तथा इनकी तृप्ति भी तीन प्रकार की हैं- **"भोगास्त्रिधा तृप्तिस्त्रिधा ।"**

"जागरितस्थानो बहिष्प्रज्ञः सप्तांग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः । " ओंकार का प्रथम चरण वैश्वानर है-जिसका स्थान जाग्रत अवस्था है, जिसकी प्रशा वस्तुनिह है, जिसके सात अंग और उन्नीस मुख हैं और जो स्थूल पदार्थों को भोगता है माण्डुक्योपनिषद् ३) वस्तुनिष्ठ मन जाग्रत अवस्था में काम करता है।

सात अंग ये हैं—द्युलोक शिर है, सूर्य नेत्र है, वायु श्वास है, आकाश कमर है, जल जंघा है, अनि मुख है और पृथ्वी उसके चरण हैं।

उन्नीस मुख ये हैं-पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण तथा अन्तःकरण चतुष्टय अर्थात् मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार।

"स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः सप्तांग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तमुक् तैजसो द्वितीयः पादः । " ओंकार का दूसरा चरण तेज है, जिसका स्थान स्वप्नावस्था है, जिसकी प्रज्ञा आत्मनिष्ठ है, जिसके सात अंग हैं, उन्नीस मुख हैं और जो सूक्ष्म पदार्थों को भोगता है (माण्डूक्योपनिषद् ४) स्वप्नावस्था से सम्बद्ध चैतन्य तैजस कहलाता है। यह सूक्ष्म जगत् का भोक्ता है। आत्मनिष्ठ मन और मिथ्या अहंकार स्वप्न में काम करते हैं।

"यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम् । सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक्चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः।" ओंकार का तीसरा पद प्राज्ञ है जिसका स्थान सुषुप्ति है, जिसमें सारे भेद एकरूप हो जाते हैं, जो प्रज्ञानघन, आनन्दमय, आनन्द का भोगने वाला और चेतना का द्वार है। यह सुषुप्ति अवस्था है जिसमें सोने वाले को किसी वस्तु की इच्छा नहीं रहती और न कोई स्वप्न देखता है (माण्डूक्योपनिषद् : ५)। अपनी वासनाओं सहित मन सुषुप्ति-अवस्था में हृदयावस्थित मुख्य प्राण में विश्राम लेता है। सारी वृत्तियों की सूक्ष्मावस्था हो जाती है।

परिच्छेद- ६

गुण- त्रय

गुण तथा वृत्तियाँ

सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण—ये मन के तीन गुण हैं। इन तीनों गुणों के अनुरूप ही मन की तीन वृत्तियाँ होती हैं—सत्त्वगुण से उत्पन होने वाली शान्त-वृत्ति, रजोगुण से उत्पन्न होने वाली घोर-वृत्ति और तमोगुण से उत्पन्न होने वाली मूढ-वृत्ति । साम्यावस्था शान्त-वृत्ति है, क्रोध घोर-वृत्ति है तथा आलस्य, प्रमाद और तन्द्रा मूढ़-वृत्तियाँ हैं।

सत्त्वगुण के लक्षण

सत्त्वगुण पवित्रता है, प्रकाश है। सत्त्वगुण मोक्ष-प्राप्ति के लिए अनुकूल शक्ति है। दैवी सम्पत् अर्थात् अभय, शौच, चित्त-शुद्धि आदि गुण आपको मोक्ष दिला सकते हैं। सत्त्वगुण का फल ब्रह्म-विचार अर्थात् सत्य की खोज, सत् और असत् का विवेक होता है।

सात्त्विक मन सदा स्थिर रहता है। उसको अन्दर से ही आनन्द मिलता है। वह अनिश्चित काल तक एक ही स्थान पर रह सकता है, व्यक्तियों से दीर्घ काल तक मित्रता रख सकता है, अनेक दिनों तक गीता और योगवासिष्ठ पढ़ सकता है तथा बिना शिकायत किये लगातार वर्षों तक दाल-रोटी खा कर रह सकता है।

सात्त्विक क्षणों में जब मन में शुद्ध सात्त्विकता की प्रधानता होती है तो मन मुकुर के निर्मल होने के कारण आप दिव्यात्मा से सम्पर्क में होते हैं। आपको प्रेरणा मिलती है। आप सुन्दर कविताएँ भी करते हैं। उन रचनाओं को सँभाल कर रखें। उन्हें अपनी नोट- बुक में लिख लें।

सत्त्वापत्ति मन की वह दशा होती है जिसमें मन सत्त्वगुण से पूर्ण हो जाता है। इसमें भाव-संशुद्धि और सत्त्वसंशुद्धि हो जाती है। यह ज्ञान की चतुर्थ भूमिका है।

रजोगुण के लक्षण

रजोगुण प्रतिकूल शक्ति है जो आपको संसार में नीचे घसीट लेती है। आसुरी सम्पत् अर्थात् दम्भ, दर्प, क्रोध आदि दुर्गुण आपको नरक में घसीट सकते हैं। सात्त्विक मन मनुष्य को शान्त और प्रवृत्ति रहित बना देता है। राजसिक मन से मनुष्य अशान्त रहता है। यह उसे निश्चल न रहने दे कर काम करने के लिए बाध्य करता है।

राजसिक मन सदा नये भोग और विविधता चाहता है। अभी यह किन्हीं मनुष्यों, पदार्थों और स्थानों को पसन्द करता है और थोड़े काल पीछे वह उनसे ऊब जाता है और नये-नये पुरुषों का संग, खाने को नये-नये शाक, पढ़ने को नयी-नयी पुस्तकें और देखने को नये-नये स्थान चाहता है।

राजसिक मन सदा संगति और बातचीत चाहता है। ये दो दोष हैं जो मन को अपने लक्ष्य से बहुत दूर हटाते हैं। लोगों की संगति से बच कर अकेले रहना चाहिए और मौन व्रत का पालन करना चाहिए। मौन रहने से आपको शान्ति मिलेगी। बहुत-सा दु:ख कुसंगति से मिलता है। अपने साथी बनाने में सावधान रहें। आपको अच्छे और सच्चे मित्र बहुत कम मिलेंगे। किसी मित्र को दीर्घ काल तक परीक्षा किये बिना अपना विश्वासपात्र न बनायें। ब्रह्म में कोई संगति और कोई वार्ता नहीं है। वह असंग और अशब्द है।

राजसिक मन में दूसरों के दोष देखने की प्रवृत्ति होती है। यह उनके किये हुए बुरे कर्मों और अपराधों को भी स्मरण रखता है और उनके अच्छे कर्मों को सहज में भूल जाता है। यह दोनों प्रवृत्तियाँ द्वेष को बढ़ाती हैं और मन में निरन्तर उद्वेग उत्पन्न करती है।

सत्त्वगुण से हीन मन ऐसा साधुवृत्त नहीं होता कि वह दूसरों की प्रसन्नता को अपना आनन्द माने; इसलिए सदा घूमता रहता है और क्योंकि इस मन में दूसरों के सद्गुणों से प्रसन्न होने का सौजन्य नहीं होता इसलिए आन्तरिक सन्तोष नहीं होता और क्योंकि यह दूसरों के दुःखों को अपना दुःख नहीं मानता; इसलिए ऐसे मन में दया, संवेदना और सहानुभूति नहीं होती।

राजसिक मन वस्तुओं में भेद करके भ्रम-कपट द्वारा नानात्व दिखाता है। सूर्य एक है। चन्द्रमा एक है। आकाश एक है। भाषा के पीछे विचार एक है। सत्यता का भाव एक है। कुछ अन्तर्बाह्य नहीं है। पति और पत्नी हृदय में एक है। सच्चे मित्र हृदय में एक होते हैं। जड़ पदार्थ एक है। शक्ति एक है। सात्त्विक मन एक है। यह मिलाता है। विश्व - महत् एक है। कर्म एक है। धर्म एक है। सत्य एक है। ब्रह्म एक है — "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म ।"

अति-तीव्र रजोगुण सात्त्विकता में बदल जाता है। डाकू रत्नाकर महर्षि वाल्मीकि बन गया। जधाई और मधाई जो अत्यधिक राजसिक थे और श्री गौरांग महाप्रभु पर पत्थर फेंका करते थे, वे ही उनके सर्वप्रथम शिष्य बन गये।

सत्त्वगुण का महत्त्व

सच्ची मानसिक शान्ति बाहर से नहीं आती। जब मन का संयम हो जाता है और इसके विचारों का निग्रह किया जाता है, तब यह मन में ही उत्पन्न होती है। अपनी इच्छाओं और कामनाओं को रोकने के लिए आपको भारी प्रयत्न करना चाहिए। तभी आपकी कार्य की प्रवृत्ति दमित होगी, आपके विचार शान्त होंगे तथा आपको शान्ति मिलेगी। इसलिए जप, विचार, ध्यान, सत्संग, लघु सात्त्विक आहार, तप और स्वाध्याय के द्वारा सत्त्वगुण की वृद्धि करें।

साधारण संसारी मन वाला मनुष्य आत्मा की आन्तरिक पुकार को कदाचित ही सुन सके। उसको आत्म-विचार-सम्बन्धी शुद्ध विचार भी प्राप्त नहीं हो सकते। प्रत्येक सात्त्विक विचार सात्त्विक बुद्धि से उत्पन्न होता है संसारी जनों के सारे विचार मन में ही उपजते हैं। जो निष्काम कर्मयोग का अभ्यास करता है और जिसका मन शुद्ध होता है, उसे ही ईश्वर-सम्बन्धी विचार और ध्यान प्राप्त होने लगते हैं। साधारणतः मन अनेक प्रकार के विलक्षण विचार पैदा कर देता है। यह सबको भ्रम में डाल देता है। यह विचार करने का बहाना भी करता है; परन्तु जब क्रियात्मक अभ्यास की बात आती है तो यह कुछ नहीं करता। यदि आपमें धारणा और ध्यान के अभ्यास का दृढ़ निश्चय हो, इसको स्थिरता से कई महीने तक क्रियात्मक अभ्यास में डाल दें और यदि ईश्वर दर्शन की इच्छा तीव्र हो, तभी आप समझिए कि ये सब प्रकार के विचार आपकी सात्त्विक बुद्धि से ही प्रकट हुए हैं।

सारी साधनाओं का ध्येय सत्त्वगुण की वृद्धि और शुद्ध अप्रतिरोध्य इच्छा-शक्ति प्राप्त करना होता है। इसी इच्छा शक्ति से अविद्या की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति होती है। ईश्वर प्राप्ति का मार्ग सत्वगुण की वृद्धि और दृढ़ तथा शुद्ध इच्छा-शक्ति के द्वारा बहुत सुगम हो जाता है।

संसार में भी कुछ थोड़े-से सात्त्विक गुणों वाले पुरुष होते हैं, जिनमें सन्तोष, उदारता, क्षमा आदि सद्गुण होते हैं; परन्तु आध्यात्मिक साधक तो सारे सात्त्विक सद्गुणों को प्राप्त करने के लिए मन को समग्र रूप से उन्नत करने का प्रयत्न करता है।

परिच्छेद-७

मानसिक अवस्थाएँ

अकेले कमरे में मौन बैठ जायें और मन में घटने वाली विविध घटनाओं, मानसिक अवस्थाओं, मनोदशाओं, प्रणोदों, आवेगों, तरंगों तथा कल्पनाओं का निरीक्षण करते रहें। आन्तरिक मनोजगत् की सूक्ष्म स्थितियों का निरीक्षण बड़ा ही चित्ताकर्षक होता है।

सहज प्रवृत्तियाँ

मनुष्यों में और पशुओं में भी दो प्रबल सहज प्रवृत्तियाँ हुआ करती हैं। वे हैं— आत्म-परिरक्षण की सहज प्रवृत्ति और प्रजनन की सहज प्रवृत्ति । क्षुधा आत्म-परिरक्षण की सहज प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति है। कामवासना (मैथुन) प्रजनन की सहज प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति है। सहज प्रवृत्ति कर्म के लिए अनैच्छिक प्रेरणा को कहते हैं।

अहंकार-युक्त जीव अधिकार, नाम और यश चाहता है। यह चाह आत्म-विवर्धन के लिए होती है। स्वार्थ साधन (शोषण) लोभ है। यह स्वार्थपूर्ण उद्देश्य के लिए उपयोग करना है। निरंकुशता अहंकारपूर्वक शासन करना कहलाता है। जीव दूसरों पर अधिकार प्रयोग करना चाहता है। यह जीव-भावना कहलाती है। उद्योग-धन्धा, व्यवसाय, वाणिज्य आदि का मूल कारण लोभ और आत्म-संरक्षण होता है। यदि आप निरन्तर ब्रह्म-भावना रखना चाहते हैं तो आपको शोषण और निरंकुशता छोड़ देनी चाहिए।

एक तृतीय सहज प्रवृत्ति भी होती है— यूथ - वृत्ति । स्त्रियाँ पुरुषों के संग रह कर प्रसन्न रहती हैं। पुरुष स्त्रियों के संग रह कर हर्षित होते हैं। इसका मूल कारण प्रजनन की प्रवृत्ति है। एक और भी कारण है। बलवान् पुरुष के संग रह कर दुर्बल मनुष्य भी बल प्राप्त कर लेता है। किन्तु जो मनुष्य ईश्वर को प्राप्त करना चाहता है, उसे संगति से, विशेषकर स्त्रियों और संसारी मनुष्यों के संग से बचना चाहिए। उसे अकेला रहना चाहिए। इससे वह बहुत बलवान् और दृढ़ हो जायेगा। उसका व्यक्तित्व बहुत शक्तिशाली हो जायेगा। प्रारम्भ में तो अकेले रहने में कठिनाई प्रतीत होती है, भय मालूम होता है। यदि आप अमृतत्व प्राप्त करना चाहते हैं तो आपको एक-एक करके सारी कठिनाइयों पर विजय पानी होगी। इसका पुरस्कार बहुत बड़ा है। 'ब्रह्मवित् परमाप्नोति' अर्थात् ब्रह्म को जानने वाला परम पद प्राप्त करता है। 'अमृतमश्नुते' – वह अमृतत्व — अमरता रूपी अमृत पीता है।

प्रणोद

प्रणोद आकस्मिक प्रेरक शक्ति होते हैं। प्रणोद तीन प्रकार के होते हैं अर्थात् विचार-प्रणोद, वाणी-प्रणोद और कर्म-प्रणोद। मौन से वाणी-प्रणोद रुकता है और ध्यान से मिथ्या विचार और असत्कर्म के प्रणोद रुकते हैं।

दो महत्त्वपूर्ण प्रणोद होते हैं। वे हैं काम-प्रणोद और वाणी प्रणोद। प्रणोद और कल्पना में घनिष्ठ सम्बन्ध है। कल्पना प्रणोद उत्पन्न करती है। प्रणोद को विवेक, इच्छा-शक्ति तथा परमात्मा के ध्यान द्वारा रोकना चाहिए।

आवेग

विचार और इच्छा के मिश्रण से आवेग बनता है। प्रत्येक विचार आवेग से प्रभारित होता है। आवेग वे इच्छाएँ हैं जिनमें विचार का अंश प्रविष्ट रहता है। दूसरे शब्दों में विचार और इच्छा मिल कर आवेग कहलाते हैं। आवेगों के स्पन्दन से शुद्ध मानसिक पदार्थ में उद्वेग होता है और मनुष्य के सभी विचार विक्षुब्ध तथा विकृत हो जाते हैं।

एक आवेग इच्छा होती है और एक आवेग भावना होती है। यदि इच्छा-तत्त्व अधिक हो तो आवेग-इच्छा कहलाती है और यदि सुख-तत्त्व अधिक हो तो आवेग भावना कहलाती है।

राग और द्वेष मन के दो प्रधान आवेग हैं। अन्य सभी आवेग इन दोनों के अन्तर्गत विभक्त किये जा सकते हैं। आश्चर्य एक मिश्रित आवेग है जिसमें श्लाघा और भय दोनों मिले होते हैं। श्रद्धा भी मिश्रित आवेग है। इसमें विस्मय और सम्मान मिले होते हैं। अमर्ष भी मिश्रित आवेग है जिसमें क्रोध और घृणा मिले होते हैं। प्रबल शत्रु के नीचे स्तर पर खिंच जाते ही घृणा रखने वाले असमर्थ मनुष्य का क्रोध नष्ट हो जाता है।

आनन्द मन में एक प्रकार का आवेग है। आनन्द में मन फैलता है। मन में शीतलता रहती है। आनन्द के समय मन में क्या होता है, इसे पाश्चात्य मनोविज्ञानवेत्ता ठीक-ठीक नहीं समझ पाये हैं। साधारण मनुष्य भी इसको नहीं समझ सकते। इस मन में घटने वाली घटना को योगी या ज्ञानी ही जानता है। दुःख में मन सिकुड़ जाता है और मन में अत्यन्त उष्णता पैदा हो जाती है।

मनुष्य में बहुत सी भौतिक इच्छाएँ और आवेग पशु-जगत् की इच्छाओं के सदृश होते हैं। क्रोध और मैथुन की प्रवृत्ति पाशविक वृत्तियाँ हैं। असंस्कृत मनुष्यों में ये इच्छाएँ और आवेग जो अपरा प्रकृति में निहित होते हैं, परा प्रकृति को दबा कर प्रबल हो जाते हैं।

मन में आवेगों का आना दुर्बलता का परिचायक है। बुद्धि और इच्छा-शक्ति के द्वारा इनका संयम करना चाहिए।

आवेगों और प्रणोदों के नियन्त्रण की विधि

जब कभी आवेग और प्रणोद आपको अधिक कष्ट दें, तो उनसे उदासीन हो जाया करें तथा अपने आपसे कहें- "मैं कौन हूँ? मैं मन नहीं हूँ, मैं सर्वव्यापी आत्मा हूँ, शुद्ध सच्चिदानन्द हूँ। मुझ पर आवेगों का क्या प्रभाव हो सकता है? मैं तो निर्लिप्त हूँ। मैं इन आवेगों का साक्षी हूँ। मुझे कोई भी वस्तु आन्दोलित नहीं कर सकती।" विचारों के इन संकेतों को दोहराने से आवेग अपने आप ही नष्ट हो जायेंगे। आवेगों को भगाने का यह ज्ञान-मार्ग योग-मार्ग के बताये हुए मन से जबरदस्ती करने (**योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः**) से सुगमतर है।

भावनाएँ

धार्मिक भावना, नैतिक भावना और सौन्दर्य भावना—ये तीनों मन की मुख्य भावनाएँ हैं। ये संवेदनाएँ तथा भावनाएँ भ्रामक हैं। ये आत्मा में नहीं होती हैं। ये मन के उत्पन्न किये हुए भ्रम मात्र हैं।

भाव

भाव एक मानसिक अवस्था है। अंगरेजी के 'मूड' (Mood) शब्द का सच्चा अर्थ 'भाव' से भी पूरी तरह प्रकट नहीं होता। हम कहा करते हैं "मि. नायुडु या मि. एकिन्सन भावयुक्त सज्जन है।" इसका अर्थ है कि वह शीघ्र ही भाव का दास बन जाता है। हम यह भी कहा करते हैं: "अमुक सज्जन अच्छे या प्रसन्न भाव में है। अब मैं थोड़ी-सी बातचीत करने के लिए उसके निकट जा सकता हूँ अथवा वह बड़ी क्रुद्ध दशा में है। इस समय मुझे उससे नहीं मिलना चाहिए।"

अँगरेज अपने वार्तालाप में 'मूड' (Mood) शब्द को विस्तृत अर्थों में भी प्रयोग करते हैं। वे कहते हैं- "वह बातचीत करने के भाव में है।" "वह मौन भाव में है।" "वह घृणा के भाव में है।" "वह प्रेम के भाव में है।" "वह स्वार्थ के भाव में है।" "वह ईर्ष्या के भाव में है।" "वह पार्थक्य के भाव में है।" "वह एकत्व के भाव में है।" वेदान्त की परिभाषा में ये सब वृत्तियाँ ही हैं। 'भावना-विज्ञान' (Sciencs of Emotions) प्रसिद्ध लेखक डाक्टर भगवानदास इनको भावनाओं में ही मानते हैं।

दो प्रकार के भाव तथा उनके प्रभाव

वेदान्त में केवल दो ही प्रकार के भाव हुआ करते हैं-हर्ष और शोक मन में हर्ष और शोक से दो प्रकार के भाव उठा करते हैं। अभी हर्ष है। पाँच मिनट पीछे उदासी होती है। ये प्रवाह बारी-बारी से आते रहते हैं। ये षर्मियों में से हैं। ये दो लहरें हैं जो मनु सागर को क्षुब्ध करती हैं।

उदास (निरानन्द) भावयुक्त पुरुष दूसरे मनुष्यों से तथा स्थूल जगत् के आकाश भण्डार से अपनी ओर उदास पदार्थ और निरानन्द विचार आकृष्ट किया करते हैं। आशा, विश्वास और प्रसन्नवृत्तियुक्त पुरुष दूसरों से भी इसी प्रकार के विचार अपनी ओर खींचते हैं। वे सदा अपने प्रयत्न में सफल हुआ करते हैं।

उदासी, क्रोध, घृणा आदि ऋणात्मक भावों वाले मनुष्य दूसरों को निश्चित ही हानि पहुँचाते हैं। वे दूसरों पर प्रभाव डालते हैं और उनमें भी ये विनाशकारी वृत्तियाँ जगा देते हैं। वे अपराधी हैं। विचार-जगत् की वे बहुत हानि करते हैं। प्रसन्नचित्त मनुष्य समाज के लिए प्रसाद रूप हैं। वे दूसरों में भी प्रसन्नता लाते हैं।

जैसे कोई सुन्दरी युवती जिसके गाल या नाक पर पका हुआ गन्दा फोड़ा हो तो वह अपना मुँह ढक लेती है और समाज में दूसरों से मिलने के लिए बाहर निकलना पसन्द नहीं करती; इसी प्रकार जब आपके मन में उदासी, घृणा या ईर्ष्या के भाव हों तो आपको बाहर निकलना और अपने मित्रों तथा अन्य लोगों से मिलना नहीं चाहिए, क्योंकि आप दूसरों में भी यही भाव भर देंगे। आप समाज के लिए भय की वस्तु हैं।

ऋणात्मक भावों के नियन्त्रण की विधि

साधकों को चाहिए कि उदासी को प्रार्थना, ध्यान, आनन्द के विचार, प्रणवोच्चार, सद्विचार और दिव्य भजनों के गायन द्वारा दूर करें। निराशाजनक उदासी के भाव को कभी स्थान नहीं देना चाहिए। भाव सहित ॐ का उच्चारण करें और कहें "मैं आनन्दमय है। मेरा स्वरूप आनन्द है।" उदासी दूर हो जायेगी। इस उदासी के अनेक कारण होते हैं।

बादलों का दिन, दुर्जनों की संगति, अपच, सूक्ष्मात्माओं का प्रभाव, उदासी के पुराने संस्कारों का पुनरुद्भव ये सब उदासी लाते हैं।

जब आपको बोलने की इच्छा हो, एकदम मौन का अभ्यास करें। यह बोलने की इच्छा की प्रतिरोधक औषधि है। जब आपके मन में घृणा का भाव हो तो इसके विरोधी प्रेम के सद्गुण की वृद्धि करें। घृणा का भाव शीघ्र दूर हो जायेगा। जब आपके मन में स्वार्थपूर्ण भाव हो तो एकदम निःस्वार्थ कार्य प्रारम्भ कर दें। जब आपके मन में पार्थक्य का भाव आये तो सेवा, प्रेम, कृपा और क्षमा के द्वारा दूसरों के साथ मिलने की चेष्टा करें। जब आप आलस्य के भाव में हों तो तुरन्त कोई-न-कोई फुरतीला काम - यथा बगीचा लगाना, पानी खींचना, दौड़ना, तेज चलना या साइकिल चलाना आदि करने लगे।

जीवन्मुक्त पुरुष सारे भावों से सर्वथा रहित होता है। उसने समस्त भावों का पूर्ण संयम कर लिया होता है। वह इन सबका स्वामी बन गया होता है। आत्मा में कोई भी भाव नहीं हुआ करता। यह (आत्मा) शुद्ध चेतना है। उससे सारूप्य प्राप्त करें। आप सारे भावों को सुगमता से नष्ट कर सकते हैं।

ध्यानशील भाव

जो ध्यान का अभ्यास करते हैं, उनमें एक अच्छा भाव हुआ करता है जिसे 'ध्यानशील भाव' कहते हैं। जो धारणा और ध्यान का अभ्यास करते हैं, उनको इस प्रकार के भाव का अनुभव होता है। जब यह भाव प्रकट हो, आपको अवश्यमेव तुरन्त ही पढ़ना, लिखना, बातचीत करना आदि सब कुछ छोड़ कर तत्काल नित्य के आसन में बैठ कर ध्यान करना आरम्भ कर देना चाहिए। ध्यान बिना किसी प्रयास के स्वयमेव लगने लगेगा। यह भाव ध्यान के अभ्यास (निदिध्यासन) के लिए बहुत अनुकूल होता है। इस प्रकार के भाव की उत्सुकता से प्रतीक्षा करें। यदि प्रकाश से बापा होती हो तो खिड़कियाँ बन्द कर दें या उनमें परदे लगा दें। ध्यान के नवीन अभ्यासियों के लिए अँधेरा कमरा अनुकूल होता है।

तरंगें तथा कल्पनाएँ

'Whim' को संस्कृत में तरंग कहते हैं। तरंग का अर्थ मौज है। मन में अचानक एक परिवर्तन आता है जिसे तरंग कहते हैं। तरंग मन में उठने वाली मौजें हैं। वे जल्दी-जल्दी उठती और टूटती हैं। वे आपको इधर-उधर घसीटती हैं। वे आपको अशान्त करती हैं।

प्रत्येक मनुष्य को कुछ-न-कुछ सनक होती है जब कोई व्यक्ति सनक के सामने झुक जाता है तो हम प्राय: कहते हैं, “अमुक व्यक्ति सनकी है।" तरंग को लहर भी कहते हैं। खब्त सनक का अतिशयोक्तिपूर्ण रूप है। यदि व्यक्ति सनक से दब जाता है तो यह उसे उधर से उस नचाती है। सनक के द्वारा किये हुए कर्म से क्लेश मिलता है। मन आपको सनक के द्वारा धोखे में डालता है। इसे बुद्धि के द्वारा रोकना चाहिए।

सनक के वश में हो कर कार्य न करें। कर्म विवेक और बुद्धि-सहित करना चाहिए। जैसे ही सनक उत्पन्न हो, वैसे ही विचार द्वारा उसको नष्ट कर दें। सदा प्रश्न करें कि प्रस्तावित कार्य से आपको आनन्द और आत्म-कल्याण मिलेगा या नहीं ? सतर्क रहें। 'Whim' (तरंग) शब्द सदा 'Fancy' (कल्पना) शब्द के साथ प्रयोग होता है। हम कहा करते हैं : *Whims and Fancies' । कल्पना से हलकी या कम प्रभाव वाली बौद्धिक प्रक्रिया का एक रूप ‘Fancy (ललित कल्पना) है। इस मानसिक शक्ति के कारण नवीन तथा आनन्दप्रद विचार Fancy कहलाता है।

Fancy कल्पना का एक रूप है। भावुकता कवि की सहायक भले ही हो; परन्तु साधक को इससे लाभ नहीं हो सकता। ध्यान करने में यह एक बाधा है। इससे हवाई किले बनते हैं। इसे विचार और विवेक से रोकना चाहिए।

जैसे सागर के ऊपर छोटी और बड़ी लहरें उठती हैं, इसी प्रकार मन रूपी समुद्र में क्षुद्र वासनाएँ और मिथ्या संकल्प उठा करते हैं। अनेक प्रकार की सनक छोटी-छोटी लहरें हैं। आपको इनसे भय नहीं करना चाहिए। ये आती हैं और शीघ्र ही चली जाती हैं। आपको बलवती लहरों अर्थात् असत् संकल्पों से सतर्क रहना चाहिए। बलवान् विचारों को सद्विचार के दृढ़ अभ्यास और तर्क द्वारा निकाल देना चाहिए।

कल्पना

प्रकृति मन में कभी शून्यता नहीं होने देती। यदि एक चिन्ता समाप्त हो जाती है तो दूसरी तुरन्त प्रकट हो जाती है। मन कभी भी रिक्त नहीं रह सकता है। इसमें अनन्त पूर्वधारणाएँ होती है।

मन के कार्यों को ध्यानपूर्वक देखें। यह लुभाता है, अतिरंजित करता है, बात को बढ़ाता है, मोहित करता है और मिथ्या कल्पनाओं, मिथ्या भव मिथ्या चिन्ताओं और मिथ्या पूर्वाभासों के द्वारा अनावश्यक भयभीत करता है। आपको लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित करने से हटाने के लिए यह पूरा प्रयास करता है।।

मन की सूक्ष्म क्रियाओं को पूर्णतः समझने के लिए मैंने कई वर्ष लगा दिये। अनुमान-शक्ति के द्वारा मन विनाश करता है। अनेक प्रकार के अनुमानगत भय, बात को बढ़ा कर बताना, निर्मूल बात को गढ़ना, मानसिक कल्पना से नाटक की-सी घटनाएँ घटाना, मनोराज्य बनाना—यह सब कार्य अनुमान - शक्ति करती है। मन की कल्पना शक्ति के कारण पूर्णतः स्वस्थ मनुष्य को भी कोई-न-कोई कल्पित रोग होता ही है। कल्पित भय के कारण बहुत-सी शक्ति क्षीण हो जाती है।

जब मन युद्ध-कार्य में पूर्ण रूप से संलग्न होता है तो योद्धा को गोली लगने के भारी आघात का अनुमान नहीं होता। उसे अधिक परिमाण में रक्त बह जाने का भी ज्ञान नहीं होता। उसमें आवेश होता है। उतने समय के लिए वह अपने शरीर से भी बेसुध होता है। जब वह आवेश बीत जाता है, जब वह अपने वस्त्रों पर खून के धब्बे देखता है या जब उसका कोई मित्र उसकी टाँग के घाव को उसे दिखाता है, तब उसे इसका ज्ञान होता है। तब उसे थोड़ा-सा भय प्रतीत होता है। तब अनुमान शक्ति विनाश करती है और वह अचेत हो कर गिर पड़ता है। अनुमान-शक्ति हमेशा बात को बढ़ा दिया करती है।

किसी मनुष्य में कोई तनिक-सी दुर्बलता (त्रुटि) हो तो जब वह आपका शत्रु बनता है, आप तुरन्त ही उसकी त्रुटियों और दोषों को वामन अवतार की भाँति बढ़ा देते हैं और आप बहुत से दोषों का उसमें आरोप कर देते हैं अथवा बहुत से दूसरे दोष और दुर्बलताएँ गढ़ते हैं। यह आपकी दूषित कल्पना के कारण होता है।

जब कभी दो मित्रों में दुर्भावना के कारण मन-मुटाव हो जाता है तो उन दोनों के मन नयी-नयी बातें गढ़ने लगते हैं और बात को बढ़ा देते हैं। एक-दूसरे के दोष ढूँढ़ने का स्वभाव बढ़ जाता है। इन भंग मैत्री वाले दोनों मित्रों के वक्तव्यों से सत्य बात तक पहुँचना कठिन हो जाता है। उनकी बातें उनकी अपनी आन्तरिक भावनाओं के रंग में पगी हुई होती हैं। यहाँ भी अनुमान-शक्ति विनाश करती है। माया मन और इसकी अनुमान - शक्ति के द्वारा विनाश करती है।

मन प्रलोभन दिखाता है और उगता है। किसी को अपना पक्का मित्र सोचें और वही विचार सत्य में परिणत हो जाता है। उसी को अपना शत्रु मान लें तो मन उसी भाव को सत्य में परिणत कर देता है। जिसने मन के कार्य को समझ लिया, वही सचमुच सुखी है।

अब हम आपको मन का नाटक समझाते हैं। मन की रीति देखिए। अपने मित्रों से वार्तालाप करते हुए कभी आपका मन व्यर्थ कल्पना करता है कि आपके मित्र के भावों को ठेस पहुँची है। तब यह अनावश्यक भावना में बहुत शक्ति का अपव्यय कर देता है। आप सोचते हैं, "कल सबेरे मैं उससे किस प्रकार मिल सकता | शायद वह मुझसे नाराज हो।" अगले दिन प्रातःकाल जब आप उससे मिलते हैं तो कुछ भी नहीं होता। आपका मित्र आनन्दप्रद वार्तालाप प्रारम्भ कर देता है और आपसे सस्मित मिलता है। आपको आश्चर्य होता है जब वार्तालाप का रंग कुछ और ही बदल जाता है। जब महामारी (प्लेग) का प्रकोप होता है तो गृहस्थी मनुष्य विचार करता है, “यदि अब मेरी पत्नी को प्लेग हो गया और वह मर गयी तो मैं क्या करूँगा, मेरे छह बच्चे हैं।” यह उसकी वृथा कल्पना होती है। कुछ भी नहीं होता। कभी-कभी जब श्रीरामेश्वरम् के निकट समुद्र के ऊपर के पम्बन पुल पर रेलगाड़ी मन्द गति से चलती है तो मन सोचता है, “यदि अब पुल टूट जाये तो मेरी क्या दशा होगी। मेरे तो टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे।" उसी समय भय का संचार हो जाता है। इनके ही समान हजारों रीतियों से मन नाटक के दृश्य गढ़ा करता है। इसमें कल्पना-शक्ति का मुख्य भाग होता है।

जब आपका मन गम्भीरता से एकाग्र होता है तो दो घण्टे का समय पाँच मिनट के समान प्रतीत होता है। यदि मन चंचल और अस्थिर हो तो आधा घण्टा भी दो घण्टे के समान हो जाता है। यह प्रत्येक मनुष्य के अनुभव की बात है। स्वप्न में भी बहुत-सी घटनाएँ जो पचास वर्षों में पूरी होने वाली हैं, दश मिनट में हो जाती हैं। मन की लीला के द्वारा एक कल्प क्षणमात्र प्रतीत होता है और क्षणमात्र समय कल्पसम बीतता है। समय भी मन का रूप है। यह काल शक्ति है। यह भी अन्य पदार्थों की भाँति भ्रममूलक है।

मन की छलना से कभी-कभी एक फरलांग भी बहुत दूर प्रतीत होता है और कभी-कभी तीन मील बहुत निकट लगते हैं। आपने नित्य के व्यवहार में यह तो देखा होगा।

मैं और रूमानियाँ के ब्रह्मचारी मरीचि चैतन्य, एम. ए., पीएच. डी. स्वर्गाश्रम की कैलास कुटिया में भोजन करने बैठे आलू की झोल एक प्लेट आयी। मरीचि को - भारतीय भोजन-सामग्री का ज्ञान नहीं था। उसने उसे मांस का शोरबा समझा। उसका रूप-रंग ठीक वैसा ही था। यह मानसिक प्रक्षेपण का एक दृष्टान्त है। मरीचि ने अपने मन में स्थित संस्कारों से आलू के शोल में मांस के शोरबे का प्रक्षेपण किया। मानसिक प्रक्षेपण सब झूठे होते हैं।

कल्पना का अर्थ है उद्भावना। मन की कल्पना सच्ची योगमाया है। आपको इन विविध कल्पनाओं को नष्ट करना होगा। सारी आध्यात्मिक साधनाओं का यही ध्येय है। तब आप निर्विकल्प आनन्द अवस्था में स्थित हो जायेंगे। निष्काम कर्मयोग के द्वारा चित्त शुद्धि हो जाने पर इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए शुद्ध निवृत्ति की आवश्यकता होती है।

स्वभाव तथा उसको रूपान्तरित करने की विधि

अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ यथा अवटुग्रन्थि, बाल्य-ग्रन्थि, कर्ण-मूल-ग्रन्थि, शंकुरूप-ग्रन्थि, अधिवृक्क-ग्रन्थि वाहिनीहीन होती हैं। इनमें स्राव बनता रहता है। यह स्राव-पदार्थ सीधा ही रक्त में मिल जाता है। इस द्रव पदार्थ का प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव बनाने में मुख्य भाग होता है। मनुष्य का स्वभाव उसकी समीपवर्ती परिस्थिति, उसकी शिक्षा और उसके अनुभव से विशेषकर रूपान्तरित हो सकता है; परन्तु इसका बिलकुल रूपान्तरण असम्भव है। इसी कारण गीता (३-३३) में बताया गया है: **"सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि "** – ज्ञानवान् पुरुष भी अपनी प्रकृति के अनुसार चेष्टा करता है।

परिच्छेद-८

मानसिक शक्ति

मानव मन की शक्ति

यदि आप मन की मन के ऊपर, पदार्थ के ऊपर तथा मानव शरीर के ऊपर क्रियाओं को ध्यानपूर्वक देखें तो आपको ज्ञात होगा कि प्रत्येक मनुष्य स्वयं एक शक्ति है। अपनी वासनाओं पर प्रभुत्व और आत्म-निरोध के द्वारा आपको अन्तर्निहित शक्ति का विकास करना होगा। जब मन इतना शक्तिशाली है तो उस आत्मा की महिमा का क्या कहना है जो सब वस्तुओं का भण्डार हैं, जो शक्ति, ज्ञान तथा आनन्द का केन्द्रीभूत असीम तथा कभी न चुकने वाला भण्डार है जिससे यह तुच्छ मन अपना प्रकाश और बल प्राप्त करता है।

मन की शक्ति का दृष्टान्त

जब कभी कोई अग्निकाण्ड अथवा अन्य घटना हो जाती है, आप कितने सचेत और फुरतीले हो जाते हैं! क्या आप अद्भुत शक्तियों का प्रदर्शन नहीं करते? आप ऊँची दीवार को लाँघ जाते हैं, बहुत से बच्चों को बचा लेते हैं तथा अग्नि में से दौड़ कर बहुत-सी वस्तुएँ ले आते हैं। सारी मानसिक शक्तियाँ अर्थात् स्मृति, कल्पना, इच्छा इत्यादि अपना कार्य करती हैं। शौर्य, निर्भीकता, दया तथा अनेक अन्य सद्गुण आप प्रदर्शित करते हैं। आपने ये सब क्षमताएँ तथा शक्तियाँ कहाँ से प्राप्त कीं ? इससे आप यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि वास्तव में आप सर्वशक्तिसम्पन्न हैं। आपके अन्दर एक महान् विशाल शक्ति-भण्डार है। ध्यानाभ्यास द्वारा इसी स्रोत तक पहुँच जायें और शक्ति प्राप्त करें। आपको प्रत्येक वस्तु मिलेगी। अन्तरात्मा पर विश्वास करें।

यदि ग्रीष्म काल के उष्ण मध्याहन काल में बारह बजे आपको एक तार मिले कि बीस मील दूर आपके गाँव में आपके पिता अत्यन्त चिन्ताजनक रूप से बीमार पड़े हैं तो आप तुरन्त अपना भोजन भी छोड़ कर दौड़ते हुए जाने लगते हैं। यद्यपि आपका अपना स्वास्थ्य भी उस समय अच्छा नहीं होता तो भी केवल अपने प्रिय पिता को देखने की इच्छा मात्र से आप किसी बात की चिन्ता नहीं करते। आप सारे मार्ग-भर दौड़ते चले जाते हैं और कुछ ही घण्टों में उस स्थान पर पहुँच जाते हैं। तब आप आश्चर्य करते हैं— ''यह क्या? मैं स्वयं भी अच्छा नहीं था। मैं बीस मील दो घण्टे में चले आया। यह कैसा आश्चर्य है।" इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि वास्तव में आप सर्वशक्तिसम्पन्न हैं। आपके मन में अनेक प्रकार की शक्तियाँ तथा क्षमताएँ हैं। वे अक्रिय रहती हैं। आपको उन्हें जाग्रत करना होगा।

मन की छह महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ

मन में तीन शक्तियाँ होती हैं—इच्छा-शक्ति, क्रिया-शक्ति और ज्ञान-शक्ति। मन में एक वासना उठती है; यह इच्छा-शक्ति है। मन इस वासना को तृप्त करने का प्रयत्न करता है; यह क्रिया-शक्ति है। यह उसकी पूर्ति के लिए उपाय सोचता है; यह ज्ञान-शक्ति है।

वेदना-शक्ति (इन्द्रिय-ज्ञान), स्मरण शक्ति अथवा स्मृति शक्ति, भावना-शक्ति, - मनीषा शक्ति, इच्छा या संकल्प शक्ति और धारणा शक्ति—ये मन की छह मुख्य - शक्तियाँ हैं।

वेदना-शक्ति

वेदना शक्ति संज्ञान शक्ति अथवा संवेदन-शक्ति अथवा बोध शक्ति अथवा इन्द्रिय-ज्ञान है।

स्मृति-शक्ति

स्मृति शक्ति के तीन काम हैं। यह ग्रहण करती है, धारण करती है और - आवश्यकता पड़ने पर याद दिलाती है। यद्यपि ग्रहण करने का काम वेदना-शक्ति द्वारा होता है तो भी स्मृति-शक्ति इसमें भाग लेती है।

कल्पना करें कि आप मन्दिर में घण्टे का शब्द सुनते हैं स्मृति शक्ति इसे ग्रहण कर लेती है। फिर धारणा द्वारा वह इसे धारण करती है। फिर जब कभी आप मन्दिर के घण्टे का शब्द सुनते हैं तो आपको याद आता है, 'यह मन्दिर के घण्टे का शब्द है, यह छात्रावास का घण्टा नहीं है।'

ध्यान में मन अपने इन्द्रिय-ज्ञान और निश्चय को ग्रहण करता है और उन्हें पकड़ लेता है, विचार के विषय को अपना लेता है, संस्कारों को दृढ़ करता है और इसकी इच्छागत स्मृति को सुगम कर देता है।

भावना-शक्ति

आपने कभी हाथी को साइकिल चलाते नहीं देखा है। जिस मनुष्य ने वास्तव में देखा है, जब यह आपको इसका वर्णन सुनाता है तो आपका मन तत्काल इसका मानसिक चित्र बना लेता है। यह मन की भावना-शक्ति द्वारा होता है।

मनीषा-शक्ति

तुलना और भेद देखने की शक्ति, अनुमान, परामर्श, निष्कर्ष आदि ये सब मन की मनीषा-शक्ति के अन्तर्गत है। मनीषा शक्ति के दो उपांग और हैं—निर्णय (निश्चय करना) और तर्क।

राम मरणशील है, श्याम मरणशील है, मुरारी मरणशील है; इसलिए सारे मनुष्य मरणशील हैं। सारे मनुष्य मरणशील हैं, महाशय चौधरी मनुष्य हैं; इसलिए महाशय चौधरी मरणशील हैं। साध्य-पद, पक्ष-पद तथा मध्य-पद के साथ निगमनिक तथा आगमिक तर्क द्वारा इस प्रकार के निष्कर्ष निकालना या गौतम ऋषि के न्यायशास्त्र के न्यायबद्ध तर्क की पाँच प्रकार की युक्तियों द्वारा निर्णय और तर्क की सहायता से निश्चय करना मनीषा शक्ति का काम है।

तर्क के दो अंग और हैं— अनुमान और परामर्श। जब प्रातः काल आप नदी में चढ़ाव देखते हैं तो आप अनुमान करते हैं कि गत रात्रि में वर्षा हुई होगी। जब आप पहाड़ियों पर धुआं देखते हैं तो अनुमान करते हैं कि वहाँ अग्नि होनी चाहिए। यह अनुमान शक्ति के कारण है।

इच्छा-शक्ति

इच्छा आत्म-शक्ति है। यह ब्रह्म का प्रगतिशील रूप है। यह ब्रह्म का चल रूप है। वेदान्त में इच्छा शक्ति एक विशेष भूमिका अदा करती है।

पाश्चात्य दार्शनिकों ने कल्पना-शक्ति के लिए बहुत कुछ कहा है कि मनुष्य के मन में यह सबसे उग्र शक्ति है और जब कल्पना और इच्छा-शक्ति में टक्कर होती है तो निर्विकल्प रूप से कल्पना शक्ति का ही बोलबाला होता है।

कुछ लोग कहते हैं कि कल्पना से अधिक बलवती इच्छा-शक्ति होती है। पूर्व में वेदान्तियों ने इच्छा-शक्ति को कल्पना से भी बड़ी शक्ति माना है। कामनाओं, लक्ष्यों तथा वासनाओं को सक्रिय शक्ति द्वारा निष्पन्न करने के लिए इच्छा-शक्ति का गतिबल प्राप्तः किये बिना अकेली कल्पना क्या करेगी ?

मन के भिन्न-भिन्न तत्त्वों में सह-सम्बन्ध, समन्वय तथा सहयोग पाया जाता है। इसलिए जब प्रत्येक दूसरे पर अपनी शक्ति के लिए निर्भर करता है तो कौन कह सकता है कि अमुक बड़ा है तथा अमुक छोटा, अमुक प्रधान है तथा अमुक गौण ? यह यथार्थतः नहीं कहा जा सकता कि इनमें कौन बड़ी है; क्योंकि इनकी स्वतन्त्रता तथा शक्ति एक-दूसरे से प्राप्त की जाती है।

धारणा-शक्ति

धारणा-शक्ति वास्तव में स्मृति-शक्ति का ही अंग है। साधारण बातचीत में हम कहते हैं, "श्री रामकृष्ण की वेदान्त में अच्छी धारणा है।" इसका अर्थ यह है कि श्री रामकृष्ण के वेदान्तविषयक विचार स्थिर और दृढ़ हैं। उन्हें कोई भी बदल नहीं सकता। उनकी वृत्ति डाँवाडोल नहीं है वह केवल वेदान्त में ही लगी रहती है उसे कोई भी नहीं हिला सकता।

आत्म-बोध

जब मन चेतन कर्ता के रूप में अपने को ही देखता है तो उसे आत्मबोध कहते हैं। यह आत्म-बोध तत्त्व चेतना के डाक बाबू की भाँति है जो सन्देश प्राप्त करता है, छाँटता है, एक-दूसरे से मिलाता है, यथास्थान रखता है, संसर्ग करता है और बाहर भेजता है।

मन की अन्तर्निहित शक्ति का उद्घाटन

मनुष्य के अन्दर बहुत-सी उच्च तथा गुप्त मानसिक शक्तियाँ हैं। मन शक्तियों का भण्डार है। उपयुक्त साधना के द्वारा इन अन्तर्निहित मानसिक शक्तियों का उद्घाटन सम्भव है। साधना क्रमबद्ध, निरन्तर और तीव्र होनी चाहिए। साधक को अपनी परिपक्वता की योग्य अवस्था तक भी पहुँच जाना आवश्यक है। सच्ची श्रद्धा भी होनी चाहिए। तभी प्रत्याशित सफलता की सम्भावना होती है।

परिच्छेद-९

दोष-त्रय

कुछ लोगों को दूध पसन्द है, कुछ को नहीं। दूध में कुछ खराबी नहीं होती। मन में कुछ-न-कुछ खराबी अवश्य होती है। एक ही स्त्री को जब उसका बच्चा देखता है तो वह उसे अपना पोषण करने वाली और सुखों को देने वाली माता समझता है, उसका पति उसे उपभोग की सामग्री मानता है और बाघ उसे अपना शिकार समझता है। स्त्री पदार्थ एक ही होता है; किन्तु इन तीनों स्थितियों में मन के दोष के कारण दृष्टिकोण का भेद हो जाता है।

मन के तीन दोष हैं—मल, विक्षेप और आवरण ।

जैसे तेज झंझावात में हलका पंख इधर-उधर उड़ा उड़ा फिरता है, इसी प्रकार राग और द्वेष के विषयों में मन इधर-उधर डोलता है। व्यर्थ में ही ग्राम-कुक्कुर की भाँति विषयों में घूमता हुआ मन ज्ञानियों की संगति से बहुत दूर चला जाता है; परन्तु परिणाम कुछ नहीं निकलता। यह कुत्सित मन अति अभीप्सित अतुल धन के दर्शन मात्र से नाच उठता है। यह मन रूपी क्रूर शिकारी कुत्ता वासना रूपी कुतिया के पीछे-पीछे फिरता हुआ अभागे अज्ञानी संसारी मनुष्यों को लाश के समान अपना शिकार बनाता रहता है। एक क्षण में वह हावड़ा से पेरिस और कोलम्बो से बर्लिन को उड़ जाता है। यह किसी एक पदार्थ पर स्थिर नहीं रहता और चंचल बना रहता है। यह अस्थिर तथा सम्भ्रमित रहता है, एक विषय से भाग जाता है और फिर उसी पर वापस आता है। निरर्थक आनन्दित होता है। और अहंकार से मदहोश हो जाता है। यह भय का शिकार बन जाता है।

मन को मोक्ष के योग्य बनाना चाहिए अर्थात् वह इस योग्य हो जाये कि अपने अधिष्ठान, अपने पिता ब्रह्म के पास पहुँच सके। तीनों दोषों को दूर कर देना आवश्यक है।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्यादि मल निष्काम कर्म करने से दूर हो सकते हैं।

उपासना, त्राटक, प्राणायाम और राजयोग से मन का विशेष सकता है। दूर किया जा सकता है ।

ज्ञान से, वेदान्तशास्त्र के अध्ययन से, निदिध्यासन से और 'तत्त्वमसि' महावाक्य के तात्पर्य को ठीक-ठीक समझ कर अभेद चिन्तन से आवरण को दूर किया जा सकता है।

दुच्छ सांसारिक पदार्थों के पीछे भरमाये बिना और अपने मन को इलाये बिना आप शिला के समान दृढ़ और अचल बन जायें। जिनमें पाशविक कामनाएँ नहीं होतीं, वे पुनम को बहुत दूर भगा देते हैं।

मन के स्वभाव को देखें। सावधानीपूर्वक इसका विश्लेषण करें। मन के तीनों दोष • विक्षेप और आवरण को दूर हटायें। मन को पवित्र बना कर स्थिर करें। इसे ईश्वर मल, 'अथवा ब्रह्म पर लगा दें। निरन्तर तीव्र विचार के अभ्यास से मन को ईश्वर में विलीन कर दें। मनोनाश के साधन का अभ्यास करें। मन के भुलावे और लालच से ऊँचे उठ जायें। यह आपका धर्म है। आपका जन्म ही इसके लिए हुआ है। और सारे धर्म तो अविद्या के कारण आपने स्वयं ही अपने ऊपर लाद लिये हैं।

होगा।

परिच्छेद- १०

शुद्ध और अशुद्ध मन

बुद्धिमान् मनुष्य विवेकयुक्त मन के द्वारा नीच मन को दृढ़ता से वश में कर लेते हैं। "उदरेदात्मनात्मानम्" जीवात्मा अपने द्वारा आपका (संसार-समुद्र से) उद्धार करे (भगवद्गीता ६-५) ।

मन के दो भेद

उपनिषदों के मतानुसार मन शुद्ध और अशुद्ध दो प्रकार का होता है। अशुद्ध मन में कामनाएँ भरी हुई होती हैं। शुद्ध मन में पवित्रता भरी हुई होती है। इस प्रकार दो मन होते। हैं। यदि आप ध्यान का अभ्यास करना चाहते हैं तो इन दोनों को एक कर दें—सात्त्विक मन बना दें। सात्त्विक मन के द्वारा वासनामय और भावमय अशुद्ध मन का संयम करना होगा।

बुद्धि भी दो प्रकार की होती है—– व्यावहारिक बुद्धि और शुद्ध बुद्धि। अहं अथवा अहंकार भी दो प्रकार का होता है—– शुद्ध अहंकार जो ब्रह्म से एकीभाव बनाता है और अशुद्ध अहंकार जो शरीर से एकीभाव बनाता है। संकल्प भी दो प्रकार का होता है—– शुद्ध संकल्प अर्थात् ईश्वर-सम्बन्धी विचार और अशुद्ध संकल्प अर्थात् शरीर और संसार-सम्बन्धी विचार ।

अशुद्ध मन से अशुद्ध संकल्प, व्यावहारिक बुद्धि और अशुद्ध अहंकार बनते हैं। इन तीनों का दुश्चक्र है। ये तीनों परस्पर सहयोग से काम करते हैं। मन का बीज अहंकार है। मन विचारों की गठरी मात्र है। सारे विचारों की जड़ अहंभाव है। यही विचार सबसे पहले मन से निकला था। अतएव मन केवल अहंभाव है। अहंकार की नींव बुद्धि है। बुद्धि ही आपको भौतिक शरीर के साथ एकरूप हो जाने को विवश करती है। बुद्धि ही भेद और नानाभाव उत्पन्न करती है।

सात्त्विक मन के लक्षण

सात्त्विक मन को एकान्त. मौन. सरल जीवन, उच्च विचारधारा, आध्यात्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय, दार्शनिक परिचर्चा, मन की एकाग्रता और साधु-महात्माओं तथा संन्यासियों का सत्संग पसन्द होता है। शुद्ध मन की परीक्षा वाणी, मुख और नेत्रों द्वारा हो सकती है। इन मुद्राओं के द्वारा मत स्थिर किया जा सकता है कि क्या व्यक्ति का मन निर्दोष है। उच्च कामनाएँ, महान् आकांक्षाएँ, ऊँचे आदर्श, सच्ची धार्मिक भावना, दया, सहानुभूति, शुद्ध निःस्वार्थ प्रेम, भक्ति, आत्मिक विचार, प्रेरणा और प्रतिभा —– ये सब उच्च मन से प्राप्त होते हैं। शुद्ध मन तो ब्रह्म ही है। यह मूर्तिमान् पवित्रता है।

राजसिक मन के लक्षण

राजसिक मन को भीड़-भाड़ वाले नगर, ज्यादा बातचीत, विलासी जीवन, नीच विचारधारा, स्त्रियों की संगति, स्वच्छन्दतावादी उपन्यासों का अध्ययन, स्वादिष्ट भोजन और स्वार्थपूर्ण कार्य पसन्द होता है। सहजवृत्तिक मन नीच, मलिन काम-मानस है जिसमें कामनाएँ, वासनाएँ और प्रवृत्तियाँ होती हैं। अधिक संख्या में मनुष्यों में यह सहजवृत्तिक मन ही होता है। शिक्षित और सभ्य कहलाने वाले मनुष्य भी इसी सहजवृत्तिक मन के स्तर पर रहते हैं। उनकी इन्द्रियाँ बड़ी निपुण तथा संवेदनशील होती हैं और वे उनकी तृप्ति के लिए अधिक परिष्कृत पदार्थों की खोज में रहते हैं। वे अपने को भौतिक शरीर और इन्द्रियों से एकरूप मानते हैं। सूक्ष्म आत्मा का उनको ज्ञान नहीं होता जो शरीर और इन्द्रियों से बिलकुल पृथक् है। यद्यपि वे यह जानते हैं कि मन भी होता है; पर उसका 'मैं' यह भौतिक स्थूल शरीर ही है।

विषय-भोग से रोग उत्पन्न होते हैं और विवेक-शक्ति नष्ट होती है। यह मन को मलिन बनाता है। इसलिए विषय-भोग से बचे रहें। अपने अन्दर ही आत्म-साक्षात्कार का प्रयत्न करें जहाँ नित्य सुख और अमृतत्व का वास है।

आत्म-विचार के लिए सात्त्विक मन की आवश्यकता

तीक्ष्ण, सूक्ष्म, एकाग्र और सात्त्विक मन की आवश्यकता आत्म-विचार और उपनिषदों के स्वाध्याय के लिए होती है। स्वार्थपरायण और कामपूर्ण व्यावहारिक बुद्धि विचार तथा दार्शनिक तर्कणा में नितान्त असमर्थ होती है। उसकी समझ पर स्वार्थ का बादल छाया रहता है। स्वार्थपरता जीवन का अभिशाप है । संसारी मनुष्य का मन यौन विचारों को आत्मसात् करने को सदा प्रस्तुत रहता है। वह सूक्ष्म शास्त्रीय विचारों को आत्मसात् नहीं कर सकता। वह बहुत कठोर होता है और शास्त्रीय विचारों को ग्रहण करने के लिए ठीक तरह से प्रदोलित नहीं होता। आप चिकनी मिट्टी में कील ठोक सकते हैं; परन्तु पत्थर में नहीं। निष्काम कर्म, जप, प्राणायाम और दूसरी आध्यात्मिक साधनाओं द्वारा मन को शुद्ध करना होगा।

यदि दर्पण मैला हो तो आप अपना मुँह साफ नहीं देख सकते। ऐसे ही यदि मन-मुकुर मैला हो तो आप परमात्मा का, आत्मा का स्पष्ट दर्शन नहीं कर सकते। ब्रह्म-ज्योति कार्यसाधक ढंग से प्रकाशित नहीं हो सकती है। यह मैल काम, क्रोध, लोभ आदि का मल है। इनको दैनिक प्रयास से आध्यात्मिक साधना, ध्यान, अनवरत निष्काम कर्मयोग, भक्ति आदि के द्वारा दूर कर दें।

श्रुति वाक्य है 'मनसैवानुद्रष्टव्यम्'- 'मन के द्वारा ब्रह्म को देखना चाहिए। यहाँ मन का तात्पर्य शुद्ध मन से है। ब्रह्म उस मन से देखा जा सकता है जो मोक्ष के साधन-चतुष्टय से युक्त हो; जो शम, दम, यम और नियम के अभ्यास से सूक्ष्म और शुद्ध किया गया हो, जो सुयोग्य गुरु के सदुपदेशों से युक्त हो तथा जो श्रवण, मनन और निदिध्यासन करता हो। यदि शुद्ध मन ज्ञान-शास्त्रों के अध्ययन, ज्ञानियों के सत्संग और ध्यान के निरन्तर अभ्यास से कुछ समय के लिए एकाग्र होने लगे तो ऐसे पुरुषों की सारवृद्धि होकर दिव्य दृष्टि हो जायेगी जिससे उन्हें एक सत्य परब्रह्म की अपरोक्षानुभूति हो जायेगी।

अशुद्ध मन को मार डालें

आत्मा का शत्रु यह अशुद्ध मन हैं जो अतिशय भ्रान्ति और विचारों के समूह से परिपूर्ण है। अशुद्ध मन रूपी यह शैतान और बलवान् नट सारे दुःख और भय उत्पन्न करता है और सारी उत्तम आध्यात्मिक सम्पत्ति नष्ट कर देता है। आपका वास्तविक शत्रु केवल यह अशुद्ध मन है जिसमें तृष्णा, भ्रम, वासना और अपवित्र विचारों का समूह भरा हुआ है। कहीं ऐसा न हो कि यह मन रूपी शत्रु आपको अनेक प्रकार से संसार के नाना सुखों के उपभोग द्वारा बिगाड़ दे; इसलिए नित्य सुख और आत्मिक ज्ञान-प्रकाश के लिए इसको मार डालें। शुद्ध मन के द्वारा इस अशुद्ध मन का नाश कर दें। अपने सात्त्विक उच्च मनस् और विवेक की सहायता से इस सहजवृत्तिक मन को नष्ट कर दें। तब आपको स्थायी अपरिच्छिन्न शान्ति और आत्मानन्द प्राप्त होगा। तब आप जीवन्मुक्त हो जायेंगे।

सात्विक और राजसिक मन की गति एक-दूसरे के विपरीत दिशा में हुआ करती है। सात्त्विक मन एकता बनाता है। सहजवृत्तिक मन विभाग और भेद बनाता है। सहजवृत्तिक मन की नाणी आपको धोखे में डालेगी मन शुद्ध करें और सात्विक मन की आवाज सुने। नीच, अशुद्ध और सहजवृत्तिक मन का विनाश कर आपको शुद्ध मन की वृद्धि करनी होगी। शुद्ध मन के द्वारा इस अशुद्ध मन का नाश कर दें, तब आपको शाश्वत सुख तथा शान्ति प्राप्त होगी, तभी आपको मोक्ष, ब्रह्मज्ञान तथा नित्यानन्द प्राप्त होगा। इस मन को सतत विचार और प्रणव के ध्यान से नष्ट कर देना चाहिए और अपने सच्चिदानन्द-स्वरूप में स्थित हो जाना चाहिए।

मन को कैसे शुद्ध करें

जैसे लोहे के एक साँचे से दूसरे लोहे का आकार बनता है, वैसे ही मनुष्य के धार्मिक मार्ग में प्रयत्नशील शुद्ध मन को उसके अशुद्ध मन को सुधारने और पवित्रता में छालने में समर्थ होना चाहिए। वास्तविक सत्कर्म तथा निरन्तर सत्संग के द्वारा निश्चय ही मन शुद्ध हो जाता है। सत्य भाषण और दया का अभ्यास मन को बहुत शुद्ध करते हैं। सारी महती आकांक्षाएँ, समष्टि-प्रेम की वृत्तियाँ तथा दयावे सब मन की सात्त्विक सामग्री बढ़ाने में बड़ी सहायक होती हैं। इनसे उच्च मन की वृद्धि होती है।

यज्ञ, दान, दया, वेदाध्ययन, सत्य भाषण —ये पाँचों शुद्ध करने वाले हैं। छठी सुआचरित तपस्या है। अन्तिमोक्त परम पावनी है। तीर्थयात्रा भी चित्त की शुद्धि करती है। 6 इसके द्वारा महात्माओं का अच्छा सत्संग हो सकता है।

दान, जप, निष्काम कर्म, यश, अग्निहोत्र, ब्रह्मचर्य, सन्ध्या, तीर्थयात्रा, शम, दम, नियम, स्वाध्याय, तप, व्रत, साधु-सेवा – ये सब मन को शुद्ध करने वाले हैं। निश्चय ही इस प्रकार शुद्ध हुए मन में विशुद्ध आनन्द रहेगा।

मन्त्र भी मन को शुद्ध करता है। तोते की तरह मन्त्र को केवल रटने से फल होता है। मन्त्र का भावपूर्वक जप करना चाहिए। तब इसका आश्चर्यजनक प्रभाव बहुत कम होता है। जब तक मन्त्र में अपने ही मन की पूर्ण इच्छा-शक्ति नहीं भरी होती, तब तक उसका बहुत प्रभाव नहीं हो सकता ।

दार्शनिक ग्रन्थों का स्वाध्याय, सद्विचार, अच्छी भावनाओं का अभ्यास, प्रार्थना तथा परोपकारी कार्य और सर्वोपरि नियमबद्ध तथा तीव्र ध्यान मन को सुधारने के साधन हैं। इनके द्वारा मन की उन्नति शीघ्र होगी। जब मन पवित्र हो जाता है तो मध्य में एक छिद्र बन जाता है जिसमें पवित्रता, प्रकाश और ज्ञान ब्रह्म से बहते हैं।

दश कैरट के सोने को तेजाब मिला कर मूषा में बार-बार तपा कर सुनार पन्दरह कैरट का बना लेता है। इसी प्रकार आपको अपने इस इन्द्रिय- लोलुप मन को धारणा, गुरु-वचनों के मनन, उपनिषद्-वाक्यों पर विचार, ध्यान, जप तथा मौन नाम-स्मरण द्वारा शुद्ध बनाना होगा।

हरताल को शुद्ध करने में बहुत समय लगता है। पहले इसे गोमूत्र में सात दिन, फिर चूने के पानी में दश दिन और फिर दूध में सात दिन भिगोते हैं। इसके बाद इसे १०८ बार अग्नि में जलाना पड़ता है, तब इसकी भस्म बनती है। इसी प्रकार चित्त-शुद्धि करने में भी बहुत समय लगता है। इसके लिए कठोर तपश्चर्या की आवश्यकता होती है।

मन शुद्ध हो जाने पर इसकी संवेदन-शक्ति बढ़ जाती है। थोड़े से भी शब्द या झटके से बाधा मालूम होती है और किसी भी दबाव को तीव्र मानता है। साधक की संवेदनशक्ति विकसित होनी चाहिए, तो भी उसको अपने शरीर और नाड़ियों को संयमित रखना चाहिए। ज्यों-ज्यों संवेदनशक्ति बढ़ती जाती है, संयम भी अधिकतर कठिन होता जाता है। बहुत से शब्दों पर साधारण मनुष्य ध्यान तक नहीं देता; परन्तु जिसकी संवेदन-शक्ति अत्यधिक विकसित हो गयी हो, उसको वे बड़ी व्यथा पहुँचाते हैं। आपको इस अतिसंवेदनशीलता को समाप्त करना चाहिए।

शुद्ध मन की दीक्षा निर्विकल्पावस्था की ओर अग्रसारित करती है

शुद्धि योग का प्रथम अंग है। जब शुद्धि हो जाती है, तब मन की प्रवृत्ति स्वभावतः ही मोक्ष की ओर आ जाती है। यदि किसी शिष्य का मन सारे मलों से शुद्ध हो गया है और उसे गुरु ईश्वरीय रहस्यों में दीक्षा दें तो उसका मन बिलकुल शान्त हो जायेगा और वह निर्विकल्प अवस्था (असंवेदन) प्राप्त कर लेगा।

परिच्छेद- -११

वृत्तियाँ

वृत्तिः उसका स्वरूप और कार्य

पानी में जो भँवर पड़ते हैं, उन्हें आवर्तन या वृत्ति कहते हैं। इसी प्रकार विचार की लहर, जो अन्तःकरण में उठती है, वृत्ति कहलाती है। वृत्तियाँ मन के विकार हैं और वे अविद्या के कार्य हैं। जब ज्ञान द्वारा अविद्या नष्ट हो जाती है तो वृत्तियाँ भी उसी प्रकार मन में लय हो जाती हैं जैसे गरम तवे पर डाला जल उसी में सूख जाता है।

वृत्ति कहाँ से उठती है? चित्त से। वृत्ति क्यों उठती है? यह अन्तःकरण का स्वभाव है। इसका क्या कर्म है? यह आवरण भंग करती है अर्थात् स्थूल अविद्या के आवरण को, जो पदार्थों को ढके रखता है, हटाती है। यह मनुष्य को पूर्णता (जीवन्मुक्ति) प्राप्त करने तक उन्नति में सहायक होती है। वृत्ति ज्ञानियों में, आज्ञाचक्र में कुण्डलिनी को खोलती है और उसे सहस्रार चक्र से मिलाती है। यह एक मार्ग है।

चित्त मानस-द्रव्य है। यह मानसिक द्रव्य है। वृत्ति या विचार-तरंग इसी मानसिक द्रव्य का विकार है। यह एक कार्य-प्रणाली है। जैसे समुद्र के ऊपरी तल से लहरें तथा बुदबुद उठते हैं, वैसे ही ये वृत्तियाँ मन रूपी सागर से उठती हैं। जैसे सूर्य से किरणें निकलती हैं, उसी प्रकार मानसिक किरणें (विकार या वृत्तियाँ) मन रूपी सूर्य से निकलती हैं। जैसे सूर्यास्त के समय अपने किरण-समूह को समेट कर सूर्य पश्चिम क्षितिज में लीन हो जाता है, उसी प्रकार आपको भी उस सूर्यों के सूर्य, चिद्धन, नित्य शान्ति-रूप आत्मा में मन की सारी बिखरी हुई किरणें समेट कर मन को लीन करना होगा।

वृत्ति का काम मन के आवरण को हटाना है। सब पदार्थों को स्थूल अविद्या ने ढक रखा है। जब यह आवरण हटता है तो सारे पदार्थ भासते हैं। जब आप बहुत से लोगों में से गुजरते हैं तो उनमें से कुछ लोगों को ही देखते हैं। यद्यपि कुछ व्यक्ति आपकी दृष्टि के सामने भी आते हैं, तथापि आप उनको इसलिए नहीं देखते कि पूरा-पूरा आवरण भंग नहीं हुआ था। जब पूरा आवरण भंग हो जाता है तो पदार्थ भासने लगता है।

महर्षि पतंजलि के राजयोग के अनुसार पाँच प्रकार की मनोवृत्तियाँ होती हैं अर्थात् प्रमाणवि विकल्प निद्रा और स्मृति यदि वे पाँचों मानसिक क्रियाएं दबा दी जायें तो इच्छाओं और अन्य क्रियाओं का निग्रह स्वयं ही हो जायेगा।

विषयाकार-वृत्ति तथा ब्रह्माकार-वृत्ति

अपने ही प्रयत्नों द्वारा जिस पदार्थ पर मन धारणा करता है, उसी का रूप बन जाता है। यह स्त्री का चिन्तन करता है तो स्त्री का रूप बन जाता है। यह वृत्ति तदाकार कहलाती है। यदि वह ईश्वर या ब्रह्म का चिन्तन करता है तो ईश्वर या ब्रह्म का रूप बन जाता है। ब्रह्माकार-वृत्ति अब पैदा होती है। पहली अवस्था में मन में रजस् भर आता है और दूसरी अवस्था में सत्त्व या पवित्रता भरती है।

जब मन पदार्थों का चिन्तन तथा उन पर देर तक विचार करता है तो वह स्वयं उन पदार्थों का रूप धारण कर लेता है। इसे विषयाकार-वृत्ति कहते हैं। जब यह ब्रह्म-चिन्तन करता है तो ब्रह्माकार-वृत्ति बन जाती है। मन और उसकी क्रियाओं को देखने में साधक को बड़ा सतर्क तथा सावधान रहना चाहिए। विषयाकार-वृत्ति को ब्रह्माकार-वृत्ति में बदलना आवश्यक है। ज्यों-ही मन ब्रह्माकार-वृत्ति से विषयाकार-वृत्ति में गिरे, उसे फिर ब्रह्माकार-वृत्ति में लगा देना चाहिए। यह संग्राम निस्सन्देह बड़ा कठिन है।

आप एक ही समय में (घटपटादि) विषयाकार वृत्ति और ब्रह्माकार वृत्ति नहीं रख - सकते। यह श्रुति-विरुद्ध है और क्रियात्मक अनुभव भी ऐसा नहीं बताता।

आपको पदार्थ या विषय नहीं बाँधते । वृत्ति और उसके साथ तादात्म्य-सम्बन्ध ही आसक्ति और बन्धन का कारण होते हैं। अविद्या के कारण आप वृत्ति के साथ सारूप्य कर लेते हैं, यथा क्रोध आने पर आप कहते हैं—'मैं क्रुद्ध हूँ।"

वृत्तियों के भेद

वृत्तियाँ पाँच प्रकार की होती हैं : (१) मनोवृत्ति, (२) बुद्धि-वृत्ति, (३) साक्षी - वृत्ति, (४) अखण्डाकार-वृत्ति और (५) अखण्डैकरस- वृत्ति। इसमें प्रथम जड़-रूप मन की वृत्ति है और शेष सब सात्त्विक मन की वृत्तियाँ हैं। सांसारिक मनुष्यों की विषयाकार - वृत्ति ही मनोवृत्ति है। विवेकियों की बुद्धि-वृत्ति होती है। जब आप साक्षी वृत्ति से तादात्म्य कर लेते हैं, तो मन के विकारों को देख सकते हैं। जब आप ऐसा अनुभव करने का प्रयास करते हैं कि आप अनन्त, असीम आत्मा हैं, तब अखण्डाकार-वृत्ति पैदा है। यही ब्रह्माकार-वृत्ति भी कहलाती है। ब्रह्म में कोई वृत्ति नहीं होती।

मनोवृत्ति से विवेक-वृत्ति पर पहुँचना चाहिए। मनोवृत्ति का सम्बन्ध मनोमय कोश से है तथा विवेक-वृत्ति का सम्बन्ध विज्ञानमय कोश से है। विज्ञानमय कोश को समृद्ध करने से मनोवृत्तियों को जीता जा सकता है। विवेक वृत्ति से साक्षी-वृत्ति पर पहुँचना चाहिए। साक्षी वृत्ति से अखण्डाकार वृत्ति प्राप्त करनी चाहिए। अखण्डाकार-वृत्ति से अखण्डैक-रस प्राप्त करना चाहिए। यही ब्रह्म स्वरूप है, कैवल्य है और जीवन का चरम लक्ष्य है।

अन्तर्मुख-वृत्ति तथा बहिर्मुख-वृत्ति

जब मन की बहिर्गामी वृत्तियों का निरोध हो जाता है और मन को हृदय गुहा में ही रोक लिया जाता है, जब इसका सम्पूर्ण अवधान इसी पर लगा दिया जाता है, वह दशा अन्तर्मुख-वृत्ति कहलाती है। सत्त्वगुण में वृद्धि होने से मन में जो अन्तः प्रत्याहरन की शक्ति होती है, उसे अन्तर्मुख-वृत्ति कहते हैं। जब साधक को यह अन्तर्मुख-वृत्ति प्राप्त हो जाये तो साधक बहुत कुछ साधना कर सकता है।

रजोगुण के कारण मन की बहिर्गमनशीलता को बहिर्मुख वृत्ति कहते हैं जब दृष्टि - बाहर की ओर डाली जाये तो मन भागती हुई घटनाओं के वेग में संलग्न हो जाता है। तब मन की बहिर्गामिनी शक्तियाँ अपना कार्य करने लगती हैं स्वभाववश कान और आँख दोनों शब्द तथा दृश्य की ओर दौड़ते हैं। पदार्थ (विषय) और इच्छाएँ मन को बहिर्मुख बनाने वाली शक्तियाँ हैं। वासनाओं से भरा हुआ रजोगुणी मनुष्य अन्तर्मुख-वृत्ति सहित आन्तरिक आध्यात्मिक जीवन की स्वप्न में भी आशा नहीं कर सकता। वह अन्तर्निरीक्षण के सर्वथा अनुपयुक्त है।

बहिर्मुख करने वाली मन की सारी शक्तियों को नष्ट कर चुकने पर ही अन्तर्मुख-वृत्ति प्राप्त होती है। इस मानसिक अवस्था को प्राप्त करने में वैराग्य और त्याग के द्वारा मन को भूखा मार दें। यौगिक क्रिया प्रत्याहार के द्वारा मन को अपने ऊपर अन्तर्मुख करने की कला आपको अवश्य सीखनी चाहिए। जिस प्रकार आपका कपड़ा किसी काँटेदार झाड़ी पर गिर जाये तो आप धीरे-धीरे एक-एक काँटा निकाल कर कपड़े को उठाते हैं, इसी प्रकार अनेक वर्षों से गिरी हुई मन की किरणों को भी सतर्कता और अध्यवसाय से समेटना होगा।

आपको धैर्य के साथ वैराग्य और अभ्यास, त्याग और तप के द्वारा इन शक्तियों को समेटना होगा तथा फिर साहस और अथक सामर्थ्य के साथ परमात्मा या ब्रह्म की ओर आगे बढ़ना होगा। जिन्हें इस अभ्यास का ज्ञान है, वे ही वास्तव में शान्त हो सकते हैं, वे ही सुखी रह सकते हैं। जब मन की किरणें संकेन्द्रित होती हैं तो प्रकाश मिलने लगता है। अब मन कुछ भी हानि नहीं कर सकता। वह बाहर नहीं जा सकता। उसे हृदय-गुहा के अन्दर ही रखा जा सकता है।

वृत्ति नाश मनोबल प्राप्त कराता है

वृत्तियों को नष्ट कर देने से मन को बड़ी शक्ति मिल जाती है। वृत्तियों का नाश करना सहज नहीं है; क्योंकि ये अगणित हैं। इनसे एक-एक करके निबटना चाहिए। कुछ वृत्तियाँ प्रबल होती हैं। उनके विनाश के लिए दृढ़ प्रयत्न की आवश्यकता होती है। अधिकांश वृतियाँ बहुत दुर्बल होती हैं। छोटी-छोटी वृत्तियाँ फटे हुए बादलों की भाँति विलीन हो जाती है। प्रबल वृत्तियाँ बची रहती हैं और नींद से उठने के बाद प्रायः पुनः प्रकट होती हैं।

मौन हो जायें। शान्ति में प्रवेश करें। आत्मा शान्ति रूप है। ब्रह्म शान्ति रूप है। मौन ही केन्द्र है। मौन ही हृदय गुहा है। जब मन एक वस्तु से दूसरी वस्तु की ओर दौड़ता है तो वह बीच की अवस्था जिसमें आप अति सूक्ष्म काल के लिए ही अमन हो जाते हैं, स्वरूपस्थिति है। वह ब्रह्म है। जब मन का पूर्ण निग्रह हो जाता है तो वृत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं। जब सारे विकार शान्त हो जाते हैं, तब ही आप शान्ति-रूप मौन में प्रवेश करते हैं। इसका इसी क्षण साक्षात्कार करें। नेत्रों को बन्द करके, इन्द्रियों का प्रत्याहार करके, मन को निश्चत करके, विचारों को शान्त करके, बुद्धि को तीव्र करके, चित्त शुद्धि करके, ओंकार का चिन्तन करके, भावसहित प्रणवोच्चार द्वारा दिव्य महिमा और ब्रह्मतेज का अनुभव करें। चौबीसों घण्टे ब्रह्ममयी चेतना को अनवरत जारी रखें। आत्म-चेतना का निरन्तर प्रवाह रखें। यह अत्यन्त आवश्यक है। यह अनिवार्य शर्त है। यह बहुत ही अभीष्ट है।

जब सारी वृत्तियाँ मर जाती हैं तो संस्कार और मन का ढाँचा रह जाता है। संस्कार केवल निर्बीज समाधि द्वारा भस्म किये जा सकते हैं।

परिच्छेद- १२

प्रत्यक्ष ज्ञान का सिद्धान्त

"यदा वै मनुतेऽथ विजानाति नामत्वा विजानाति मत्वैव विजानाति..."
- जिस समय मनुष्य मनन करता है, तभी वह विशेष रूप से जानता है: बिना मनन किये कोई नहीं जानता, अपितु मनन करने पर ही जानता है। (छान्दोग्योपनिषद् : (७-१८-१)

.... अन्यत्रमना अभूवं नादर्शमन्यत्रमना अभूवं नाश्रौपमिति मनसा होव पश्यति मनसा शृणोति कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एवं तस्मादपि पृष्ठत उपस्पृष्ठो मनसा विजानाति ... " - " मेरा मन अन्यत्र था, इसलिए मैंने नहीं देखा, मेरा मन अन्यत्र था. इसलिए मैंने नहीं सुना (ऐसा जो मनुष्य कहता है, इससे निश्चय होता है कि) वह मन से ही देखता है और मन से ही सुनता है। काम, संकल्प, संशय, श्रद्धा, अश्रद्धा, धृति, अधृति, लज्ञा, बुद्धि, भय-ये सब मन ही हैं। इसी से पीछे से स्पर्श किये जाने पर मनुष्य मन से जान लेता है। (बृहदारण्यकोपनिषद् : १-५-३)

मन के दो उपखण्ड हैं—एक विचार वाला भाग और दूसरा प्रत्यक्ष दर्शन करने वाला भाग। विचार करने वाले भाग को बन्द कर देना सुगम है; परन्तु प्रत्यक्ष दर्शन के भाग को बन्द करना कठिन है।

व्यक्तिगत मन बाहरी पदार्थों को देखता है। यदि दूरदर्शक से वही पदार्थ देखा जाये तो वह कुछ और तरह दिखायी देता है। यदि आप सीधे मन के ही द्वारा देख सकते होते तो वही पदार्थ कुछ और तरह दिखायी देता । हिरण्यगर्भ (कार्य ब्रह्म) की दृष्टि भिन्न है। यदि आप ध्यान करें कि बड़ी भारी लड़ाई चल रही है और दोनों पक्षों के बहुत से मनुष्य मर रहे हैं तो उस समय जिस प्रकार का दृश्य आपके मानस पटल पर अंकित हो जायेगा, उसी प्रकार वह (हिरण्यगर्भ) प्रत्येक पदार्थ अपने अन्दर ही संकल्प के रूप में स्पन्दित या गतिशील-सा देखता है। अपने इच्छानुसार अपने ध्यान को आप वापस कर सकते हैं।

प्रत्यक्ष ज्ञान के सिद्धान्त

एक सिद्धान्त मन के लचीले होने का है। इस विचारधारा के लोग कहते हैं कि जब विविध इन्द्रियों का स्पर्श अनेक विषयों से होता है तो मन लचीला हो जाता है और इस प्रकार एक-साथ ही सारी ज्ञानेन्द्रियों के संसर्ग में आ जाता है। जब मन का स्पर्श एक विषय और एक इन्द्रिय से होता है तो मन किसी अंश तक सिमट जाता है। बेदान्तियों ने इस सिद्धान्त को पौधा बता कर इसका खण्डन कर निर्मूल सिद्ध किया है।

एक विचारधारा अन्य भी है जो कहती है कि मन के भिन्न-भिन्न विभाग होते हैं। मन का एक भाग एक ज्ञानेन्द्रिय से स्पर्श करता है, दूसरा भाग दूसरी इन्द्रिय से इत्यादि। वेदान्ती इस सिद्धान्त को भी निर्मूल और थोथा बता कर निराधार कर देते हैं।

दृष्टि-सृष्टिवाद के नाम से प्रसिद्ध विचारधारा के अनुसार द्रष्टा और दृश्य पदार्थ एक ही हैं। जैसे मकड़ी अपने ही शरीर में से जाला बनाती है, उसी तरह मन भी अपने ही शरीर से जाग्रत अवस्था में यह स्थूल संसार रचता है और सुषुप्ति में इस संसार को वापस ले लेता है। मानसिक वृत्ति बाहर आ कर पदार्थ बन जाती है।

मानसिक अविद्या के कारण ही दृश्य की स्थिति है। बाहर तो केवल प्रकाश और स्पन्दन है। मन ही आकार और रंग देता है। यह सब मन का ही धोखा है। यह एक दृष्टिकोण है, प्रत्यक्ष ज्ञान का एक सिद्धान्त है।

आन्तरिक मन और बाह्य तन्मात्रा के स्पन्दन का पारस्परिक प्रभाव ही वह पदार्थ या संसार है जो आप देखते हैं। पाँचों तन्मात्राओं के सात्त्विक अंश से मन बनता है। बाहर प्रकाश है। सूर्य भी प्रकाश उत्सर्जित करता है। आँख अग्नि-तत्त्व से बनी है। मन का वह अंश भी अनि-तत्त्व से बना है जो देखता है। इसलिए अनि अनि को देखती है। मन का वह अंश जो शब्द-तन्मात्रा से बना है, सुन सकता है। शब्द बाहर आकाश से आता है, इसलिए मन का आकाश बाहर के आकाश को सुनता है। परन्तु आत्मा प्रत्येक वस्तु को देख सकती है, सुन सकती, स्वाद ले सकती और स्पर्श कर सकती है। आत्मा आत्मा से देखी जा सकती है। इसलिए आप जो कुछ भी बाहर देखते हैं, सब आत्मा ही है। **सर्व खल्विदं ब्रह्म** -निश्चय ही प्रत्येक वस्तु ब्रह्म है।

पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र का मत

पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र के अनुसार बाहरी प्रकाश के स्पन्दन दृष्टि-पटल पर - पड़ते हैं और वहाँ पदार्थ का विलोम आकार बन जाता है। वे स्पन्दन दृग्-क्षेत्र तथा दृग् चेतक द्वारा शिर के पश्च भाग में मस्तिष्क के पश्चकपाल-खण्ड के केन्द्र में पहुँचते हैं और वहाँ उसी पदार्थ का सीधा आकार बनता है। तभी आप अपने सामने के पदार्थ को देखते हैं।

सांख्य-दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष ज्ञान

प्रत्यक्ष ज्ञान की असली भित्ति पुरुष है जिसका पाश्चात्य चिकित्सकों और मनोविज्ञानियों को ज्ञान तक नहीं है। मांसल चक्षु केवल दर्शन के लिए बाह्य करण है। यह दृष्टि की इन्द्रिय नहीं है। इन्द्रिय-दृष्टि तो मस्तिष्क में स्थित एक केन्द्र है। यही बात सारी इन्द्रियों की है। मन इन्द्रियों से सम्बद्ध है, इन्द्रियाँ तत्सम्बन्धी मस्तिष्क केन्द्रों से, मस्तिष्क केन्द्र स्थूल इन्द्रियों (करणों) से और स्थूल करण बाह्य विषयों से सम्बद्ध हैं। मन इन्द्रिय-ज्ञान को बुद्धि के सम्मुख रखता है और बुद्धि पुरुष (अर्थात् अभौतिक शुद्ध आत्मा) के सम्मुख रखती है। वास्तविक दर्शन तभी होता है। पुरुष बुद्धि को आदेश देता है। इसके बाद बुद्धि उस विषय की भलाइयों तथा बुराइयों की तुलना करके, निश्चय करके, मन को कर्मेन्द्रियों के द्वारा कार्य सम्पन्न करने की आज्ञा देती है। बुद्धि प्रधानमन्त्री और न्यायाधीश है जो मन-वकील के बयान सुनती है। मन वकालत भी करता है और प्रधान सेनापति का काम भी करता है। बुद्धि की आज्ञा मिलने पर मन प्रधान सेनापति का काम करता हुआ पाँच कर्मेन्द्रिय-रूपी अपने पाँच सैनिकों द्वारा कार्य कराता है। सांख्य-मत के अनुसार यह दर्शन का सिद्धान्त है। ध्यान दें कि हिन्दू-दर्शन में विषयों का प्रतिपादन कितना स्पष्ट है।

पहले स्थूल आँख करण होती है। यह पदार्थों का अंक इन्द्रिय-केन्द्र तक पहुँचाती है। फिर मन का सम्बन्ध इन्द्रिय-केन्द्र और बाह्य स्थूल करण से हो जाता है। फिर मन उसी अंक को बुद्धि तक पहुँचाता है। तब अहंकार की अभिव्यक्ति होती है, जो अपना अस्तित्व प्रस्तुत करके अभिमान का स्वरूप ले लेता है। तब इस क्रिया-प्रतिक्रिया 1 परिणाम आत्मा के आगे पहुँचता है जो उस पदार्थ को इस परिणाम के प्रकाश देखती है।

इन्द्रियार्थसन्निकर्ष अर्थात् इन्द्रियों और विषयों के संस्पर्श द्वारा भौतिक ज्ञान प्र होता है। प्रपंच-विषय को जानने के लिए इन्द्रिय, अन्तःकरण और जीव इन तीनों आवश्यकता होती है। इन्द्रिय अपने विषय को देखेगी, मन उसको प्रकट करेगा और बु आभास-चैतन्य की सहायता से उसको समझेगी। मन, इन्द्रियाँ और करण तीनों इकट्ठे हो जायें, तभी किसी पदार्थ का प्रत्यक्ष ज्ञान (Perception) हो सकता है। पदार्थ इन्द्रियों के संसर्ग में आता है। इन्द्रियाँ मन से सम्बद्ध हैं। मन का आत्मा से सम्बन्ध होता है। आत्मा प्रकाश देता है। यह भौतिक जगत् के सम्बन्ध में है।

वेदान्त का सिद्धान्त

अद्वैत दर्शन के सिद्धान्त के अनुसार हमारे अन्दर का चैतन्य प्रत्यक्ष ज्ञान की सम्भावना बनाता है। हमारे अन्तर की चेतना विषय की चेतना से संयुक्त होती है और पहुँचाने के लिए परिणाम में प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि मन और इन्द्रियों का कुछ उपयोग ही नहीं है। दर्शन को तत्सम्बन्धी विषयों के साथ यथास्थान इन्द्रियाँ आवश्यक है। आत्मा के चैतन्य-स्वरूप होने से इन्द्रियों की निरर्थकता सिद्ध नहीं होती; क्योंकि ये प्रत्येक इन्द्रिय का विषय-विशेष निरूपण करती हैं।

वेदान्तमतानुसार मन आँख के द्वारा बाहर आता है और स्वयं बाह्य पदार्थ का रूप बन जाता है। इन्द्रियों के मार्ग से अन्तःकरण-वृत्ति प्रवेश करती है, विषय-अज्ञान को हटाती है और विषयाकार अर्थात् पदार्थ का स्वरूप बन कर उस पदार्थ को आपकी दृष्टि के सम्मुख लाती है । वृत्ति का काम मन के आवरण को भंग करना है।

वास्तव में मन की एक किरण ही बाहर जा कर पदार्थ का रूप तथा आकार धारण करती है और उसे ढक लेती है। तभी प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। पुस्तक का ज्ञान तभी हो सकता है जब मन पुस्तक का रूप बन जाता है। मन की आकृति और बाह्य आकार मिल कर पदार्थ बनता है। जो-कुछ भी पदार्थ आप बाहर देखते हैं, मन में उसका आकार अवश्य होता है।

जब आप किसी आम के बगीचे से हो कर निकलते हैं तो आपके मन की एक किरण आँख के द्वारा बाहर निकल कर एक आम को घेर लेती है। यह आम का स्वरूप बन जाती है। इस किरण को वृत्ति कहते हैं। ढक लेने की क्रिया को वृत्ति-व्याप्ति कहते हैं। पदार्थ और उपहत चैतन्य को आवरण ढक लेता है, उसको हटाना वृत्ति का काम है। जो आवरण पदार्थ-रूप आम को ढके हुए है, वह वृत्ति द्वारा दूर हो जाता है। वृत्ति के साथ चैतन्य (वृत्ति - सहित चैतन्य) होता है। यह चैतन्य पदार्थ-रूप आम को प्रकाशित करता है। इसे फल-व्याप्ति कहते हैं। जिस प्रकार टार्च के प्रकाश में पदार्थ भी प्रकाश में आ जाते हैं, उसी प्रकार वृत्ति-चैतन्य पदार्थ को प्रकाशित कर देता है। फिर आम का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। मन संकल्प-विकल्प करता है कि यह आम है या नहीं। बुद्धि मन की सहायता करती है और पूर्व अनुभव के द्वारा निश्चय करती है कि आम है। चित्त अनुसन्धान करता है कि मुझे आम किस प्रकार मिल सकता है। "क्या मैं मालिक से पूछूं या माली से माँगें ?" अहंकार कहता है, "मुझे किसी-न-किसी प्रकार आम मिलना ही चाहिए। मैं इसे चाहता हूँ।" फिर मन कर्मेन्द्रियों को कार्य करने का आदेश देता है।

जब आप आम के वृक्ष को देखते हैं तो यह आपसे बाहर का पदार्थ है। इसमें बाह्यता है। आम का वृक्ष मानसिक पदार्थ है। इसकी एक मानसिक स्मृति-जन्य आकृति भी है। मन से भिन्न (पृथक्) आम का वृक्ष है ही नहीं। किसी वृक्ष की सत्ता आप मन के द्वारा ही जान सकते हैं। मन के अन्दर एक आकृति होती है। वह मानसिक आकृति और बाह्य पदार्थ मिल कर आम का वृक्ष बनता है। यदि आप आँखें बन्द भी कर लें तो स्मृति के द्वारा ही आप मानसिक आकृति देख सकते हैं। पत्तियों का हरा रंग प्रकाश-स्पन्दों के एक निश्चित प्रमाण के कारण बनता है। ये प्रकाश-स्पन्द आँख की पुतली से टकराते हैं और मस्तिष्क के पिछले भाग में दृष्टि के केन्द्र तक पहुँचाये जाते हैं। विज्ञान कहता है कि आम की पत्तियों में सूर्य की किरणों को भेद कर केवल हरा रंग ग्रहण करने की शक्ति रहती है।

आपका शरीर भी आपके लिए उसी प्रकार बाह्य पदार्थ है जैसे कि वह आम का वृक्ष। यह भी एक मानसिक पदार्थ अथवा मानसिक आकार है। आम का वृक्ष आपके शरीर-सम्बन्ध से आपसे बाह्य है। आम का वृक्ष भी उस नित्य सत्ता में तैरता हुआ एक आभास मात्र है। क्योंकि आम का वृक्ष शरीर के सम्बन्ध से आपसे बाह्य है और आपका शरीर भी बाह्य पदार्थ है, इसलिए आम के वृक्ष की बाह्यता अथवा इस संसार की बाह्यता का भाव अब निर्मूल हो जाता है। इसी प्रकार आन्तरिकता का भेद है। यदि बाह्यता जाती रहे तो आन्तरिकता कहाँ रहेगी ? बाह्यता और आन्तरिकता ये

दोनों शब्द भ्रममात्र हैं और मन की कल्पनाएँ हैं। इन कहलाने वाली बाह्यता और आन्तरिकता के पीछे एक ही नित्य सत्ता अथवा परम सत्ता है। वह नित्य अनन्त 'मैं' है। यह आपकी अपनी आत्मा है।

मन ही भेद उत्पन्न करता है

चक्षु मन के सम्मुख कुछ एक रूप या आकार उपस्थित करते हैं। मन उनको अच्छा या बुरा निश्चय करता है। यह कहता है, "यह आकार सुन्दर है, यह भद्दा है, यह अच्छा है।" यहाँ ही बन्धन और दुःख आता है। अच्छा-बुरा, सुरूप और कुरूप, यह सब मन की कल्पना मात्र है। यदि मन बना सकता है तो विनाश भी कर सकता है। इसी प्रकार कान कुछ एक शब्दों के स्पन्द मन के सम्मुख उपस्थित करते हैं। मन कहता है, "यह प्रशंसा है, यह आक्षेप है।" आँख और कान का किंचित् भी दोष नहीं है। वे निर्दोष हैं। मन ही शैतानी करता है।

मानसिक बोध क्रमशः होता है

मन केवल परिच्छिन्न पदार्थों का चिन्तन कर सकता है। हरे पदार्थ का ध्यान किये बिना मन हरियाली का ध्यान नहीं कर सकता।

मन निरवयव है। वह केवल एक ही विचार एक समय में ग्रहण कर सकता है। यह वैकों का सिद्धान्त है। ये वेदान्ती भी जो मन को सावयव बताते हैं और इसी के लिए बोरनारीदृष्टान्त देते हैं अर्थात् उसे कुलटा स्त्री घर का धन्धा करती हुई भी उपपत्ति में लगाये रखती है, यह मानते हैं कि उस समय उसके मन की विशेष वृत्ति उपपत्ति में होती है और केवल सामान्य वृत्ति घर के काम में होती है।

मनुष्य का मन एक समय में एक ही पदार्थ को ग्रहण कर सकता है, यद्यपि यह एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ पर ऐसे अद्भुत वेग से जा सकता है कि कुछ वैज्ञानिकों ने निश्चय किया है कि यह एक समय में अनेक वस्तुओं को ग्रहण कर सकता है। मन एक प्रकार का द्वारपाल है जो एक समय में एक ही प्रकार का इन्द्रिय-ज्ञान मानसिक उद्योगशाला में आने देता है। आप एक ही साथ देख और सुन नहीं सकते। मन एक समय में एक ही विचार कर सकता है। परन्तु मन की गति चपला-सी इतनी तीव्र होती है कि साधारण मनुष्य समझता है कि वह एक ही समय में अनेक विचार रख सकता है।

सीमित या परिमित मन के द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान, अनुभव या बोध क्रमशः होता है, एक-साथ ही सहसा कई पदार्थों का ज्ञान नहीं हुआ करता। एक-साथ अनेक विषयों का ज्ञान केवल निर्विकल्प समाधि में प्राप्त हो सकता है जिसमें भूत और भविष्य दोनों ही वर्तमान काल में लीन हो जाते हैं। केवल योगी को ही सारी वस्तुओं का एक साथ ज्ञान हो सकता है। संसारी मनुष्य का मन सीमित होता है। वह तो क्रमशः ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है। दो विचार परस्पर चाहे जितने भी सम्बद्ध क्यों न हों, एक ही समय में साथ-साथ नहीं रह सकते। हमारे अन्तःकरण का स्वभाव एक क्षण में एक पदार्थ को एक से अधिक रूप में चेतना के सम्मुख जाने से रोकता है। यद्यपि भिन्न-भिन्न इन्द्रियों से तत्सम्बन्धी अनेक विषयों का स्पर्श एक ही काल में हो जाता है, फिर भी मन उस द्वारपाल का कार्य करता है जो फाटक में एक समय में एक ही मनुष्य को आने देता है। मन एक समय में केवल एक ही प्रकार का संवेदन मानसिक उद्योगशाला में भेज सकता। जिसके फलस्वरूप सम्यग्दर्शन तथा सुन्दर आकृति तैयार होती है। है

जब मन दृष्टि के साथ लगा होता है और उधर ध्यान देता है तो यह केवल देखता ही है, सुन नहीं सकता। यह एक समय में दोनों काम नहीं कर सकता। यह प्रत्येक मनुष्य का नित्य का अनुभव है। जब आपका मन किसी रोचक पुस्तक में लगा होता है, तो यदि कोई जोर से चिल्लाये भी तो आप नहीं सुन सकते; क्योंकि मन कान के साथ नहीं होगा। "मेरा मन अन्यत्र था, इसलिए मैंने नहीं देखा: मेरा मन अन्यत्र था, इसलिए मैंने नहीं सुना, क्योंकि मनुष्य अपने मन के द्वारा ही देखता है और अपने मन के द्वारा ही सुनता है" (बृहदारण्यकोपनिषद् : १-५-३)। जब आप किसी विषय

पर बड़ा गम्भीर विचार कर रहे हों तो आप न देख सकते हैं, न सुन सकते हैं और न अनुभव कर सकते हैं। सारी इन्द्रियाँ मन से वियुक्त होती हैं। उस समय चित्त के द्वारा अनुसन्धान की क्रिया चल रही होती है।

अच्छे-अच्छे दार्शनिक और ऋषि तथा मुनि प्राच्य तथा पाश्चात्य जगत् के श्रेष्ठ विशेषज्ञ 'एकल विचार' के सिद्धान्त को ठीक मानते हैं। वे इस बात पर एक स्वर से सहमत हैं कि वास्तव में मन एक समय में एक वस्तु से अधिक की ओर ध्यान नहीं दे सकता। परन्तु जिस काल में वह ऐसा करता हुआ प्रतीत होता है, वह असामान्य तीव्र गति से एक सिरे से दूसरे सिरे तक आगे-पीछे दौड़ता रहता है। निरक्षर लोग कहते हैं कि वे एक-साथ ही सुन भी सकते हैं और देख भी सकते हैं। मन बड़ी तीव्र गति से दोनों ओर दौड़ता है और लोग समझते हैं कि मन दोनों काम एक-साथ कर सकता है। यह भारी भूल है। अग्नि की चिनगारी को यदि जल्दी-जल्दी घुमाया जाये तो वह अग्नि चक्राकार होने लगती है। इसी प्रकार यद्यपि मन एक समय में एक ही कार्य कर सकता है—सुनना, देखना, सूँघना और एक समय में एक ही प्रकार का संवेदन ग्रहण कर सकता है; क्योंकि यह एक वस्तु से दूसरी वस्तु पर इतनी शीघ्रता से जाता है कि इसकी क्रमशः की हुई अनेक क्रियाएँ एक ही अबाधित क्रिया प्रतीत होती है और हमें यह विश्वास हो जाता है कि मन एक ही साथ कई-कई कार्य करता है।

इन्द्रिय-संवेदन में प्रतिपूरक सुविधा

कुछ मनुष्यों में चक्षु की अपेक्षा श्रोत्रेन्द्रिय विशेष विकसित होती है। न्यायाधीशों की श्रोत्रेन्द्रिय तीव्र होती है। प्रधान सेनापतियों की दृष्टि तीव्र होती है। अपने-अपने कार्य के अनुसार मनुष्य इन्द्रिय-विशेष को विकसित करने को बाध्य हो जाता है। अन्धों की श्रवण-शक्ति तीव्र होती है। यदि एक इन्द्रिय-शक्ति न हो तो प्रकृति उसकी पूर्ति किसी अन्य इन्द्रिय को अधिक विकसित करके कर देती है। मेरा एक मित्र एक ऐसे अन्धे मनुष्य को जानता है जो स्पर्श मात्र से रंग बता सकता है।

वाणी भी पुरुष की दृष्टि ही है। यहाँ वाणी से आशय श्रोत्रेन्द्रिय के विषय शब्द का है। जब यह इन्द्रिय जाग्रत होती है तो मन पर इसका प्रतिबिम्ब पड़ता है। मन के ही द्वारा बाह्य विषयों को ग्रहण करने का प्रयत्न होता है; क्योंकि मनुष्य मन के द्वारा ही देखता और सुनता है। जब रात्रि में किसी समय मनुष्य निश्चय नहीं कर सकता कि शब्द कहाँ हो रहा है (चाहे वह शब्द घोड़े की हिनहिनाहट, गधे का रेंकना या कुत्ते का भौंकना हो) वह उसी ओर जाता है जिधर से शब्द आ रहा होता है।

अतीन्द्रिय ज्ञान

वास्तव में मन ही देखता, चखता, सूंघता और स्पर्श करता है। जब आप भगवान् कृष्ण के चित्र का ध्यान करना प्रारम्भ करते हैं, तब नेत्र तो बन्द रहते हैं; किन्तु आप मन के नेत्रों से चित्र को देखते हैं।

तान्त्रिक अपने स्थूल चक्षुओं से काम नहीं लेता और सीधे मन के द्वारा देख सकता है। ईश्वर से अभिन्न हुआ भक्त उसे कारण शरीर की दिव्य दृष्टि द्वारा देखता है। ज्ञानी ज्ञान चक्षु अथवा दिव्य दृष्टि द्वारा देखता है।

ब्रह्म के अवलोकन की विधि

मन में दृष्टि और इच्छा पृथक्-पृथक् हैं। शुद्ध चित्त में दृष्टि और इच्छा अभिन्न हैं। और मन की तरह एक-दूसरे से पृथक्-पृथक् नहीं हैं।

ब्रह्म को अनुभव करने, सोचने तथा तर्क करने के लिए अन्तःकरण की भी आवश्यकता नहीं है। ब्रह्म को देखने के लिए आँख की आवश्यकता नहीं है। वह स्वयं ज्योति है। वह सबको प्रकाश प्रदान करता है। वह अन्तःकरण को

प्रकाश प्रदान करता है। वह इन्द्रियों को प्रकाश और शक्ति देता है। वह चित्स्वरूप है, चिधन है, ज्ञान का भण्डार है। वह आत्मज्ञान द्वारा प्रत्येक विषय को जानता है। वह अपने अन्दर ही आत्मज्ञान द्वारा सारे संसार को अपने संकल्प से विवर्त रूप में देखता है।

ब्रह्म-दर्शन की विधि

ब्रह्म कोई पदार्थ या विषय नहीं है जिसे देखा जा सके। उसका अनुभव तो साक्षात्कार से ही हो सकता है। ब्रह्मज्ञान आध्यात्मिक अनुभव अथवा आत्म-साक्षात्कार द्वारा होता है जिसमें द्रष्टा, दृश्य और दृष्टि एक ही सत्ता में लीन हो जाते हैं—जैसे समुद्र में बुदबुद ।

परिच्छेद- १३

चित्त और स्मृति

चित्त क्या है ?

चित्त को मानस- द्रव्य कहते हैं। यह पहली मंजिल के समान है। इससे मन, बुद्धि और अहंकार उत्पन्न होते हैं। यह (चित्त) महर्षि पतंजलि के राजयोग का शब्द है। गीता में भी भगवान् कृष्ण ने 'चित्त' का प्रयोग कई स्थलों पर किया है।

वेदान्त में चित्त एक भिन्न मनःशक्ति या प्रवर्ग है । कभी-कभी यह मन के ही अन्तर्गत आता है। सांख्य-दर्शन में यह बुद्धि या महत् तत्त्व के ही अन्तर्गत है। पतंजलि ऋषि के राजयोग का 'चित्त' (योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः) वेदान्त के 'अन्तःकरण' के सदृश है।

वेदान्त की परिभाषा में अवचेतन मन को चित्त कहते हैं। आपके अवचेतन मन का अधिकांश अन्तस्तल में छिपे हुए अनुभवों और पृष्ठभूमि में डाली हुई उन स्मृतियों का बना हुआ होता है जो फिर प्राप्त हो सकती हैं। चित्त एक शान्त सरोवर है। इसके ऊपर वृत्तियों की लहरें उठती हैं। नाम और रूप के कारण ही ये वृत्ति-रूपी लहरें उठती हैं। नाम और रूप के बिना कोई लहर नहीं उठ सकती।

स्मृति या स्मरण, धारणा और अनुसन्धान चित्त के कार्य हैं। जब आप किसी मन्त्र का जप करते हैं तो चित्त स्मरण करता है। यह बहुत-सा कार्य करता है। यह मन या बुद्धि से भी अच्छा और अधिक कार्य करता है।

अवचेतन मन की प्रक्रिया का क्षेत्र

मानसिक प्रक्रियाएँ चेतना के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं होतीं। अवचेतन मानसिक प्रक्रियाओं का क्षेत्र चेतन मानसिक प्रक्रियाओं से अधिक व्यापक होता है। अपनी क्रियाओं के अधिकांश को मन स्वयं नहीं जानता है। क्योंकि व्यक्ति को एक समय में एक ही वस्तु की चेतना हो सकती है; हमारे ज्ञान का एक अंश ही एक समय में हमारी चेतना के

सम्मुख आ सकता है। केवल दश प्रतिशत मानसिक क्रियाएँ चेतना के क्षेत्र में आती हैं और नब्बे प्रतिशत अवचेतन मन अथवा चित्त में होती रहती हैं। चित्त में से तैयार हुए सन्देश चेतन मन के तल पर अवचेतन मन के छदाद्वार से शीघ्र आ जाते हैं। हम ब समस्या सुलझाने को बैठते हैं और असफल रहते हैं। फिर उठ कर थोड़ी दूर घूम कर आते हैं और पुनः प्रयत्न करते हैं, फिर भी नहीं सुलझा पाते। अकस्मात् एक विचार का उदय होता है जिसके द्वारा हमारी समस्या सुलझ जाती है। अवचेतन मन इसके सुलझाने का कार्य बराबर कर रहा था।

रात्रि को गणित या रेखागणित का कोई प्रश्न निकालने में आप बारम्बार असफल रहते हैं। प्रातःकाल जब आप सो कर जागते हैं, तो उस प्रश्न का उत्तर ठीक-ठीक मिल जाता है। यह उत्तर आपके अवचेतन मन से विद्युत्प्रकाश के समान प्राप्त होता है। निद्रा में भी आपका अवचेतन मन अविराम कार्य करता रहता है। यह सारे तथ्यों को व्यवस्थित करता, उनका वर्गीकरण करता, उनकी तुलना करता तथा उन्हें छाँटता है और उपयुक्त तथा सन्तोषजनक उत्तर निकाल देता है।

कभी-कभी आप रात्रि के दश बजे इस विचार से सोते हैं कि गाड़ी पकड़ने के लिए मुझे प्रातः दो बजे अवश्य जागना है। आपका चित्त यह सन्देश ग्रहण कर लेता है और ठीक दो बजे निश्चय ही आपको जगा देता है। यह अवचेतन मन आपका सच्चा मित्र और निरन्तर विश्वसनीय सहचर है।

इस अवचेतन मन की सहायता से आप अपने दूषित स्वभाव को बदल सकते हैं। और उन सद्गुणों की स्थापना कर सकते हैं जो प्रत्येक मानव हृदय में रहते हैं। यदि आप - भय से मुक्त होना चाहते हैं, तो अपने मन से भय का निषेध कर दें और उसके विरोधी सद्गुण – साहस की मानसिक धारणा करें जब साहस की वृद्धि होती है तो भय स्वयं ही दूर हो जाता है। धनात्मक सदा ऋणात्मक को पराजित करता है। यह प्रकृति का अचूक नियम है। इसे राजयोगी प्रतिपक्ष भावना कहते हैं। इसी प्रकार अरुचिकर कार्यों तथा कर्तव्यों के लिए भी आप रुचि उत्पन्न कर सकते हैं। आप नये स्वभाव, नये आदर्श, नये विचार, नयी रुचियाँ और नये आचरण चित्त में बना सकते हैं और पुरानों को बदल सकते हैं।

स्मृति

स्मृति चित्त का कार्य है। स्मृति का प्रयोग दो अर्थों में हुआ करता है। जब हम कहते हैं कि महाशय जॉन की स्मरण शक्ति अच्छी है, तो हमारा तात्पर्य यह होता है कि महाशय जॉन के मन में अतीत के अनुभवों को संचित करने की अच्छी क्षमता है। कभी-कभी हम कहते हैं, "मुझे उस घटना का कुछ स्मरण नहीं है।" इसमें कुछ वर्ष पहले जो घटना हो चुकी है, उसको अपने मौलिक स्वरूप में चेतना के स्तर के ऊपर आप नहीं ला सकते हैं। यह एक स्मृति की क्रिया है। स्मृति से आपको नया ज्ञान प्राप्त नहीं होता। यह तो पुराने ज्ञान का ही अनुभव है।

यदि नया अनुभव हो तो स्मृति के द्वारा आप उसे पूर्ण रूप से दोबारा याद कर सकते हैं। साधारण स्मरण कार्य में एक सामयिक प्रतिनिधि (सहकारी) हुआ करता है। वैयक्तिक स्मृति में एक निर्दिष्ट प्रतिनिधि (सहकारी) होता है। जो किसी दूसरे के साथ कार्य करता है, वह सहकारी प्रतिनिधि कहलाता है। गणित विद्या में एक अज्ञात संख्या के पूर्व जो संख्या या अपूर्ण अंश बीजगणित में लगाया जाता है, वह भी सहकारी (Coefficient) कहलाता है।

स्मृति क्योंकर उदित होती है ?

मान लें कि अपने किसी मित्र से आपको एक सुन्दर पंखी मिली है। जब आप पंखी को काम में लाते हैं, तो यह कभी-कभी आपको उस मित्र का स्मरण दिलाती है। थोड़े समय तक आप उसका चिन्तन करते हैं। यह पंखी उद्बोधक या स्मृति-हेतु का काम करती है।

यदि आपका भाई लम्बा है, तो दूसरे स्थान पर इसी प्रकार के दूसरे लम्बे मनुष्य को देख कर आपको अपने भाई का स्मरण हो जाता है। इस स्मृति का कारण पदार्थों का सादृश्य है।

मान लीजिए, आपने मद्रास में एक वामन को देखा है। जब आप किसी बहुत लम्बे मनुष्य को देखते हैं, तो आपको उस वामन की याद आती है जिसे आपने मद्रास में देखा था। किसी बड़े राजमहल को देख कर किसान की झोंपड़ी या गंगा के किनारे किसी संन्यासी की पर्णकुटीर याद आती है। यह स्मृति पदार्थों की विपरीतता के कारण होती है।

जब किसी दिन आँधी चली हो और आप सड़क पर जाते समय किसी उखड़े हुए वृक्ष को देखते हैं, तो आप निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि वृक्ष आँधी के कारण गिरा है। यह स्मृति कार्य-कारण-सम्बन्ध द्वारा हुई है।

नये संस्कार पुराने संस्कारों को बहा देते हैं। यदि संस्कार नवीन तथा सद्यस्क हों, तो उन्हें स्मरण करना सुगम होता है। वे शीघ्र ही अन्तर्मन की गहराई से सचेत मन के ऊपर पुनः आ जाते हैं। पुराने संस्कारों का नव-जागरण होता है। यदि राजकीय पदाधिकारी बन जाने के दश वर्ष पश्चात् आप एक बार उस विद्यालय में जायें, जहाँ से आपने शिक्षा प्राप्त की थी, तो आपके विद्यार्थी जीवन के पूर्व-संस्कार फिर सजीव हो जायेंगे। अब अपने भूतपूर्व अध्यापकों, मित्रों, पुस्तकों और अन्य अनेक वस्तुओं का स्मरण करेंगे।

अच्छी स्मृति के लक्षण

अच्छी स्मृति के ये चार लक्षण है: यदि आप किसी पुस्तक का कोई परिच्छेद एक बार पढ़ें और उसको भली प्रकार दोहरा सकें, तो यह इस बात का सूचक है कि आपकी स्मृति बहुत अच्छी है। यह 'सुगमता' कहलाती है। यदि आप उसी विषय को बिना घटाये-बढ़ाये, बिना संयोजक-वियोजन दोहरा सकें, तो यह 'अवैकल्य' कहलाती है। यदि आप किसी बात को या किसी परिच्छेद को दीर्घ काल तक स्मरण रख सकते हैं, तो यह 'धारणा' कहलाती है। यदि आप आवश्यकता पड़ने पर तत्काल किसी परिच्छेद को बिना किसी कठिनाई के दोहरा सकें, तो यह 'उपाहरण' कहलाता है।

अनुस्मरण की प्रक्रिया

जब आप किसी बात को स्मरण करना चाहते हैं, तो आपको मानसिक प्रयत्न करना पड़ता है। आपको अन्तःकरण के विभिन्न स्तरों की गहराई में नीचे-ऊपर जाना पड़ता है और विभिन्न प्रकार की असंगत वस्तुओं के विचित्र मिश्रण में से ठीक अभीप्सित वस्तु का चयन करना होता है। जैसे रेलगाड़ी की डाक छाँटने वाला बाबू पत्रों के खाने में नीचे-ऊपर हाथ हिला कर ठीक इच्छित पत्र को निकाल लेता है, इसी प्रकार यह अन्तःकरण भी अपने भिन्न-भिन्न कोष्ठकों में से इच्छित वस्तु को निकाल कर सामान्य चेतना के स्तर पर ले आता है। अन्त:करण भिन्न-भिन्न पदार्थों के ढेर में से ठीक इच्छित वस्तु को निकाल सकता है।

एक बड़े शल्य-कर्म-चिकित्सालय में सहायक शल्य-चिकित्सक एक समय में एक ही रोगी को वरिष्ठ शल्य-चिकित्सक के परामर्श-कक्ष में परीक्षा के लिए भेजता है। इसी प्रकार मन भी मनोद्वार से एक विचार को ही मानसिक उद्योगशाला में परीक्षा करने देता है। अवचेतन मन स्मृति-कार्य के समय चेतन मन की देहली पर और सब वस्तुओं को दबा कर यथासमय उचित वस्तु ही लाता है। यह नियन्त्रक का कार्य करता है और केवल प्रासंगिक स्मृतियों को ही गुजरने देता है। यह कैसी आश्चर्यजनक यन्त्र-रचना है! इस द्विविध मन का संचालक कौन है? इसको किसने बनाया? वह कितना महान् व्यक्ति होगा! जब मैं उसका ध्यान करता हूँ, तो रोम खड़े हो जाते हैं। जब लिखता हूँ, तो लेखनी कम्पित हो जाती है। क्या और उसके साथ रहना नहीं चाहते? उसके सम्पर्क में रहना कितना बड़ा सम्मान (विशेषाधिकार) और हर्ष की बात है!

जब आप किसी बात को स्मरण करने का प्रयास करते हैं, तो कभी-कभी वह शीघ्र स्मरण नहीं आती। कुछ समय पश्चात् वह विस्मृत बात स्वयमेव चेतन मन में कौंध उठती है। इसका क्या कारण है? यह स्मृति लोप है। उस बात का संस्कार चित्त के भण्डार में नीचे दब गया है। छत-द्वार के द्वारा उसे चेतन मन के ऊपर लाने के लिए चित्त को कुछ अभ्यास करके विश्लेषण तथा छँटाई करनी पड़ती है। थोड़े से श्रम के अनन्तर पुराने संस्कारों की स्मृति होने लगती है और वह विस्मृत विचार अथवा नाम, जिसे कुछ समय पूर्व आप स्मरण करना चाहते थे, चेतन मन में अकस्मात् कौंध उठता है। मस्तिष्क में कुछ विचार संकुलता अवश्य रही होगी जिससे विस्मृत विषय, विचार अथवा व्यक्ति के स्मरण आने में बाधा हुई, ज्यों ही यह विचार संकुलता हट जाती है, तो विस्मृत विचार - चेतन मन के ऊपरी तल पर तैरने लगता है। जब मन शान्त होता है, तो स्मरण शक्ति तीव्र होती है।

स्मरण-शक्ति

जो लोग मानसिक काम अधिक करते हैं, ब्रह्मचर्य व्रत पालन नहीं करते और जिन्हें मानसिक व्यथा और चिन्ता अधिक सताती हैं, उनकी स्मरण शक्ति शीघ्र जाती रहती है। जब वृद्धावस्था के कारण आपमें स्मृति लोप होने लगता है, तो इसका पहला चिह्न यह है कि आपको मनुष्यों के नाम स्मरण करने में कठिनाई होती है। इसका कारण खोजने कहीं दूर नहीं जाना है। सारे नाम यादृच्छिक होते हैं। वे नाम-पत्र की भाँति होते हैं। नाम के साथ कोई साहचर्य नहीं होता। मन प्रायः साहचर्य रखता है; क्योंकि उससे स्मृति के अंक गहरे हो जाते हैं।

वृद्धावस्था में भी आप किन्हीं घटनाओं को याद रख सकते हैं; क्योंकि उनमें साहचर्य सम्बन्ध होते हैं। वृद्धावस्था में भी आप स्कूल और कालेज में पढ़े हुए कुछ अंशों को भली प्रकार स्मरण रखते हैं; परन्तु जो अंश आपने प्रभात में ही नया पढ़ा है, सन्ध्या समय में उसको याद रखने में आपको कठिनाई मालूम होती है। इसका कारण यह है कि मन ने अपनी धारणा शक्ति खो दी है। मस्तिष्क के कोशाणुओं का अपकर्ष हो चुका है।

बाल्यकाल में मन की धारणा शक्ति अच्छी होती है; परन्तु समझने की शक्ति नहीं - होती १६ वें १८ वें, २० वें वर्ष में समझने की शक्ति प्रकट हो जाती है। इस अवस्था में स्मरण-शक्ति भी अधिक होती है। ३० वर्ष की अवस्था में मन स्थिर हो जाता है। इससे कम अवस्था में मन में बड़ी चंचलता होती है। ३० वर्ष से कम अवस्था का मनुष्य स्वयं विचार कर निश्चय नहीं कर सकता। उसमें निर्णय शक्ति नहीं होती। ४५ वर्ष के बाद धारणा-शक्ति घटने लगती है। स्मरण शक्ति भी कम होती जाती है। जो कुछ उसने पहले सीखा है, उसे ही धारण कर सकता है। वह नये विज्ञान नहीं सीख सकता। ब्रह्मचर्य मनुष्य की धारणा-शक्ति और अन्य मानसिक शक्तियों के विकास में सहायता करता है।

परिच्छेद- १४

संस्कार

संस्कार क्या है ?

मन-रूपी समुद्र में वृत्ति उठती है, कुछ काल तक यह क्रिया करती है और तब यह सामान्य चेतना की देहली के नीचे बैठ जाती है। चेतना के उपरिस्तर से, जहाँ यह कुछ काल तक अभिभावी रही है, अवचेतन मन (चित्त) के क्षेत्र में गहरी उतर जाती है। वहाँ इसका शोधन-कार्य चालू रहता है और संस्कार बन जाती है। एक सचेत क्रिया चाहे वह संज्ञानात्मक, भावात्मक या क्रियात्मक हो, चेतना की देहली के ठीक नीचे सूक्ष्म और अव्यक्त रूप धारण कर लेती है। इसे संस्कार कहते हैं।

स्मृति-संस्कारों का नव-जागरण

अवचेतन मन या चित्त में संस्कार सन्निहित रहते हैं। अवचेतन मन दूसरे शब्दों में सुषुप्त चेतन मन भी कहलाता है। आत्मपरक मन, अवचेतन मन, सुषुप्त चेतन मन तथा चित्त पर्यायवाची शब्द हैं। इस अवचेतन मन का स्थान अनुमस्तिष्क या मस्तिष्क का पिछला भाग है। आप गत अनुभवों को अवचेतन मन में संस्कारों के भण्डार से स्मरण कर सकते हैं। भूतकाल का सूक्ष्मतम विवरण तक सुरक्षित रखा रहता है, उसमें से कभी भी किंचिन्मात्र भी लुप्त नहीं होता। जब सूक्ष्म संस्कार अवचेतन मन के ऊपर पुनः बड़ी वृत्ति के रूप में आ जाते हैं, पुरानी वृत्ति जब अवचेतन मन के उपरिस्तल पर फिर आ जाती है तो उसे स्मृति कहते हैं। संस्कार की सहायता के बिना स्मृति का आना सम्भव नहीं है।

संस्कार कैसे बनते हैं ?

इन्द्रिय-ज्ञान का अनुभव चित्त की गहराई में उतर जाता है और वहाँ संस्कार बन जाता है। जब मन को किसी वस्तु का अनुभव होता है तो उसी समय चित्त में उसका एक संस्कार पड़ जाता है। इस वर्तमान अनुभव और चित्त में

पड़ने वाले संस्कार के बीच में कुछ अन्तराल नहीं पड़ता। एक अनुभव-विशेष संस्कार-विशेष छोड़ता है। इस अनुभव की स्मृति उसी संस्कार से बनती है जो कि उस विशेष अनुभव से बना था।

जब आप सन्तरे को पहली बार देखते हैं और चखते हैं तो आपको सन्तरे का ज्ञान होता है। आप उसके स्वाद को जानते हैं। आप पदार्थ-रूप सन्तरे को जान लेते हैं। तुरन्त अवचेतन मन में उसका संस्कार बन जाता है। किसी समय भी यह संस्कार पदार्थ रूप सन्तरे और उसके ज्ञान की स्मृति बना सकता है। यद्यपि पदार्थ और ज्ञान-क्रिया में भेट किया जा सकता है, फिर भी ये अभिन्न रहते हैं।

विचार तथा संस्कार का कार्य-कारण-सम्बन्ध-चक्र

बाहरी आवेग के कारण विषय-पदार्थ मन में संस्कारों को जाग्रत कर देता है। इसलिए संकल्प उठता है। जब किसी पहले देखी हुई गौ का आप विचार करते हैं और आप मन में 'गौ' शब्द का उच्चारण करते हैं, तभी मन में गौ की मूर्ति आती है। तब विचार आकार लेता है। जैसे बीच से वृक्ष और फिर वृक्ष से बीज बनता है, उसी प्रकार संस्कार से संकल्प और संकल्प से संस्कार बनते हैं। बीज से वृक्ष होता है और वृक्ष में फिर बीज बनता है। यह कार्य-कारण का चक्र अथवा बीज-वृक्ष-न्याय कहलाता है। इसी प्रकार वृत्ति संस्कार को बनाती है और संस्कार फिर वृत्ति बनाता है। जैसे बीज- -वृक्ष के उदाहरण में उसी प्रकार यहाँ भी कार्य-कारण का चक्र चलता रहता है। आन्तरिक या बाह्य उद्बोधक शक्ति के बल से ये बीज-रूप संस्कार फिर फैल जाते हैं और आगे क्रियाओं को जन्म देते हैं। यह वृत्ति तथा संस्कार का चक्र अनादि है; परन्तु दिव्य ज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति होने से इसका अन्त हो जाता है। ये प्रकृति में लय हो जाते हैं। जीवन्मुक्त पर इनका प्रभाव नहीं पड़ता। निरन्तर समाधि के द्वारा इन संस्कारों को भून देना चाहिए। तभी आप जन्म और मृत्यु से मुक्त हो सकेंगे।

संस्कारों पर संयम

संस्कार को अवशिष्ट शक्ति भी कहते हैं। जब सारी वृत्तियाँ और विचार नष्ट हो जाते हैं, तो संस्कारों सहित मन शेष बचता है। यह सूक्ष्म मन कहलाता है। वेदान्त की शब्दावली में इसे अन्तःकरण मात्र कहते हैं।

सारे संस्कार एक-साथ मन में रहते हैं। धीरे-धीरे वृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं और मन में अपना अंक छोड़ जाती हैं। ये अंक संस्कार होते हैं। इन संस्कारों से स्मृति बनती है। यदि आपको योग-दृष्टि प्राप्त है तो आप मनुष्य की मानसिक उद्योगशाला में होने वाले आश्चर्यों को साफ-साफ देख सकते हैं—कैसे वृत्ति उठती है, कैसे शान्त होती है और कैसे संस्कार बनता है। आप आश्चर्यचकित रह जायेंगे। इन संस्कारों के ऊपर किया हुआ संयम अवशिष्ट शक्तियों का ज्ञान कराता है। योगी संस्कारों का अपरोक्ष ज्ञान प्राप्त करके पूर्व-जन्मों की अपरोक्ष चेतना पाता है। ऐसा ज्ञान विश्वविद्यालयों में कठिनाई से प्राप्त होता है। सत्पात्र साधकों को योगी ही ऐसा ज्ञान दे सकता है।

सद् तथा असद् संस्कार

शक्तियों की भाँति संस्कार भी एक-दूसरे की सहायता अथवा निरोध करते हैं। जब आप किसी मनुष्य को गम्भीर रोग से ग्रसित देखते हैं, तो आपके मन में दया का संचार हो जाता है, आपके पुराने दयामय कर्मों के सभी संस्कार परस्पर सम्मिलित हो जाते हैं तथा आपको रोगी की सहायता और सेवा करने को बाध्य कर देते हैं। इसी प्रकार, जब आप किसी मनुष्य को गम्भीर दुःखी तथा तंगहाल दशा में देखते हैं तो आपके पुण्य कर्मों के मारे संस्कार अवचेतन मन के ऊपर आ जाते हैं और आपको उसकी सहायता के लिए बाध्य कर देते हैं। आप अपनी सम्पत्ति में से उसे भी एक भाग देने लगते हैं।

जब किसी सद् कार्य का संस्कार उभरा हुआ हो तो उसका विसदृश संस्कार भी प्रकट हो सकता है और उसके पूर्वागत संस्कार भी पूर्णता में बाधक हो सकता है। यह सद् तथा असद् संस्कारों की टक्कर है।

जब आप अपना मन परमात्मा में स्थिर करने की चेष्टा करते हैं और पवित्रता की भावना करते हैं, ठीक उसी क्षण में सारे कुत्सित विचार और संस्कार आपके विरुद्ध लड़ने के लिए उग्रता तथा प्रतिशोध-भावना के साथ फूट पड़ते हैं। इसे संस्कारों का जमघट कहते हैं। अच्छे संस्कार भी आपकी सहायता और कुसंस्कारों को भगाने के लिए इकट्ठे हुआ करते हैं। श्री स्वामी अद्वैतानन्द जी के पिता चण्डी के बड़े भक्त थे। मृत्युकाल में वह अर्धचेतन-अवस्था में थे। युवावस्था में जितने चण्डी के स्तोत्र के श्लोक उन्होंने कण्ठस्थ किये थे, वह उन सबकी आवृत्ति करने लगे। यह आध्यात्मिक संस्कारों का जमघट है।

भूतपूर्व संस्कारों से प्रारब्ध बनता है

आपके जन्म-समय में मन कोरा कागज नहीं होता है। यह संस्कार का, प्रवृत्तियों, अभिरुचियों आदि का भण्डार होता है। बालक अपने संस्कारों सहित उत्पन्न होता है। उसके विगत अनुभव मानसिक और नैतिक वृत्तियों तथा शक्तियों में बदल जाते हैं। आनन्दयुक्त अथवा दुःखप्रद अनुभवों से मनुष्य सामग्री इकट्ठी करके मानसिक अथवा चारित्र्य की शक्तियाँ बनाता है। भौतिक अनुभव बौद्धिक शक्तियाँ बन जाते हैं। संसार से इन्द्रियों द्वारा जो रूप-रेखा अंकित होती है, उससे ही मन का उद्विकास होता है। सारे संसार का पूर्ण अनुभव प्राप्त करने के लिए इसे अनेक शरीर धारण करने पड़ेंगे। प्रत्येक मनुष्य अपने संस्कारों सहित जन्म लेता है और वे संस्कार चित्त में, जो प्रारब्ध का अधिष्ठान है, अन्तःस्थापित रखे अथवा अंकित रहते हैं। भौतिक जीवन में उसे और बहुत से संस्कार प्राप्त हो जाते हैं और ये पूर्व के भण्डारों से मिल कर आगामी संचित कर्म बन जाते हैं।

सारे संस्कार प्रच्छन्न कार्यकलाप के रूप में चित्त में निश्चेष्ट पड़े रहते हैं, न केवल इसी जन्म के, अपितु अनादि काल से सभी अनेक पूर्व-जन्मों के भी पशु-जीवन के संस्कार, देव-योनि के संस्कार, राजा के जीवन के, कृषक के जीवन के सारे संस्कार चित में छिपे पड़े रहते हैं। मनुष्य-जन्म में केवल उसी प्रकार के संस्कार क्रियाशील होते हैं जो उस जन्म के उपयुक्त होते हैं। अन्य प्रकार के संस्कार प्रच्छन्न और निष्क्रिय रहते हैं।

जैसे वर्ष-भर का खाता बन्द करके नये वर्ष का खाता खोलने वाला व्यापारी पिछले वर्ष की सारी रकमें नये खाते में नहीं लिखता, अपितु अन्त शेष ही लिखता है; इसी प्रकार जीवात्मा नये मस्तिष्क को अतीत जीवन के अनुभवों पर उसके निर्णय, जिस निष्कर्ष अथवा निर्णय पर वह पहुँचा है, उसे दे देता है। यही वह सामान है जो नये जीवन को मिलता है, यही मानसिक सामग्री नये मकान को मिलती है। यह वास्तविक स्मृति होती है।

कर्म

आपके पिछले कर्मों के अनुसार आपके शरीर और मन का झुकाव एक निश्चित विधि से कर्म करने की ओर होता है और आप यन्त्र के समान ठीक उसी झुकाव के अनुसार कार्य करते हैं। आप भूल से इन कर्मों का कर्तापन अपने ऊपर आरोपित कर लेते हैं और इस प्रकार मामला और भी बिगाड़ लेते आपके बहुत से काम न्यूनाधिक स्वभावत: ही होते रहते हैं।

यदि आप निष्काम भाव से कर्म करने में कठिनाई देखें तो सारे कार्य करते हुए केवल मोक्ष की ही इच्छा रखें।

स्वर्ग में मन के सारे भौतिक अनुभवों की छँटाई और विश्लेषण किया जाता है। सार भाग ग्रहण कर लिया जाता है। मानसिक जगत् ने जो सार-भाग निकाला है, उसके स्वरूप के अनुकूल ही नवीन मनोवृत्ति आदि के सहित जीव फिर भौतिक जगत् में जन्म लेता है।

जब आप कोई नाटक लिख रहे हैं, यदि निद्रा आती है तो आप लिखायी बन्द कर देते हैं और सोने चले जाते हैं। जब आप सो कर उठते हैं तो जहाँ से आपने पूर्व रात्रि में लिखना छोड़ा था, वहाँ से आगे लिखने लग जाते हैं। इसी प्रकार पूर्व जन्म की वासनाओं के अनुसार नये जन्म में भी आप वही कार्य जारी रखते हैं जिसे पूर्व जन्म में आपने अधूरा छोड़ा था।

आपका आगामी जीवन अधिकतर उन कर्मों के अधीन रहेगा जो आप इस जीवन में करेंगे। बहुत-सी ऐसी बातें हैं जो संसारी मनुष्य करते हैं और शायद उनसे उनको कुछ हानि नहीं होती; परन्तु आध्यात्मिक पथ के सच्चे साधक यदि वही बातें करने लगें तो निश्चय ही वे हानिकारक होंगे।

स्वभावतः सूक्ष्म विषयों के अध्ययन से दूसरे भौतिक जीवन का रूप ही बदल जाता है। इससे सूक्ष्म विचार-शक्ति बढ़ती है और जल्दी-जल्दी ऊपरी विचार द्वारा एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ पर कूद जाने की आदत से अगले जीवन में अत्यन्त अशान्त तथा कुव्यवस्थित मन मिलेगा।

संस्कारों की दासता की श्रृंखला

मन संस्कारों के द्वारा अपना आधिपत्य स्थापित करता है। संस्कारों से टिड्डी-दल की भाँति वासनाएँ प्रकट होती हैं, वासनाओं से इच्छाओं का प्रवाह चलता है और इच्छित पदार्थों के भोग से तृष्णा बढ़ती है। तृष्णा बड़ी प्रबल होती है। मन में, कारण शरीर में संस्कारों का स्थान है। मन में भोग की स्मृति उठती है। फिर मन पदार्थों का चिन्तन करता है। चिन्तन में माया का दृढ़ आसन है। अब आसक्ति आ जाती है। मन योजनाएँ और परियोजनाएँ बनाने लगता है। आप काम-वासनाओं से विचलित हो जाते हैं। आप उन पदार्थों को प्राप्त करने और भोगने का शरीर से प्रयत्न करते हैं। इस प्रयत्न में राग और द्वेष के कारण आप किसी पर अनुराग करते हैं और किसी से अरुचि करते हैं। आपको अपने पुण्य और पाप का फल भोगना ही पड़ेगा। अनादि काल से राग-द्वेष, पाप-पुण्य और सुख-दुःख-रूपी इन छह अरों वाला आवागमन का यह संसार-चक्र घूमता ही रहता है।

विचार तथा इच्छाएँ संस्कारों पर निर्भर करते हैं

आपकी इच्छाओं और विचारों का स्वरूप आपके संस्कारों के स्वरूप पर निर्भर करता है। यदि अच्छे संस्कार होंगे तो आपकी इच्छाएँ और विचार भी अच्छे होंगे। इसके विपरीत यदि आपके बुरे संस्कार होंगे तो आपकी इच्छाएँ और विचार भी बुरे होंगे। यदि आपने चालीस वर्ष की आयु तक भी दुष्कर्म किये हैं तो भी इसी क्षण से दान, जप, दम, स्वाध्याय, ध्यान, दरिद्र और रोगियों की सेवा, साधु-सेवा आदि सत्कर्म आरम्भ कर दें। और यह संस्कार आपको विशेष सत्कर्म करने की प्रेरणा करेंगे। इनसे सदिच्छाएँ और शुभ विचार प्रकट होंगे। भगवान् ने भगवद्गीता (९-३०) में कहा है-

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ।।

अर्थात् यदि कोई अतिशय दुराचारी मनुष्य भी अनन्य भाव से मेरी उपासना करता है तो उसको साधु ही समझना चाहिए; क्योंकि उसने सच्चा निश्चय कर लिया है।

कुसंस्कार ही वास्तविक शत्रु हैं

आपका वास्तविक शत्रु कौन है? आपके अपने ही बुरे संस्कार। अशुभ वासनाओं के स्थान में शुभ वासनाएँ प्रतिस्थापित करें। तब आप ईश्वर के समीप पहुँच सकते हैं। आपका मन बदल जायेगा, पुराने संस्कार मिट जायेंगे। आपके मन में अनेक प्रकार के असत् सुझाव और विचित्र अन्धविश्वास दृढ़ता से जमे हुए हैं। ये हानिकारक हैं। इनको उन्नत सुझावों और सद्विचार द्वारा धराशायी कर देना चाहिए। 'मैं शरीर हूँ,' 'मैं अमुक व्यक्ति हूँ', 'मैं ब्राह्मण हूँ', 'मैं धनवान् हूँ' इत्यादि सब असद् सुझाव और असद् संस्कार हैं। मन के अन्दर यह सुझाव दृढ़ता से भरें कि आप ब्रह्म हैं। आपकी पुरानी देहाध्यास की भावना प्रबल प्रयत्न से धीरे-धीरे लुप्त हो जायेगी।

यदि आप एक मिनट के लिए भी अपने सच्चे ब्रह्म-स्वभाव को भूल जायेंगे तो अज्ञान के पुराने संस्कार ऊपर आने और आपको दबा लेने की चेष्टा करेंगे। देखें, नारद ने ध्यान में स्थित होते हुए भी जब देव-कन्याओं को देखा तो उनका निश्चय डगमगाने लगा था। उनको तुरन्त काम-वासना का अनुभव हुआ। उनका वीर्य स्खलित हुआ। उन्होंने वीर्य को एक कुम्भ (घड़े में रखा और उसमें से कुम्भ मुनि के रूप में रानी चुडाला प्रकट हुई। इसलिए आपको बहुत सावधान रहना होगा। हर प्रकार के प्रलोभनों से; यथा—धन, नारी, यश आदि से; दूर रहें।

सुसंस्कारों की प्राप्ति की विधि

यदि आप अपना सारा समय आध्यात्मिक साधना में लगा देने में असमर्थ हैं तो इस जीवन में कम-से-कम आध्यात्मिक संस्कार बनाने की तो चेष्टा कर लें। नित्य ही थोड़ी देर के लिए - कम-से-कम प्रातः काल और सायंकाल आधे घण्टे के लिए अवश्य ही किसी प्रकार का ध्यान किया करें। ध्यान के लिए एक कमरा रखें। किसी मन्त्र का थोड़ा-सा जप किया करें। गीता का स्वाध्याय नियमपूर्वक किया करें। सत्संग करें। वर्ष में एक बार एक सप्ताह के लिए ऋषिकेश, नासिक, वाराणसी, हरिद्वार अथवा प्रयाग में रहने के लिए जाया करें। महात्माओं का दर्शन करें। ऐसा करने से आपको कुछ आध्यात्मिक संस्कार प्राप्त हो जायेंगे, जो नया सात्त्विक जीवन प्रारम्भ करने में उपयोगी प्रतीत होंगे। आपको उत्तम जन्म मिलेगा। आपके अगले जन्म में योग-साधना के लिए, अपने हृदय में निभृत दिव्यता का उद्घाटन करने के लिए उपयुक्त वातावरण प्राप्त होगा। ईश्वर अपनी कृपा द्वारा आपको आध्यात्मिक साधना के लिए सारी सुगमताएँ और अवसर प्रदान करेंगे। थोड़े से भी नियमपूर्वक योगाभ्यास और वेदान्तिक साधना के द्वारा आप अपनी मनोवृत्ति और पुराने कुसंस्कारों को बदल सकते हैं। आप कई आगामी जन्मों को अचानक समाप्त कर सकते हैं। तीन वर्ष के अभ्यास से आप जन्म-मरण के चंगुल से छुटकारा पा सकते हैं। आप अवश्य ही संन्यासी बनेंगे। इसी जन्म में, अभी ही क्यों नहीं बनते? अनावश्यक जन्मों के चक्र को और इनके अनुगामी क्लेशों को आप अचानक समाप्त क्यों नहीं कर देते हैं? आप कब तक इस संसार के विषयों के और इन्द्रियों के दास बने रहना चाहते हैं? अब जाग जायें। साधना करें और अमृतत्व प्राप्त कर लें। **"उद्धरेदात्मनात्मानम्"**— अपने ही द्वारा अपना (संसार-सागर से) उद्धार करना चाहिए (गीता : ६-५)।

नये अच्छे-अच्छे संस्कार नये स्व-स्व सुझावों से बनाये जा सकते हैं। कल्पना करें कि मस्तिष्क एक काष्ठफलक है और उसमें कीलें लगी हैं जो कि विचार, स्वभाव तथा नैसर्गिक प्रवृत्ति की प्रतीक हैं जिनसे कर्मों का निश्चय होता है। यदि आपको ज्ञात हो कि कोई विचार या स्वभाव बुरा है, कोई नैसर्गिक प्रवृत्ति बुरी है तो जैसे तख्ते में कोई बुरी कील लगी हो तो नयी कील ले कर, उसे बुरी कील के ऊपर रख कर बराबर हथोड़े की चोट लगाते रहने से बुरी कील थोड़ी-थोड़ी बाहर को निकलती रहेगी और नयी कील उतने ही परिमाण में अन्दर धँसती जायेगी और अन्त में बुरी कील बिलकुल निकल जायेगी। इसी प्रकार नया विचार, स्वभाव या नैसर्गिक प्रवृत्ति मन के सम्मुख प्रस्तुत करें और उसका थोड़ा-थोड़ा अभ्यास करते रहें। इस तरह करते रहने से कुछ समय में बुरे विचार और स्वभाव बिलकुल दूर हो जायेंगे। निःसन्देह इसके लिए दृढ़ प्रयत्न की आवश्यकता है। नये स्वस्थ सुझाओं को निरन्तर दोहराते रहने की

आवश्यकता है। आदत भी दूसरी प्रकृति होती है। परन्तु शुद्ध, अप्रतिरोध्य, निश्चित दृढ़ इच्छा-शक्ति अवश्य ही विजय प्राप्त कर लेगी।

जब आप ओंकार या 'अहं ब्रह्मास्मि' महावाक्य का उच्चारण करते हैं तो चित्त में एक संस्कार बनता है कि 'मैं ब्रह्म हूँ।' ओंकार का नित्य २१,६०० जप करने का उद्देश्य यह है कि यह संस्कार दृढ़ हो जाये।

संस्कार-नाश मोक्षदायक है

व्यक्ति का स्थूल शरीर भले ही मर जाये; परन्तु कर्मों के, भोगों के और विचारों के संस्कार मृत्यु के बाद भी मोक्ष-प्राप्ति तक उसका अनुसरण करते हैं। ये उपाधियाँ मृत्यु के पीछे उसके साथ-साथ रहती हैं। ये उपाधियाँ परिवर्तनशील हैं; क्योंकि व्यक्ति प्रत्येक मृत्यु के समय भिन्न-भिन्न प्रकार के संस्कार ले जाता है। अनेक जन्मों में आप भिन्न-भिन्न प्रकार के संस्कार बनाते हैं। जो निश्चित उपाधियाँ मृत्यु के बाद आपके साथ जाती हैं, वे हैं पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, पंच कर्मेन्द्रियाँ, पंच प्राण, अन्तःकरण चतुष्टय और कारण शरीर जो लिंग-शरीर का आधार होता है। संस्कारों का नाश या कारण-शरीर का नाश ही मोक्ष प्राप्त कराता है। यह ब्रह्म-ज्ञान-प्राप्ति कराता है। जब तक संस्कार बने रहेंगे तब तक आपको नये-नये जन्म लेने पड़ेंगे। जब तक ब्रह्म-ज्ञान-प्राप्ति द्वारा सारे संस्कार मिट नहीं जाते, विदग्ध नहीं हो जाते, तब तक आपको बारम्बार जन्म लेना पड़ेगा। जब संस्कार मिट जायेंगे तो ब्रह्म-ज्ञान स्वयं अपनी महिमा से विभासित हो उठेगा।

संस्कारों को नष्ट करना ही साधना है

साधक का लक्ष्य निर्बीज समाधि के द्वारा इन संस्कारों को जला देना या मिटा देना होता है। संस्कारों को मिटा देना ही साधना है। श्वास लेना, सुनना, देखना, स्पर्श करना, चखना, सूँघना—इन सबसे मन में संस्कार बनते हैं। संसार मन में आँखों, कानों, वाणी और पुराने संस्कारों के द्वारा प्रवेश करता है। यदि आप एकान्त में रहें तो आप प्रथमोक्त तीन द्वारों को बन्द कर सकते हैं। विचार के द्वारा आप चौथे द्वार, संस्कारों को भी बन्द कर सकते हैं। तभी ज्ञान का उदय होगा। ज्ञानी पुरुष में संस्कार नहीं होते। वे ज्ञान द्वारा जल जाते हैं। निस्सन्देह उसके अन्तःकरण में संस्कारों का बल रह जाता है; परन्तु उससे हानि नहीं हो सकती। वे ज्ञानी को बन्धन में नहीं डाल सकते।

परिच्छेद- १५

संकल्प

विचार-प्रक्रिया

ईश्वर में ही आध्यात्मिक जीवन है। यही हमें अनन्त से युक्त कर देता है। क्योंकि ब्रह्म स्वत: पूर्ण और परिपूर्ण है, इसलिए आपको ब्रह्म में सब कुछ मिल जाता है। आपकी सारी आवश्यकताएं और इच्छाएँ वहाँ तृप्त हो जाती हैं। दूसरी ओर भौतिक जीवन है; यह हमारा सम्बन्ध चारों ओर के संसार से करा देता है। इन दोनों से सम्बन्ध कराने वाला विचार है। यही दोनों के बीच खिलवाड़ करता है।

हमारे अन्दर शक्ति है जिससे हम अपनी पसन्द के अनुसार दिव्य प्रवाह के लिए अपना हृदय खोल या बन्द कर सकते हैं। यह सब मन की शक्ति से विचार-प्रक्रिया द्वारा होता है। यदि आप राजसी प्रकृति के हैं तो आप ईश्वर से बहुत दूर हैं, आपका हृदय ईश्व की ओर से बन्द है और यदि आपकी प्रकृति सात्त्विक है तो आपका हृदय ईश्वर के दिव्य प्रवाह के लिए खुला है।

पवित्र गंगा जी का उद्गम-स्थान गंगोत्तरी है और वे सदा गंगा-सागर की ओर बहती रहती हैं। इसी प्रकार विचार-धारा मन में जमे हुए संस्कारों के तल से प्रारम्भ होती हैं जहाँ वासनाएँ भरी रहती हैं और जाग्रत तथा स्वप्न अवस्था में निरन्तर पदार्थों की ओर बहती रहती है। जब पहिये बहुत गरम हो जाते हैं तो रेल के इंजन को भी आराम देने के लिए इंजन-घर में भेज दिया जाता है। परन्तु मन का यह रहस्यमय इंजन पल-भर भी आराम किये बिना बराबर काम किये जाता है। इस मन का विस्तार ही संकल्प है और अपनी नानात्व-शक्ति के द्वारा इस संकल्प-जगत् को जन्म देता है।

अज्ञानियों का मन विक्षेपयुक्त, चंचल और करोड़ों संकल्पों वाला होता है। उनके मग संकल्पों द्वारा डोलते रहते हैं। परन्तु ज्ञानी संकल्पों से मुक्त होते हैं। वे सदा आत्मज्ञान में स्थित होते हैं जो सर्वोच्च तृप्ति और परम शान्ति देता है।

संसार केवल संकल्प है

जब संकल्प अति-वेग से बढ़ने लगता है तो कभी भी लाभदायक नहीं होता, प्रत्युत् इससे हानि ही होती है। संकल्प बन्धन का कारण है। जो कुछ संकल्प और वासनाएँ आप बनाते हैं, वे सब ही आपको जाल में फँसाते जाते हैं। जैसे रेशम कीट स्व-निर्मित कृमिकोश में फँस जाता है, वैसे ही आप स्व-रचित संकल्पों और वासनाओं के द्वारा बन्धनग्रस्त हो जाते हैं। संकल्प ही दुःख है और इसका अभाव ब्रह्मानन्द है। संकल्प ही संसार है और इसका विनाश मोक्ष है।

मन का संकल्प ही सारे स्थावर और जंगम जीवों के सहित सारे संसार का उद्भव करता है। महामाया की भ्रान्ति का यह विषैला वृक्ष संसार के भिन्न-भिन्न विषय-भोगों की भूमि में मन के विकारों के बीज से अधिकाधिक फलता-फूलता है, संकल्पों से पूर्ण होता है।

माया एक बड़ा विषैला वृक्ष है। माया-भ्रम के इस वृक्ष को तृष्णाएँ और वासनाएँ सींचती हैं। कर्म इसके फल हैं। कामवासना, क्रोध, लोभादि इसकी कोंपलें हैं। सत्त्व, रज और तम कलियाँ हैं। इन्द्रियाँ टहनियाँ हैं। अहंकार इसका तना है। राग और द्वेष इसकी दो मुख्य शाखाएँ हैं। उनके विषय पदार्थ इसकी पत्तियाँ हैं।

जैसे सर्वगत आकाश का रूप नहीं है, वैसे ही यद्यपि व्यक्तिगत मन की, जो अविद्या से पूर्ण और व्यापक है, स्थिति नाम के लिए है तथापि इसका बाहरी या आन्तरिक कोई रूप नहीं है। सारे पदार्थों से भासमान सत्यता का विकास ही मन है। जहाँ भी संकल्प है वहाँ मन का अस्तित्व है।

इस संसार का उद्भव और विलय (जो चेतना के विकार के सिवाय और कुछ नहीं है) मन के संकल्पों के उद्भव और क्षय के साथ-साथ होता है। संकल्पों और विकल्पों का त्याग कर देने पर ही मन के द्वारा ब्रह्म-साक्षात्कार हो

सकता है। आपको संकल्पों का यथासम्भव पूर्ण उन्मूलन करना चाहिए। यह संकल्प-नाश की साधना बुद्धिमत्तापूर्वक करनी चाहिए।

संकल्प-नाश से ही मोक्ष होता है

चाहे आप कोटि-कोटि वर्षों तक तप करते रहें, चाहे आप एक ही समय में तीनों लोकों की यात्रा करने में समर्थ हो जायें; परन्तु संकल्प-नाश के सुनिश्चित पथ का अनुसरण किये बिना आप निर्विकार मोक्ष को प्राप्त करने में कदापि सक्षम नहीं हो सकते। इसलिए संकल्प के विनाश का प्रयत्न करें और इससे सारे दुःख और विषमता से रहित ब्रह्मानन्द की प्राप्ति कर लें।

अपुनर्जन्य संकल्प-क्षय ही निर्दोष ब्राह्मी-स्थिति है। तो फिर मौन हो कर गुप्त रूप से अपने हृदय में संकल्पों के नाश का विचार क्यों नहीं बनाते ? जिन्होंने संकल्पों का विनाश कर दिया है, उन्हें चक्रवर्ती सम्राट् का राजसिंहासन भी तुच्छ खिलौना-सा प्रतीत होगा।

संकल्प, विकल्प और द्वैत-भावना से रहित हो जायें। अपने को बिलकुल संकल्प- रहित बना दें और निर्विकल्प बन जायें। यही ब्रह्म-निष्ठा या अद्वैत-निष्ठा है। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए कठोर प्रयत्न करें। तब आप पूर्ण शान्ति और आनन्द में रहेंगे।

मन का स्वभाव

मन संसारी पदार्थों का ध्यान सरलता से कर सकता है। यह इसका स्वभाव है। साधारणतया विचार पदार्थों की ओर सुगमता से जाते हैं। मानसिक शक्ति इस ओर सहज ही प्रवाहित होती है। यह सांसारिक विचारों की प्राचीन बीथियों या लीकों में सरलता से प्रवाहित होती है। ईश्वर का ध्यान करना इसे अत्यधिक कठिन लगता है। संसारी व्यावहारिक मन के लिए यह उतना ही कठिन है जितना पहाड़ी पर चढ़ना। मन को पदार्थों की ओर से हटा कर ईश्वर की ओर ले जाना वैसा ही कठिन है, जैसे गंगा के सहज प्रवाह को गंगा सागर की ओर से रोक कर बदरीनारायण की ओर जाना या यमुना के प्रवाह के प्रतिकूल नाव चलाना तो भी यदि आप जन्म मरण से मुक्त होना चाहते हैं तो मन को इच्छा के विरुद्ध भी अनवरत प्रयत्न और त्याग के द्वारा ईश्वर की ओर चलने के लिए साधना चाहिए। यदि संसार के क्लेशों और विपत्तियों से छुटकारा पाना चाहते हैं तो इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है।

संकल्प-नाश कैसे करें ?

संकल्प के धब्बे या बादल को विवेक और सतत प्रयत्न की शक्ति से छिन्न करके आत्म-प्रकाश सहित ब्रह्मानन्द-सागर में निमन हो जायें। जब आप अपनी छाया पर मिट्टी डाल कर उसे दबाना चाहते हैं तो छाया सदा ऊपर ही रहती है। इसी प्रकार जब आप संकल्पों को विवेक-वृत्ति से नष्ट करने का यत्न करते हैं तो वे बार-बार प्रकट हो जाते हैं। मन को वस्तुओं की ओर से हटा लें और अपने गुरु के उपदेशों के अनुसार चलें। मन को शुद्ध करके चिदाकाश में स्थिर करें। संयम पा कर मन का क्षय हो जायेगा; इसमें सन्देह नहीं है।

सांसारिक पदार्थों का क्षणमात्र के लिए भी ध्यान न करें। संकल्प से छुटकारा पाने के लिए बहुत प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं है। विचारों का निग्रह करने से मन का नाश हो जायेगा। एक पूर्ण विकसित पुष्प को अपने हाथ से मसल डालने में तो कुछ प्रयत्न लगता भी है; परन्तु संकल्प का क्षय करने के लिए उतने भी प्रयत्न की आवश्यकता नहीं। विचारों के संयम से संकल्प का नाश हो जाता है। आन्तरिक संकल्प के द्वारा बाह्य संकल्पों को टूढ़ता से क्षय करके और शुद्ध मन के द्वारा अशुद्ध मन का नाश कर आत्मज्ञान में दृढ़तापूर्वक स्थित हो जायें।

जब संसार की असारता का विचार आपके अन्दर दृढ़ता से जम जायेगा तो नम और रूप द्वारा जनित विक्षेप और संकल्प की स्फुरणा भी धीरे-धीरे लुप्तप्राय हो जायेगी। निरन्तर कहते रहें, **"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर:** अर्थात् केवल ब्रह्म ही सत्य है, संसार असत्य है और जीव ब्रह्म से अभिन्न है। इसका उच्चारण करते रहने से आपको अत्यधिक मानसिक शक्ति तथा शान्ति प्राप्त होगी।

अपने सम्मुख के दृश्य पदार्थों के लिए समस्त वासनाओं से अपने को मुक्त कर अपने मन में उठने वाले सारे संकल्पों का उन्मूलन कर दें। यह मन जो संकल्पों द्वारा उत्प होता है, इन्हीं संकल्पों द्वारा नष्ट हो जाता है जैसे अग्नि वायु द्वारा उद्दीप्त होती है और वायु द्वारा ही शमित भी होती है।

निःसंकल्पावस्था

नीच संकल्पों के मिटने के साथ-साथ अविद्या और उसका कार्य (मन) भी मिट जाता है। संकल्प दुःखमय है। निःसंकल्प परमानन्द है। एकान्त कमरे में अकेले बैठ जायें। नेत्र बन्द कर लें। मन को देखें और निरन्तर तथा दृढ़ प्रयत्न द्वारा एक-एक करके वृत्तियों को नष्ट कर दें। असम्प्रज्ञात समाधि हो जायेगी।

यदि दुःखजनक संकल्पों के विनाश के साथ-साथ मन का भी नाश कर दिया जाये तो मोह-रूपी घना कुहासा, जो आप पर अतीत काल से छाया हुआ है, स्वयं ही मिट जायेगा। फिर शरत्काल के निरभ्र आकाश के समान ज्योतिस्वरूप, आनन्दमय, अद्वितीय, निराकार, अजन्मा, अविनाशी ब्रह्म स्वयं प्रकाश करने लगेगा।

जब आपके विकीर्ण विचार एकत्र हो जायेंगे और आप शान्त हो कर विश्राम की अवस्था में रहेंगे तो नित्यानन्द-स्वरूप आत्मा उसी प्रकार प्रकाशित हो जायेगा जिस प्रकार निर्मल जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब चमकता है धन, स्त्री या भोजन में शान्ति नहीं है। जब मन वासना रहित हो जायेगा तो आत्मदेव प्रकाश करके नित्य सुख और शान्ति की वर्षा करेंगे। आप व्यर्थ ही बाह्य पदार्थों में आनन्द की खोज क्यों करते हैं? अपने अन्दर ही स्वानुभूतिमूलक सच्चिदानन्द अमृत आत्मा में सुख की खोज करें।

परिच्छेद- १६

विचार ही संसार की सृष्टि करता है

विचार ही प्रत्येक पदार्थ का स्रोत है

हमारे चतुर्दिक् के इस स्थूल जगत् की प्रत्येक वस्तु का उद्गम सबसे प्रथम विचार में हुआ। इससे उसका आकार बना। प्रत्येक राजमहल, मूर्ति, चित्र, यन्त्र का पुरजा इत्यादि पदार्थों ने पहले उसके निर्माता के मन में आकार लिया था और फिर वे इस स्थूल रूप में बनाये गये।

मन पर अनेक विषयों का पूर्वाधिकार होता है। जब चित्रकार कोई चित्र बनाने लगता है तो अपने मन में पूर्व-कल्पित किसी चित्र से ही सामग्री ले लेता है।

अन्ततः संसार एक विचार मात्र ही तो है। जैसे उपयुक्त समय और स्थान पर बीज का अंकुर फूटने लगता है, वैसे ही मन के संकल्प से द्रष्टा भी दृश्य रूप में दिखायी देने लगता है। जब मन सोचना बन्द कर देता है, संसार का लोप हो जाता है और अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता है। जब मन सोचना आरम्भ कर देता है तो संसार पुनः प्रकट हो जाता है और परिणाम दुःखमय होता है।

डेकार्टेस के सिद्धान्त का मौलिक आधार है कि मेरा अस्तित्व मेरे विचार के अनुकूल है। भगवान् शंकर के वचन इस सिद्धान्त के अनुकूल ही हैं कि आत्मा कभी भ्रममूलक नहीं हो सकता; क्योंकि जो आत्मा के अस्तित्व को नहीं मानता है, वह इसके इनकार करने में भी इसकी सत्ता को देखता है।

मन के द्वारा जगत् को देखा जा सकता है; परन्तु यह खेद का विषय है कि ऋषि-मुनियों के अतिरिक्त अन्य किसी ने मन को नहीं देखा। जब आप निरन्तर और गम्भीरतापूर्वक मनस्तत्त्व का विचार करेंगे, तो आपको ज्ञात होगा कि मन कुछ भी नहीं है। मन का विश्लेषण करने पर वह कुछ भी नहीं रह जाता। मन विचारों की पोटली है और 'मैं' सब विचारों का मूल है। यह अहंभाव एक मिथ्या भाव, असत्त्व है। जब सब विचारों का मूल अहंभाव ही कुछ नहीं है, तो फिर मन का अस्तित्व कहाँ रहा!

प्रथम विचार जो आपके मन में उठा, वह अहंभाव था। ब्रह्म में लय होने से पहले जो विचार मन में उठेगा, वह ब्रह्माकार-वृत्ति होगी, जो आपकी इस अनुभूति से पैदा हुई। है कि आप ब्रह्म हैं।

संसार वैश्व मन की सृष्टि है

संसार जीव की मानसिक कल्पना नहीं है। वैश्व मन (हिरण्यगर्भ) के एक संगति विचार ने भासमान जगत् का आकार लिया। यह संसार केवल ईश्वरेच्छा का फल है जो मन की क्रियाओं के द्वारा सच्चा सा प्रतीत होता है।

कोई नाटक लिखने से पहले आपके मन में सारे नाटक का सुस्पष्ट चित्र बना होता है। फिर आप इसको क्रमानुसार चार अंकों में लिखते हैं। जब यह नाटक दिखाया जाता है. तो इसके एक-एक भाग को क्रमशः खेला जाता है। इस प्रकार ईश्वर के मन में इस जगत् और इसकी गति-विधि का एक स्पष्ट चित्र रहता है। उसके लिए अतीतकाल या भविष्यकाल नहीं होता। उसके लिए तो सब कुछ वर्तमान ही है। उसके लिए निकट और - दूर कुछ नहीं है। सब-कुछ यहाँ ही है। समय की गति के अनुसार इस विशाल जगत्-रूपी रंगमच पर घटनाएँ क्रमिक रूप से आती रहती हैं। अणु निरन्तर चक्कर लगाते रहते हैं। नवी वस्तु पुरानी होती रहती है और पुरानी नयी हो जाती है। वस्तुतः पुरानी या एकल कोई वस्तु नहीं है। जीव अपने व्यष्टि मन के द्वारा घटनाओं को क्रमानुसार देखते हैं; परन्तु ईश्वर सारी घटनाओं को एक-साथ ही जानता है। वह सर्वज्ञ है। वह सर्वविद् भी है। वह अपनी सृष्टि के प्रत्येक विवरण को जानता है। विश्व-मन से माया उत्पन्न होती है। व्यष्टि-मनः वस्तुओं को इसी माया के भ्रम से ग्रहण करते हैं।

यह जगत् मन के विकार के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह ब्रह्म से, जो जगत् का कारण है, स्वयं ही बना है। यह समस्त विश्व, जो केवल मन द्वारा भासमान है, मन के विकार के अतिरिक्त कुछ नहीं है। आत्मनिष्ठ रूप में मन चैतन्य है और वस्तुगत रूप में यही यह संसार है। इसलिए यह सर्वव्यापी जगत् चैतन्य के सिवाय और कुछ नहीं है।" (जीव तथा जगत् अपनी अन्तर्जात अवस्था में ही ब्रह्म है)

ईश्वर और माया

सारे संस्कार माया में तैरते हैं। कल्पना करें कि एक बहुत बड़ा दर्पण है। आप उसमें बाजार में जाने वाले सारे मनुष्यों, ठेलों, गाड़ियों, मोटरों आदि के प्रतिबिम्ब देख सकते है। बिना किंचित् भी प्रभावित हुए आप दूर से दर्पण में इन गतियों को देखते रह सकते हैं। ऐसे ही संसार की सारी गतियाँ माया नामक सबसे बड़े दर्पण में होती हैं। संसार का स्वामी ईश्वर केवल प्रत्येक वस्तु को देखता रहता है। वह मूक साक्षी है। जब जीवों का अदृष्ट (कर्म भोग का पारब्ध) परिपक्व होता है तो ईश्वर केवल इच्छा करता है और संसार का प्रादुर्भाव हो जाता है।

मन के संकल्प में संसार की सत्यता स्थित है

अनिर्वचनीय ब्रह्म से सत्ता प्राप्त कर यह सर्वदा उत्तेजित मन अपने संकल्पों के अनुसार जगत् की रचना करता है। आपके मन के संकल्पों से ही इन्द्रजाल-रूपी संसार प्रकट होता है। आपके संकल्पों के कारण ही यह संसार अस्तित्ववान्-सा प्रतीत होता है और यदि आप इस संसार से परे सत्-ब्रह्म को प्राप्त करना चाहते हैं तो आपको इन्हीं को देने का आदेश दिया जाता है। भगवद्गीता (६-४) में कहा है **"सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते**--सर्व संकल्पों का त्यागी व्यक्ति योगारूढ़ कहा जाता है।

छोटे से संकल्प की वृद्धि के साथ ही जगत् पैदा हो जाता है और संकल्प-क्षय हो जाने पर भी दृष्टि से ओझल हो जाता है। संकल्पों के नष्ट हो जाने से द्रष्टा और दृश्य के भेद के सारे भाव दूर हो जाते हैं और फिर ब्रह्म की सत्यता अबाध गति से प्रकाशित होने लगती है। फिर सचराचर संसार की छाया अद्वैत रूप से इसी में लीन हुई मिलती है।

अहंभावना के साथ ही सांसारिक विचारों का समूह आरम्भ हो जाता है अहंभावना के नहीं रहने से सारा संसार उसी क्षण इसी प्रकार जाता रहता है जैसे सूर्य के आने पर अन्धकार दूर हो जाता है। 'मैं' और मन एक हैं। मैं को नष्ट कर दीजिए तो मन भी नष्ट हो जायेगा।

योगवासिष्ठ में कहा है- **"मनः कल्पितं जगत्"** अर्थात् यह जगत् मन की कल्पना है। यह संसार की जादूगरी का खेल केवल मन ही तो बनाता है- **"मनोमात्रं जगत्।"** जिसे आप जगत् कहते हैं, वह केवल मन ही है। मन संसार है। यह संसार मन के सिवाय और कुछ नहीं है। जैसे स्वप्न में ही दूसरा स्वप्न बन जाता है, इसी प्रकार यह सूक्ष्म मन

अदृश्य पदार्थ भी बनाता रहता है। मन की सत्ता के साथ-साथ ही यह नाशवान् संसार में रहता है; मन के क्षीण हो जाने से यह भी अदृश्य हो जाता है। यदि ज्ञान, दर्शन और क्रिया का कारणभूत मन लोप हो जाये तो उसके साथ ही साथ यह विषय जगत् भी लय हो जाता है।

प्रत्येक शब्द के लिए एक पदार्थ और एक अर्थ होता है। गौ शब्द के लिए भी एक अर्थ और एक पदार्थ है। माया आपको शब्दजाल के द्वारा धोखा दे रही है। सारा संसार भाव मात्र है। यह संकल्प मात्र, भ्रान्ति-मात्र है। यह कल्पना मात्र है, आकाश मात्र है। इसकी स्थिति केवल नाम मात्र है। **"वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्ये सत्यम्"** अर्थात् विकार केवल वाणी के आश्रयभूत नाम मात्र है, सत्य तो केवल मृत्तिका ही है (छा. उ. ६-१-४)। सारा संसार पंचभूतों का बना हुआ है। विश्लेषण करें, सभी पदार्थों की भ्रम-मूलक दशा जान लें और सारे मिथ्या पदार्थों को त्याग दें। जब आप विश्लेषण करना प्रारम्भ करेंगे तो सारा संसार लोप हो जायेगा और इसके साथ-साथ शब्द भाव और पदार्थों का भी लोप हो जायेगा।

जगत् में जितना हर्ष-शोक का अनुभव होता है, वह मन की क्रिया से ही होता है। सारे दुःख और सुख-समूह मन के द्वारा ही उत्पन्न होते हैं। इसलिए यदि शुद्ध विवेक और आध्यात्मिक साधना के द्वारा मन का नाश कर दिया जाये, तो सुख-दुःख का भी नाश हो जायेगा। मन के सुख और दुःख के लिए ही त्रिलोकी की रचना होती है। मन की क्रिया रोक देने से तीनों लोक और उनके दुःख सब लोप हो जाते हैं। मन के विनाश के साथ ही त्रिकाल का सर्वथा लोप हो जाता है। मन के निग्रह से सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। यदि मन का निग्रह नहीं हो, तो सब-कुछ दुःखमय और व्यर्थ हो जाता है। इसलिए मन का नाश कर देना चाहिए।

मन तीन प्रवर्गों की सीमा में कार्य करता है

मन सर्वदा देश, काल और कारण इन्हीं तीनों प्रवर्गों के अन्दर काम करता है। ये तीनों प्रवर्ग मन के बनाये हुए पदार्थ हैं। वस्तुतः नारियल का पेड़ बीस फुट ऊँचा नहीं है। ऊँचाई तो मन की बनाई हुई व्याख्या है बाहर तो केवल स्पन्द मात्र है। यह मन ही लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, मोटाई, विस्तार, चौकोर, शून्य आदि बनाता रहता है। दो मील की दूरी आभास मात्र ही है। आप वास्तव में यह अनुभव करते हैं कि आपने इतनी दूरी तय की है। जब आप मन से ऊपर पहुँच जाते हैं, तो ये प्रवर्ग बिलकुल लुप्त हो जाते हैं। इसलिए ब्रह्म-विचार के द्वारा मन को कुचल दें। तब आप शान्ति, आनन्द और परम कारण-रूप प्रदेश में पहुँच जायेंगे जो शाश्वत, असीम तथा परम कारण है।

संसार की उत्पत्ति क्यों और कैसे हुई—एक दुर्बोध प्रश्न

श्रीयुत् नारायण जो मेरा मित्र मेरे सम्मुख खड़ा है, वह मेरे अपने ही मन का कार्य है। यह संसार भी मेरे ही मन का कार्य है।

अभाव दर्शन का विषय कहा गया है; क्योंकि किसी पदार्थ का अभाव किसी दूसरे स्थान में उसकी सत्ता की सूचना देता है।

मायावाद के सिद्धान्त के अनुसार वास्तव में संसार है ही नहीं। यह केवल मानसिक कल्पना है। बौद्धमत में इसे विज्ञानवाद कहते हैं।

यथार्थवाद के अनुसार संसार एक यथार्थ सत्ता है। मध्वाचार्य का द्वैतवाद, कावशिवाद और महर्षि पतंजलि का राजयोग सब संसार को सत्य (जगत् सत्यम्) मानते हैं।

दार्शनिक काण्ट ने लिखा है कि देश, काल और कारण ये वस्तुनिष्ठ सत्ताएँ नहीं हूँ, बल्कि हमारी बुद्धि के आत्मगत रूपान्तर हैं। इसका सिद्धान्त यह है कि देश, काल और कारण से परिच्छिन्न यह संसार मन का ही विकास है, इसके सिवाय और कुछ भी नहीं है।

परिच्छिन्न मन जो स्थूल है और जो काल, देश और कारण कार्य के नियम में स्थित है, संसार के विषय में 'क्यों और कैसे' नहीं जान सकता। यह अतिप्रश्न है। इसका उत्तर किसी शास्त्र, ऋषि या आचार्य ने भी कभी नहीं दिया है। इस प्रश्न पर अपना मस्तिष्क न खपायें; क्योंकि इस समस्या का उत्तर आपको कभी नहीं मिल सकता। संसार की रचना ब्रह्म की मौज है। यह उसका लीला-विलास है। यह उसकी माया है। यह उसका स्वभाव है।

जगत् के अभाव से क्या तात्पर्य है

जगत् के अभाव या नाश का यह तात्पर्य नहीं है कि इसके पर्वत, सरोवर, वृक्ष और नदियाँ सबका नाश हो जाये जब संसार के मिथ्या होने का आपका निश्चय अधिकाधिक हो जाये और जब आपकी स्थिति इस विचार पर दृढ़ हो जाये कि यह संसार मृगतृष्णा के समान भ्रमपूर्ण है, तो यही जगत् का नाश कहलाता है।

आप पहाड़ को नहीं मिटा सकते; किन्तु पहाड़ के विचार को मिटा सकते हैं। यह संसार ऐसा ही है जैसे जाग्रत में स्वप्न होता है। दर्पण में जैसे प्रतिबिम्ब होता है। ऐसे ही मन रूपी दर्पण में यह संसार एक विशाल प्रतिबिम्ब है। मन एक बड़ी चद्दर के समान है जिसमें भाँति-भाँति के चित्र लगे हैं। न तो चित्रकार है न ही चित्रपट और न ही चित्रकारी की अन्य सामग्री यथा तूलिका, रंग-पात्र, तैल, चूर्ण आदि। निर्मल इन-प्रकाश पर संसार का चित्र खिंचा हुआ प्रतीत होता है।

चैतन्य से उठने वाली मन की क्रिया से यह संसार बनता है। मन माया है। माया ही मन है। मन की क्रियाएँ माया की ही क्रियाएँ हैं। रूप में मन की आसक्ति माया है। स्वयं अपने मन को मन से अभिन्न समझना माया है।

मन संसार के रूप में कैसे अभिव्यक्त होता है।

प्राण की गति से मन भी गतिशील होता है। मन की गति से संसार की रचना होती है। मन अपने को बाह्य जगत् के रूप में अभिव्यक्त करता है। माया की शक्तियों में से विक्षेप-शक्ति के द्वारा नाम और रूप प्रकट होते हैं। माया की विक्षेप-शक्ति जाग्रत और स्वप्न दोनों अवस्थाओं में कार्य करती है। इसी के कारण समस्त संसार विक्षेपित होता है। सुषुति में यह लोप हो जाता है।

संसार मन में नेत्रों, वाणी और पुराने संस्कारों द्वारा प्रवेश करता है। यदि आप एकान्त में रहें, तो आप इनमें से प्रथमोक्त तीन द्वारों को बन्द कर सकते हैं। विचार द्वारा आप संस्कारों को, जो चतुर्थ द्वार हैं, नष्ट कर सकते हैं। तब ज्ञानोदय होगा।

जैसे आपके भ्रमपूर्ण मन के द्वारा आकाश की नीलिमा प्रतीत होती है (जो वास्तव में कुछ भी नहीं है) उसी प्रकार अनेक भेदयुक्त सारे लोक यद्यपि वे आत्म-ज्ञान ही है, संसार की भाँति भासते हैं। केवल परब्रह्म की आत्म-ज्योति ही मन या बहुरंगी संसार के रूप में प्रकट होती है। मन प्रज्ञा शक्ति है और पदार्थ भूत-शक्ति तथा प्राण ब्रह्म की क्रिया-शक्ति है। प्रत्येक वस्तु ब्रह्म की है। वास्तव में जीव है ही नहीं। केवल ब्रह्म ही है।

जो मन सदा वासनाओं के साथ-साथ उभरता और गिरता रहता है, वह अपने अज्ञान के कारण इस भ्रमपूर्ण जगत् को सत्य मानता है; परन्तु इसको संसार का असली स्वरूप बता देना चाहिए, तभी यह अपना ब्रह्म रूप जान सकेगा।

परिच्छेद-१७

अविद्या और अहंकार

अविद्या

मन अविद्या की रचना है। यह अविद्या का कार्य है। यह भ्रम से पूर्ण है। इसलिए यह आपको लुभाता है और धोखा देता है। यह आपको पथभ्रष्ट कर देता है। यदि आप आत्म-ज्ञान के द्वारा मन के कारण रूप अज्ञान को नष्ट कर सके तो मन का अस्तित्व कहीं नहीं रहता। यह शून्य में लीन हो जाता है। जब ज्ञान का उदय होता है तो मनोनाश हो जाता है।

अविद्या उपाधियों द्वारा कार्य करती है। सारी विशेष सामग्रियाँ, जिनको अविद्या की अपेक्षा होती है, आत्मा की उपाधियों से बनी हैं। मन उपाधि है, बुद्धि उपाधि है और अहंकार भी उपाधि है।

अविद्या का स्थान मनुष्य के मन में होता है। अनुभवजनित आकार की व्याख्या हमारी संज्ञानात्मक शक्ति में ढूँढ़नी चाहिए। श्री शंकराचार्य अविद्या की व्याख्या इस प्रकार करते हैं। यह नैसर्गिक (स्वाभाविक) है। यह हमारी मानसिक शक्ति में निहित है। यह मिथ्या-ज्ञान-निमित्त है अर्थात् इसका कारण भ्रमात्मक-ज्ञान है और ज्ञान मन की एक क्रिया है। यह नित्य प्रत्ययरूप है। "समस्त जीव जिनका अस्तित्व वास्तव में है ही नहीं—अपने जन्म-मरण-रूप सहकारी आभासों के सहित मन की विषयनिष्ठता की प्रवृत्ति के परिणाम हैं, और कुछ नहीं हैं।"

द्रष्टा और दृश्य से रचित द्वैत का सारा अनुभव शुद्ध कल्पना मात्र है। मन से भिन्न अविद्या है ही नहीं। मन का नाश होने पर सब-कुछ नष्ट हो जाता है। मन की क्रिया सारी प्रतीति का कारण है। मन में अविद्या या भ्रान्ति होने के कारण आप वृक्षादि पदार्थों को बाहर देखते हैं और अनुभव करते हैं कि वे आपसे पृथक् हैं और सत्य पदार्थ हैं।

जब तक मन बना रहता है, तभी तक बड़े-छोटे, ऊँचे-नीचे, उत्तम और निकृष्ट, भले और बुरे का भेद रहता है। परमोच्च सत्य वही है जिसमें सापेक्षता नहीं है। यदि आप आत्मा पर निरन्तर और गम्भीर ध्यान (आत्म-विज्ञान) द्वारा मन को अतिक्रमण कर सकें तो आप निर्द्वन्द्व दशा को प्राप्त कर लेंगे। वहाँ परम शान्ति और सर्वोत्तम ज्ञान है।

मन के बाहर अविद्या कुछ भी नहीं है। स्वयं मन ही अविद्या है। कल्पनाएँ और संकल्प अविद्या के कार्य हैं। अविद्या मन में सन्निहित है। जैसे मोरचा लगी हुई ताँबे की थाली को मिट्टी, राख, खटाई, चूर्ण आदि से चमकाया जाता है, वैसे ही मन को भी जप, प्राणायाम, सत्संग, विचार और निदिध्यासन द्वारा मार्जन करने की आवश्यकता है।

अहंकार कैसे विकसित होता है?

बुद्धि-संयुक्त आत्मा अहंकार बन जाता है। अहंकार का आधार बुद्धि है। क्योंकि भेद-बुद्धि इस अहंभाव का कारण है, इसलिए अहंकार का बीज बुद्धि कही जाती है। अहन्ता और ममता जीव-सृष्टि है। जीव-सृष्टि ही मनुष्य को संसार से आबद्ध करती है। ईश्वर-सृष्टि भगवत्साक्षात्कार में मनुष्य ही सहायक होती है।

मन का बीज अहंकार है। मन के विचारों से अहंकार की वृद्धि होती है। क्योंकि सर्वप्रथम विचार 'अहंभाव' का होता है और यहीं सारे विचारों का आधार है; इसलिए मन का बीज अहंकार है। यह 'मैं' का विचार अपने पीछे-पीछे काल, देश तथा अन्य प्रभविष्णुताओं का विचार ले आता है। इन परिस्थितियों के साथ इसे जीव का नाम प्राप्त होता है। इसी के समकालीन बुद्धि, स्मृति और मन उपजते हैं जो संकल्प रूपी वृक्ष का बीज है।

कौमारावस्था में अहंकार अधिक दृढ नहीं होता। वह ऐसा ही होता है जैसे दर्पण में छाया तरुणाई में जब विवाह हो जाता है और आप अनेक सांसारिक वासनाओं की पूर्ति में लग जाते हैं, तब अहंकार विकास प्राप्त करता है और दृढ़ता से बद्धमूल हो जाता है। बाल्यकाल में आप निर्भय रहते हैं और जैसे ही आपके अन्दर यह अहंकार दूर हो

जाता है, उसके साथ ही अनेक प्रकार की वासनाएँ, भय और भ्रम आप पर अपना दृढ अधिकार कर लेते हैं और आपको संसार भी अधिकाधिक सत्य प्रतीत होने लगता है।

अहंकार का अभिशाप

अहंकार कुछ भी नहीं है; परन्तु इसका प्रभाव कितना विस्मयकारी है! माया हो अहंकार है। मन अहंकार का दूसरा नाम है। संसार का अर्थ अहंकार है। अहंकार का अंकुर 'मेरी' और 'तेरी' लम्बी शाखाओं से इधर-उधर फैलता है और बड़ा दृढ़ हो जाता है। अहंकार स्थूल देह में रहना चाहता है (अभिनिवेश), स्थूल मांस खाना चाहता है और मांस का ही आलिंगन करना चाहता है। यह निरा अज्ञान है। माया के छल तथा अन्धाधुन्ध ठगी को देखें सावधान रहें। जग जायें। ज्ञान प्राप्त करें।

जैसे बादल सूर्य को ढक लेता है, वैसे ही अहंकार का बादल ज्ञानसूर्य को, ब्रह्म को हक लेता है। यदि आपमें तनिक-सा भी अहंकार है, किसी भी एक नाम या रूप में बोड़ी-सी थी आसक्ति है, का लेशमात्र भी है और मन में किचिन्मात्र भी संसारी है तो आप ईश्वर का साक्षात्कार नहीं कर सकते।

अहंकार का उन्मूलन कैसे करें ?

धन अहंकार की गहरी जड़ों को ज्ञानाग्नि से जला देना चाहिए। तब आपको मोक्ष रूपी धन बड़ी सुगमता से प्राप्त हो सकता है। सारे क्लेश, शोक, दुःख और कष्ट समाप्त हो इन्द्रिय-दमन और प्राणायाम से बुद्धि के विकास में सहायता मिलती है।

आप अचानक अहंकार का उन्मूलन नहीं कर सकते। आप स्त्री, सन्तान, धन,क्रोधादि को सुगमता से प्राप्त हो सकता है । परन्तु अहंकार को त्यागना अति कठिन है; इसे थोड़ा-थोड़ा कम करने का प्रयत्न करें। तीन माह में षोडशांश अहंकार दूर कर दें। चार वर्ष में आप इसका पूरा उन्मूलन कर सकेंगे। आप कर्मयोग द्वारा आत्मबलिदान से या भक्तियोग द्वारा आत्मनिवेदन से या वेदान्तिक आत्म विचार द्वारा अहंकार को दूर कर सकते हैं।

मन के संकल्पों से अहंकार उत्पन्न होता है। यदि विषय-भोगों पर आश्रित रहने वाले मन के विकार नष्ट कर दिये जायें तो अहंकार से मुक्त आत्मा अकथनीय ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।

अहंकार एक सूत्र के समान है। यह समस्त इन्द्रियों को अपने साथ संयोजित अथवा श्रृंखलित कर लेता है जब सूत्र टूट जाता है तो सारे मोती गिर जाते हैं। इसी प्रकार जब **'अहं ब्रह्मास्मि'** भावना द्वारा, साक्षी भाव द्वारा या निमित्त-भाव ले कर आत्म-निवेदन की रीति से (अर्थात् यह मान कर कि मैं भगवान् के हाथों में केवल निमित्त मात्र हूँ) यह मनरूपी सूत्र तोड़ दिया जाये तो सारी इन्द्रियाँ भी टूट जायेंगी। इन्द्रियों के साथ सम्बन्धविच्छेद हो जायेगा।

यदि आप अपने को आन्तरिक सूक्ष्म शरीर से भी अभिन्न मान लें तो भी आपको आत्म-साक्षात्कार में सहायता मिलेगी। स्थूल हाड़-मांस के शरीर से आत्मा को अभिन्न मानने से अहंकार के द्वारा सारी कठिनाइयाँ आती हैं। यह स्थूल 'में' बड़ी भारी अड़चन है।

जब कभी अहंकार प्रकट होता हो तो प्रश्न करें, ''इस 'मैं' का स्रोत क्या है?" बार-बार इस प्रश्न को दोहरायें। छिलके के बाद छिलका उतारते रहने से प्याज का कुछ भी शेष नहीं रह जाता। जब आप इस छोटे से 'मैं' का विश्लेषण

करते हैं तो इसका अभाव ही हो जाता है। शरीर में' नहीं है। टांग काट देने पर भी 'मैं' शेष रहता है। जीव-सृष्टि को त्याग दें।

जितना समय फूल तोड़ने में लगता है या जितना समय पलक झपकने में लगता है, उतने ही समय में ब्रह्म-भाव की सम्यक् साधना से अहंकार बड़ी सुगमता से निर्मूल हो. सकता है।

सात्त्विक अहंकार

जब आप कहते हैं, 'मैं ब्रह्म हूँ' तो यह सात्त्विक अहकार है। यह मोक्ष-अहंकार है। यह किसी प्रकार भी बन्धन में नहीं रखता है। यह ब्रह्म-साक्षात्कार में सहायक होता है। चित्र में बनी हुई अधि किसी चीज को नहीं जलाती मध्याहनकालीन सूर्य के साम कोई अन्य ज्योति नहीं चमकती और न अपना प्रकाश डालती है। इसी प्रकार सात्त्विक पुरुष का अहंकार किसी को हानि नहीं पहुँचा सकता।

परिच्छेद- १८

विचार-शक्ति

विचार जीवित शक्ति है

विचार एक जीवित प्रबल शक्ति है। यह संसार में वर्तमान सर्वाधिक तेजस्वी, सूक्ष्म तथा अप्रतिरोध्य शक्ति है। इस भौतिक संसार की तुलना में विचारों का जगत् अधिक वास्तविक (सत्य) है। विचार सजीव पदार्थ हैं। विचारों में प्रत्येक परिवर्तन के साथ मनस्तत्त्व में स्पन्द होता है। शक्ति के रूप में कार्य करने के लिए विचार को एक विशेष प्रकार के सूक्ष्म पदार्थ की आवश्यकता होती है।

जिस वस्तु का मन ध्यान करता है, उसी का स्वरूप बन जाता है। जब आप किसी वस्तु का ध्यान करते हैं तो आपका मन उसी वस्तु का रूप बन जाता है। जब आप विचार बदल देते हैं तो मन भी अपना रूप बदल देता है। मन में अनेक प्रकार के विचार बराबर बनते रहते हैं। जब आपके विचार जल्दी-जल्दी बदलते हैं तो आपका मन भी अपना रूप जल्दी-जल्दी बदलता है। मन प्रतिक्षण बराबर सैकड़ों विचारों की मूर्तियाँ बनाता है और बिगाड़ता रहता है। यह कभी थोड़े समय के लिए एक विचार-मूर्ति पर स्थिर नहीं रहता।

प्रत्येक विचार का एक नाम और रूप होता है। एक ही विचार की अभिव्यंजक शक्ति का स्थूल रूप उसका आकार है और सूक्ष्म रूप उसका नाम है। परन्तु ये तीनों एक ही हैं। यह त्रित्व में एकत्व है, एक ही वस्तु की स्थिति की तीन अवस्थाएँ हैं। जहाँ एक होती है, वहाँ शेष दोनों भी उपस्थित हो जाती हैं। मान लीजिए कि आपका मन बिलकुल शुद्ध और सर्वथा विचार - रहित है। फिर भी ज्यों ही विचार उठने लगता है, यह फौरन ही नाम और रूप धारण कर लेता है। इसलिए मनुष्य के प्रत्येक विचार का प्रतिरूप एक शब्द भी अवश्य होता है।

भाषा भिन्न-भिन्न होती है; परन्तु विचार एक ही होता है। सबमें मनोमूर्ति समान होती है। शब्द के चार स्वरूप होते हैं—परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी । वैखरी साधारण वाणी है। भिन्न-भिन्न देशों में यह भिन्न-भिन्न होती है; परन्तु परा, पश्यन्ती और मध्यमा एक-सी ही होती हैं। जो मूल स्वरूप में शब्द-ब्रह्म में निश्चेष्ट अवस्था में बिना भेद के रहती है, वह परा-वाणी है। देवताओं की भाषा तथा मानसिक स्तर की भाषा एक ही होती है। कारण शरीर का आवर्ती स्पन्द पश्यन्ती है। यह आपका वास्तविक नाम है। जब आप कारण शरीर के द्वारा कार्य करें, जब कारण शरीर के चक्षु (जिसे दिव्य दृष्टि कहते हैं) द्वारा आप देखें, तब आप पश्यन्ती-वाणी अथवा अपना सच्चा नाम सुनेंगे।

विचार सूक्ष्म पदार्थ है

विचार सूक्ष्म पदार्थ है। विचार भी उतना ही ठोस होता है जितना ठोस पत्थर होता है। आपकी मृत्यु भले ही हो जाये; परन्तु आपके विचार कभी भी नहीं भर सकते। इनके भी रूप, आकार, रंग, पदार्थ, शक्ति, तौल और लक्षण होते

हैं। आध्यात्मिक विचार का पीत वर्ण, क्रोध और घृणायुक्त विचार का रक्त वर्ण, स्वार्थपूर्ण विचार का भूरा रंग होता है इत्यादि। योगी अपने आन्तरिक योग चक्षु से इन विचारों को देख सकता है।

जितने दृढ विचार होंगे, उतनी ही जल्दी उनका फल होगा। विचार को केन्द्र में एकत्र किया जाता है और उसकी दिशा निर्देशित की जाती है और जिस मात्रा में विचार केन्द्रित किया जाता है तथा दिशा निर्देशित की जाती है, उतने ही प्रभाव से वह उस कार्य को सम्पन्न करता है जिसके लिए उसे प्रेषित किया जाता है।

विचार रचनात्मक शक्ति है

विचार एक महती शक्ति है। विचार गतिशील है। विचार की गति भी होती है। यह संक्रामक होता है। विचार रचनात्मक है। विचार की शक्ति द्वारा आप आश्चर्यपूर्ण कार्य कर सकते हैं। विचार के द्वारा आप रचनात्मक शक्ति प्राप्त करते हैं। आजकल विचार-शक्ति, विचार गति-विद्या और विचार संस्कार के विषय पर अनेक पुस्तकें हैं। उनका अध्ययन करें। फिर आपको विचार, उसकी शक्ति तथा उसके कार्य और उपयोग के विषय में व्यापक ज्ञान हो जायेगा।

विचार की शक्ति अति महान् है। आपका प्रत्येक विचार आपके लिए प्रत्येक सम्भव प्रकार से यथार्थ मूल्य रखता है। आपकी शारीरिक और मानसिक शक्ति, जीवन में सफलता और अपने संग से जो प्रसन्नता आप दूसरों को पहुंचाते हैं ये सब आपके विचारों के स्वभाव तथा गुण पर निर्भर करता है। आपको विचार संस्कृति जाननी चाहिए। -

विचार स्वास्थ्य प्रदान करता है

यदि आपके विचार स्वस्थ होंगे तो आपका शारीरिक स्वास्थ्य भी ठीक होगा। यदि आपके मन में रोगी विचार होंगे अर्थात् रोगी तन्तुओं, दुर्बल नसों और अंगों की क्रियाओं के उचित रूप में क्रिया न करने के विचार होंगे तो आपको स्वास्थ्य, सौन्दर्य और एकरसत्व की आशा नहीं रखनी चाहिए। शरीर मन के द्वारा बनता है। यदि आपके विचार बलवान होंगे तो भौतिक शरीर भी बलिष्ठ होगा।

सब प्रकार के बुरे विचार मन को गन्दा और आहत करते हैं और यदि उनको जारी रखा जाये तो वे सचमुच रोग बन जाते हैं और मन को ऐसा विकृत बना देते हैं कि जीवन पर्यन्त उनकी चिकित्सा नहीं हो सकती।

विचार चरित्र-निर्माण करता है

"मनुष्य जैसा विचार करता है वैसा ही स्वयं बन जाता है।" "विचार के द्वारा मनुष्य बनाया जाता है। जिस वस्तु पर मनुष्य विचार करता है, स्वयं भी वही बन जाता है।" आप विचार करें कि आप बलवान् हैं तो आप बलवान् बन जायेंगे। विचार करें कि आप बलहीन है तो आप बलहीन बन जायेंगे। आप विचार करें कि आप मूर्ख हैं तो आप मूर्ख बन जायेंगे। आप विचार करें कि आप ईश्वर हैं तो आप ईश्वर बन जायेंगे। मनुष्य अपना स्वभाव स्वयं ही बनाता है; जैसा सोचता है वैसा ही बन जाता है। यदि आप साहस की धारणा करें तो अपने स्वभाव में आप साहस भर लेंगे। यही बात पवित्रता, धैर्य, निःस्वार्थता और आत्म-संयम की है। यदि आपके उच्च विचार होंगे तो शनैः-शनैः आप अपने लिए ऊँचा चारित्र्य बना लेंगे; परन्तु यदि आपके विचार नीच श्रेणी के हैं तो हीन चारित्र्य ही बनेंगे। स्थिर और दृढ़ता से बने रहने वाला विचार मन की एक निश्चित आदत बना देता है और वह आदत मनुष्य के चरित्र में एक स्वभाव (लक्षण) के रूप में प्रकट हुआ करती है। विचारों के सूत्रों ने मिल कर मानसिक और नैतिक स्वभाव बनाया है और ये स्वभाव मिल कर ही चरित्र कहलाते हैं। आप अपने चरित्र को इतने ही निश्चय के साथ नियमानुसार काम करते हुए बना सकते हैं जैसे राजमिस्त्री दीवार को बनाता है।

विचारपूर्वक चरित्र - गठन का प्रथम सोपान यह है कि हम अपने विचारों का विषय सतर्क हो कर पसन्द कर लें और फिर उसी लक्षण पर बार-बार विचार करें। शीघ्र ही उस लक्षण को प्रकट करने की रुचि हो जायेगी। थोड़े समय बाद इसका अभ्यास स्वाभाविक हो जायेगा। विचार ही चरित्र को बनाते हैं। आप विचार के द्वारा ही प्रारब्ध का सूत काटते हैं।

विचार प्रारब्ध की रचना करते हैं

व्यक्ति एक जन्म में जिस वस्तु का अधिक विचार करता है, अगले जन्म में स्वयं भी वही बन जाता है। यदि मन निरन्तर एक ही विचार धारा में चलता रहे तो एक नाली सी बन जाती है जिसमें विचार-शक्ति स्वतः ही दौड़ती रहती है और ऐसी विचार की आदत मृत्यु के बाद भी रहती है, क्योंकि इसका सम्बन्ध आत्मा से होता है। यह भावी पार्थिव जीवन में कभी एक सामर्थ्य और विचारशैली के रूप में बनी रहती है।

प्रत्येक विचार की अपनी अलग ही मनोमूर्ति होती है। प्रत्येक मनुष्य की अपनी मानसिक सृष्टि, अपना मत, अपने भाव और विचार-धारा तथा अनुभव होते हैं। एक भौतिक जीवन में बनी हुई मनोमूर्तियों का सार मानसिक जगत् में बनता रहता है। यहीं अगले भौतिक जीवन का आधार होता है। जैसे प्रत्येक जन्म में नया शरीर बनता है वैसे ही प्रत्येक जन्म में नया मन और नयी बुद्धि भी बनती है।

विचार और कर्म की क्रिया को सविस्तार समझाना कठिन है। प्रत्येक कर्म का दो प्रकार का फल होता है, एक व्यक्तिगत मन पर और दूसरा जगत् पर। व्यक्ति अपने भावी जीवन की परिस्थितियाँ दूसरों पर अपने कर्मों का प्रभाव डाल कर स्वयं बनाता है।

प्रत्येक कर्म की एक पूर्वावस्था होती है जिसके द्वारा वह कर्म बनता है। प्रत्येक कर्म का एक भविष्य होता है जो उस कर्म से उत्पन्न होता है। कर्म के बनाने में एक इच्छा होती है जो उसे प्रेरणा करती है और एक विचार होता है जो उसे आकार देता है। कार्य और कारण की अनन्त श्रृंखला में प्रत्येक कर्म एक कड़ी होता है, प्रत्येक कार्य स्वयं कारण बन जाता है और प्रत्येक कारण पहले कार्य बन चुका होता है। इस अनन्त श्रृंखला की प्रत्येक कड़ी इच्छा, विचार और क्रिया-रूपी तीन अवयवों से बनी हुई होती है। इच्छा विचार को चलाती है और विचार क्रिया-रूप में परिणत हो जाता है।

दूसरों की सम्पत्ति की स्वार्थपूर्ण लालसा को यद्यपि वर्तमान काल में कभी क्रियात्मक धोखे के रूप में परिणत न भी किया हो तथापि यह मनुष्य को आगामी पार्थिव जीवन में चोर बनाती है और गुप्त रूप से दबाये हुए मन में घृणा और प्रतिकार के भाव आगामी जीवन में हत्यारे को जन्म देने के बीज बनते हैं। ऐसे ही नि:स्वार्थ प्रेम के फलस्वरूप परोपकारी तथा सन्त जीव उत्पन्न होता है और दयापूर्ण भावों से सब जीवों में मैत्रीभाव रखने वाला कोमल तथा दयालु प्रकृति का मनुष्य बनता है।

प्रत्येक वस्तु सजातीय वस्तु को आकृष्ट करती है

यह महान् नियम सदा चालू रहता है: "प्रत्येक वस्तु सजातीय वस्तु को आकृष्ट करती है।" यह महान् विश्वजनीन नियम है। यह प्रकृति का नियम है। विचार-जगत् में भी यह नियम काम करता है। समान विचार वाले मनुष्य एक-दूसरे की ओर आकृष्ट होते हैं। इसी कारण ये लोकोक्तियाँ प्रसिद्ध है: "एक जाति के पक्षी इकट्ठे हुआ करते हैं", "जैसी संगति मनुष्य रखता है, उसी से उसका चरित्र जाना जाता है। एक चिकित्सक दूसरे " चिकित्सक की ओर आकृष्ट होता है। कवि दूसरे कवि से आकृष्ट होता है। गायक दूसरे क से प्रेम रखता है। एक दार्शनिक दूसरे दार्शनिक को चाहता है। एक आवारा दूसरे आवारा से प्रेम करता है। मन में खींचने की शक्ति है। आप दृश्य और अदृश्य डॉव-शक्तियों से बराबर अपनी विचार-धारा के अनुकूल विचारों, प्रभावों और स्थितियों को आकृष्ट करते रहते हैं।

विचार-जगत् में भी सजातीय विचारों के लोग एक-दूसरे की ओर आकृष्ट होते हैं। यह विश्वव्यापी नियम निरन्तर कार्य करता रहता है, चाहे हम इसको जानें या न जानें। ऐसा कहना चाहिए कि हम विचारों के एक विशाल समुद्र में रहते हैं और हमारे चारों ओर का वातावरण उन विचार-शक्तियों से भरा हुआ है जो विचार-तरंगों के रूप में निरन्तर भेजी जा रही हैं। या तो जान-बूझ कर या अनजाने में न्यूनाधिक मात्रा में हम सब पर इन विचार शक्तियों का प्रभाव होता है। यह प्रभाव उतनी ही राशि में होता है जितने न्यूनाधिक परिमाण में हमारी अनुभव-शक्ति बढ़ी होती है या जितने अंश में हम आध्यात्मिक विषय में शून्य होते हैं और बाह्य प्रभावों को जल्दी ग्रहण करते हैं। इन्हीं राशियों से यह निश्चय हुआ करता है कि कौन-कौन से प्रभाव हमारे विचार-साम्राज्य में प्रवेश करेंगे और हमारे जीवन पर प्रभाव डालेंगे।

चाहे जिस प्रकार का विचार अपने साथ लिये रहें और जब तक आप उसे अपने साथ रखें, चाहे जैसे भी आप पृथ्वी या समुद्र पर घूमें, आप निरन्तर जाने या अनजाने में केवल वही वस्तु अपनी ओर खींचेंगे जो आपके विचार के प्रधान लक्षण से मिलती-जुलती होगी। विचार आपकी निजी सम्पत्ति है और यदि आप स्थिरता से अपने सामर्थ्य को पहचान लें तो आप उन्हें अपनी रुचि के अनुसार नियन्त्रित कर सकते हैं। अपने विचारों का क्रम और उनके द्वारा आकृष्ट प्रभावों का क्रम निश्चय करना सर्वथा आपके ही हाथ में है और परिस्थितियों के लचकदार खिलौने नहीं हैं जब तक आप स्वयं ही ऐसे बनना पसन्द न करें।

सद्विचार और कुविचार

सद्विचार तीन प्रकार से सफल होता है। प्रथमतः जिस मनुष्य के मन में उठता है. उसके मनोमय कोश में सुधार करके उसे पवित्र करता है। द्वितीयत: जिस व्यक्ति के - सम्बन्ध में वह विचार होता है, उसे लाभदायक होता है और अन्त में समस्त मानसिक वातावरण को सुधार कर सारी मानव जाति को लाभ पहुँचाता है।

इसके विपरीत कुविचार तीन प्रकार से अभिशाप लाता है। पहले वह विचार करने वाले मनुष्य के मनोमय कोश को क्षत करके उस मनुष्य के लिए हानिकारक होता है।. दूसरे जिस मनुष्य के विषय में वह विचार किया जाता है, उसे हानिकारक होता है और तीसरे समस्त मानसिक वातावरण को दूषित करके सारी मानव जाति को हानि पहुँचाता है।

किसी मनुष्य की ओर भेजा हुआ प्रत्येक कुविचार उसके लिए तलवार के समान होता है। यदि आपके मन में घृणा के विचार हैं तो जिसके प्रति आपकी घृणा है, वास्तव में आप उसके हत्यारे हैं। इस प्रकार आप स्वयं अपनी हत्या करते हैं; क्योंकि ये विचार आप पर ही प्रतिक्रिया करते हैं।

जिस मन में खोटे विचार भरे हों, वह इसी प्रकार के विचार अपनी ओर खींचने में चुम्बक का काम करता है और इस प्रकार आदि बुराई को और भी बढ़ा लेता है।

मानसिक वातावरण में भेजे हुए कुविचार उसके ग्राही मनों को विषाक्त कर देते हैं। कुविचार में लगे रहने से उससे विरक्ति क्रमशः कम होती जाती है और मनुष्य उस विचार के अनुरूप ही कार्य करने को प्रेरित होता है।

विचार-सन्तति

यही बात पर्याप्त नहीं है कि आपके विचार बुरे नहीं है। आपको अपने बुरे विचारों को सद्विचारों में बदलना आवश्यक है। आपकी साधना का यह प्रथम अंग है। आपको उन्हें सहायक विचार बनाना चाहिए। जब उन्हें बाहर भेजा जाये तो वे इस योग्य हो कि आपके पड़ोसियों और पीड़ित मानव-समाज की अधिक-से-अधिक भलाई कर सकें।

विचार आपके अपने ही सच्चे बच्चे हैं। विचारों की सन्तति के लिए सचेत रहें। सुपुत्र अपने पिता को सुख, नाम और यश देता है। कुपुत्र बदनामी और अपयश देता है। इसी प्रकार सद्विचार आपको सुख तथा प्रसन्नता देता है और कुविचार दुःख तथा कष्ट पहुंचाता है। जैसे आप अपने बच्चों का पालन बड़ी सावधानी से करते हैं इसी प्रकार आपको सावधानी से अच्छे और उच्च विचारों का पालन करना होगा।

विचार संक्रामक है

विचार बड़ा ही संक्रामक, यहाँ तक कि फ्लू से भी अधिक संक्रामक होता है। विचार गतिशील है। यह वास्तव में मस्तिष्क से निकल कर घूमता रहता है और दूसरों के मस्तिष्क में भी प्रवेश करता है। आपका सहानुभूतिपूर्ण विचार उन लोगों में भी सहानुभूति उत्पन्न करता है जो आपके सम्पर्क में आते हैं। क्रोध का विचार क्रोधी व्यक्ति के चतुर्दिक् रहने वालों में भी क्रोध उत्पन्न कर देता है। यह एक मनुष्य के मस्तिष्क से निकल कर दूर देश में रहने वालों के मस्तिष्क में प्रवेश कर जाता है और उन्हें अनुप्राणित करता है। एसन्नता का विचार इसी प्रकार दूसरों में भी प्रसन्नता का संचार कर देता है। जब आप खेलते-कूदते प्रसन्न बालकों के झुण्ड को देखते हैं तो आप भी प्रसन्न हो जाते हैं।

आकाशवाणी के प्रसारण में गायक कलकत्ता में सुन्दर गाने गाता है। दिल्ली में अपने मकान में रेडियो द्वारा आप उन्हें अच्छी प्रकार सुन सकते हैं। बेतार यन्त्र के द्वारा सारे सन्देश प्राप्त किये जाते हैं। इसी प्रकार आपका मन बेतार यन्त्र के समान है। शान्ति, समत्व, एकरसता और आध्यात्मिक स्पन्दनों से सम्पन्न एक सन्त जगत् में शान्ति और एकान्त के भाव प्रेषित करता है। वे चारों ओर बड़ी तीव्र विद्युत्-गति से दौड़ते हैं और हजारों मनुष्यों के मन में प्रवेश करते हैं तथा उनमें भी शान्ति और एकता के वैसे ही विचार उत्पन्न कर देते हैं। परन्तु जिसके मन में ईर्ष्या, प्रतिकार और घृणा भरी हुई है ऐसा संसारी मनुष्य विसंवादी विचार ही बाहर भेजता है जो हजारों के मन में प्रवेश करके वैसे ही घृणा और भेद के भाव पैदा कर देता है।

विचार अतीव संक्रामक होता है। भले और ईमानदार मनुष्य को किसी चोर के साथ रखें तो वह भी चोरी करने लगता है। नशा न करने वाले मनुष्य को शराबी के साथ रखें तो वह भी मदिरा पीने लगता है।

विचार सम्प्रेषण

वह कौन-सा माध्यम सम्भव है जिसके द्वारा विचारों की गति एक मन से दूसरे मन तक होती है? इसकी सबसे उत्तम व्याख्या यही हो सकती है कि आकाश की भाँति मनस्तत्त्व भी समस्त देश या स्थान में व्याप्त है और इसी के द्वारा विचारों की गति होती है, जिस प्रकार भावों की प्रगति प्राण के द्वारा होती है, उष्णता, ज्योति (तेज) और विद्युत् की गति आकाश के द्वारा होती है और शब्द की गति वायु के द्वारा होती है। आकाश की भाँति मन भी विभु अर्थात् व्यापक है; इसीलिए विचार सम्प्रेषण सम्भव है।

यदि हम सरोवर में पत्थर का टुकड़ा फेंक दें, तो इसमें केन्द्रीय लहरे उस प्रभावित स्थान से चारों ओर को अनुक्रम से उठती है। इसी प्रकार दीपक की ज्योति से भी आश में स्पन्द की लहरे उस दीपक के चारों ओर फैलती है। इसी रीति से भला या बुरा कोई एक विचार एक मनुष्य के मन में उठता है तो यह मानसिक वातावरण में स्पन्दन (कम्पन) उत्पन्न कर देता है जो चारों ओर दूर-दूर तक जाते हैं।

विद्युत् की गति एक सेकण्ड में १,८६,००० मील होती है; परन्तु विचारों की गति में कुछ समय नहीं लगता। विद्युत् के माध्यम आकाश से मन अधिक सूक्ष्म है, इसलिए विचारों की गति विद्युत् से विशेष अधिक होती है।

विचार भी वस्तुओं के समान हुआ करते हैं। जैसे आप अपने किसी मित्र को नारंगी दे देते हैं और फिर उसे वापस ले लेते हैं इसी प्रकार आप अपने मित्र को एक उपयोगी और बलशाली विचार दे सकते हैं और फिर उसे उसे वापस ले सकते हैं। विचार का उपयोग तथा उसके व्यवहार करने की सम्यक् कला आपको अवश्य जान लेनी चाहिए। यह विज्ञान बड़ा रोचक और सूक्ष्म है संकट में पड़े हुए अपने मित्र की सहायता सान्त्वना के विचार भेज कर कर सकते हैं। जिस मित्र को सत्य की खोज है, उसकी सहायता उन सच्चाइयों के स्पष्ट तथा निश्चित विचार भेज कर कर सकते हैं जिनको आप जानते हैं। आप मानसिक वातावरण में ऐसे विचार भेज सकते हैं जिनसे उनके संवेदनशील व्यक्तियों को प्रेरणा, पवित्रता और उन्नति मिलेगी।

यदि आप किसी अन्य व्यक्ति के लिए प्रेम और सहायता का भाव भेजते हैं तो वह आपके मस्तक से निकल कर सीधा उस व्यक्ति के पास जाता है, जिसके मन में इसी प्रकार का प्रेमभाव उत्पन्न करता है और दोगुनी शक्ति के साथ आपके पास वापस आता है। ऐसे ही यदि आप किसी मनुष्य के प्रति घृणा का भाव भेजें तो वह उस मनुष्य पर आघात करता है और जब दोगुनी शक्ति के साथ वापस आता है तो आपको भी आहत कर देता है। इसलिए विचार के नियम को समझ लें। केवल दया, प्रेम और कृपा के ही विचार अपने मन में उत्पन्न करें और सदा सुखी रहें।

जब दूसरों की सहायता के लिए आप कोई उपयोगी सहायक विचार भेजें तो उसका कोई निश्चित आशय और लक्ष्य होना चाहिए। तभी वह आकांक्षित परिणाम उत्पन्न करेगा। तभी वह विचार कुछ निश्चित कार्य करेगा।

साधक के कर्तव्य

आपको दूसरे मनुष्यों और सारे जगत् को प्रेमपूर्ण और सहायक विचार भेजने की रीति सीखनी चाहिए। आपको जानना चाहिए कि चित्तविक्षेप को हटा कर सारे सद्विचारों को दुःखी मानव-समाज की भलाई के लिए इकट्ठा करके सहायक सेना के रूप में किस प्रकार भेजा जाता है। विचार सम्प्रेषण बड़ा सुन्दर विज्ञान है। यह यथार्थ विज्ञान है।

जैसे गंगा जी का प्रवाह उसके तट पर रहने वालों को शीतलता और आनन्द प्रदान करता है इसी प्रकार आपके प्रेम और शान्ति के सशक्त विचारों का प्रवाह भी चिन्ता, परेशानी, उत्सुकता, दुःख आदि से सन्तप्त मनुष्यों को सान्त्वना, शान्ति और सुख देने वाला होना चाहिए।

साधु प्रकृति वाले सद्गृहस्थ भी कभी-कभी सद्विचार मन में रखते हैं और वे जगत् में सहायक विचार भेजते हैं। सत्य के मार्ग में साधक के लिए यह पर्याप्त नहीं है। उसके मन से निरन्तर सहायक विचारों का प्रवाह वेग से चलता रहना चाहिए। यह प्रेम और सहायतापूर्ण विचारों का अनन्त और आरोग्यकारी प्रवाह होना चाहिए। उसमें शक्ति होनी चाहिए कि बीस मनुष्यों की टोली में, सैकड़ों और हजारों मनुष्यों के समूह में प्रेम, सुख और प्रसन्नता भर सके। उसमें दृष्टिमात्र से और थोड़े से मधुर शक्तिशाली शब्दों से उनमें उत्साह, उच्च भावना और उन्नत मनोदशा से चलायमान करने की सामर्थ्य होनी चाहिए। यह आत्म-बल और इच्छा-शक्ति है।

संन्यासी अपने विचार-स्पन्दनों के द्वारा संसार की सेवा कैसे करते हैं?

भारतवासियों ने भी पाश्चात्य देशों की प्रचार शैली को ग्रहण कर लिया है और चिल्ला रहे हैं कि सन्यासियों को भी कार्य-क्षेत्र में आ कर सामाजिक तथा राजनैतिक प्रवृत्तियों में भाग लेना चाहिए। यह दुःखद भूल है। संन्यासी या योगी को किसी संस्था का प्रधान अथवा किसी सामाजिक या राजनैतिक आन्दोलन का नेता बनने की आवश्यकता नहीं है। यह मूर्खतापूर्ण तथा बचकाना विचार है। सच्चा संन्यासी अपने विचार-स्पन्दन द्वारा ही सब कुछ कर सकता है।

यह आवश्यक नहीं है कि संन्यासी संसार की सहायता करने के लिए उपदेश देने तथा जनता का मन उन्नत करने के लिए सभा-मंच पर आये। कुछ सन्त अपने जीवन के उदाहरण द्वारा उपदेश देते हैं। उनका जीवन ही साकार उपदेश होता है। उनका दर्शन मात्र ही सहस्रों लोगों के मन को उन्नत बनाता है। सन्त दूसरों के लिए ईश्वर प्राप्ति की सजीव प्रत्याभूति है। पूतात्मा सन्तों के दर्शन से अनेक लोग प्रेरणा प्राप्त करते हैं। सन्तों के विचार-स्पन्दनों को कोई रोक नहीं सकता। उनके शुद्ध, सबल विचार-स्पन्दन बहुत दूर तक जाते हैं, संसार को पवित्र बनाते हैं तथा अनेक सहस्र लोगों के मन में प्रवेश करते हैं।

हिमालय की गुफा में रहने वाला ऋषि एक प्रबल विचारधारा अमेरिका के कोने में पहुँचा सकता है। जो व्यक्ति संसार में निष्काम कर्मयोग की साधना करता है, वह निष्काम सेवा द्वारा अपने को पवित्र करता है तथा जो हिमालय की गुफा में ध्यान का अभ्यास करता है तथा अपने को शुद्ध बनाने का प्रयास करता है, वह वस्तुतः अपने आध्यात्मिक स्पन्दनों द्वारा संसार में पवित्रता फैला कर जगतीतल की सहायता करता है। जो मनुष्य उसके विचारों को ग्रहण करना चाहते हैं, उन तक उसके पवित्र विचारों को पहुँचने में कोई बाधा नहीं डाल सकता। सांसारिक कार्यकर्ता इस बात को नहीं समझ सकते।

सुस्पष्ट विचारणा कैसे निष्पादित की जाती

साधारण मनुष्य गम्भीर विचार के तत्त्व को नहीं जानते। उनके विचार अनियन्त्रित हो जाते हैं। कभी-कभी उनके मन में बड़ी अस्त-व्यस्तता रहती है। उनकी मनोमूर्तियाँ विकृत होती हैं। विचारकों, दर्शनशास्त्रवेत्ताओं और योगियों की मनोमूर्तियाँ सुनिश्चित तथा सुष्पष्ट होती हैं। वे दिव्य दृष्टि के द्वारा देखी जा सकती हैं। जो धारणा और ध्यान का अभ्यास करते हैं, उनकी मनोमूर्तियाँ बहुत सशक्त तथा सुसंघटित हो जाती हैं।

आपके अधिकतर विचारों का सुदृढ़ आधार नहीं होता। वे आते और चुपके से चले जाते हैं। इसलिए वे अस्पष्ट तथा अनिश्चित होते हैं। उनके चित्र स्पष्ट, सबल और सुसंघटित नहीं होते। स्पष्ट, निरन्तर और गम्भीर विचार-क्रिया द्वारा आपको उन्हें सम्बलित करना होगा। विचार, मनन और ध्यान द्वारा आपको विचारों को स्थिर करना होगा तथा उन्हें एक निश्चित रूप देना होगा। तभी दार्शनिक विचार दृढ होंगे। सम्यक् विचार, तर्क, अन्तर्निरीक्षण और ध्यान के द्वारा आपको अपने विचारों को स्पष्ट करना होगा। तब अस्त-व्यस्तता मिट जायेगी तथा विचार स्थिर और दृढ़ हो जायेंगे।

विचार स्पष्ट रूप से करें। बार-बार अपने विचारों को स्पष्ट करें। एकान्त में निरीक्षण करें। अपने विचारों को यथेष्ट मात्रा में पवित्र बना लें। विचारों को शान्त कर लें। मन को उबलने मत दें। एक विचार की लहर उठने दें और उसे शान्त हो जाने दें। तब दूसरे विचार को प्रवेश करने दें। जिस विषय पर आप एक समय में एक विचार करते हैं, उससे असम्बद्ध सारे बाह्य विचारों को दूर भगा दें।

स्वतन्त्र तथा मौलिक विचारणा

इस संसार में विचारक बहुत ही अल्प संख्या में हैं। हममें से बहुत लोग नहीं जानते कि सभ्य विचार कैसे करते हैं। अधिक संख्या में लोगों के विचार उथले होते हैं। गम्भीर विचार के लिए तीव्र साधना (अभ्यास) की आवश्यकता है। मन के यथोचित उद्विकास के लिए अनेक जन्म चाहिए । तब ही यह गम्भीर और ठीक-ठीक विचार कर सकेगा। जो

मनुष्य सत्य बोलता है और जिसमें नैतिक पवित्रता है, उसके विचार सर्वदा शान्तिपूर्ण होते हैं। जिसने दीर्घ अभ्यास द्वारा क्रोध का निग्रह कर लिया है, उसमें बड़ी भारी विचार-शक्ति होती है। अत्यन्त शक्तिशाली विचारों वाला योगी यदि एक शब्द भी कहेगा तो उसका प्रभाव मनुष्यों पर बहुत भारी पड़ेगा।

वेदान्ती तो स्वतन्त्र और मौलिक विचार-क्रिया का आश्रय लिया करते हैं। वेदान्त की साधना के लिए कुशाग्र बुद्धि चाहिए। ठोस विचार, दृढ़ता से रहने वाले विचार, साफ विचार, सारी समस्याओं की जड़ तक पहुँचने वाली विचार-स्थितियों को मूल तक जानने वाले विचार और समस्त विचारों की पूर्व कल्पनाओं तक को जान लेने वाले विचार ही वेदान्तिक साधना के सार हैं। जब आपको किसी पुराने विचार के स्थान में कोई नया उन्नत विचार मिल जाये, तो आप उस पुराने विचार को त्याग दें, चाहे वह कितना ही दृढ़ और गहरा हो। यदि आपमें इतना साहस नहीं है कि अपनी विचार-क्रिया के परिणाम को और बिचार के निष्कर्ष को ग्रहण कर सकें, चाहे उसका प्रभाव आपके व्यक्तित्व पर कुछ भी क्यों न हो, तो आपको दर्शनशास्त्र में कष्ट नहीं करना चाहिए। भक्ति मार्ग ग्रहण कर लें।

प्रायोगिक विचार तथा अविच्छिन्न विचार

प्रायोगिक विचार-क्रिया मन को विषय पर लगाती है और अविच्छिन्न विचार- क्रिया मन को निरन्तर लगाये रखती है। उस उन्नतिशील मन का आनन्द और विस्तार हर्षोन्माद द्वारा होता है जिसकी विक्षेपहीनता का उद्देश्य इन दोनों विचार-क्रियाओं द्वारा पूर्ण हो चुका है। जब प्रायोगिक और अविच्छिन्न विचार-क्रिया द्वारा हर्षातिरेक, आनन्द और चित्त की एकाग्रता हो जाती है, तब ही ध्यानावस्था सम्पन्न हो सकती है।

विचार बड़ी शक्ति है। इसमें विशाल बल है। यह जान लेना बड़े महत्त्व की बात है कि इस शक्ति को सबसे उत्तम विधि से और अधिक-से-अधिक फल के लिए किस प्रकार उपयोग किया जाये। ध्यान के अभ्यास से यह सर्वोत्तम प्रकार जाना जाता है।

परिच्छेद- १९

विचार-संस्कृति

यदि हमारे जूते में एक ककड़ घुस जाये और पीड़ा देने लगे तो उसे निकाल देते हैं। जूता उतारते हैं और हिला कर कंकड़ गिरा देते हैं। यदि विषय को भलीभाँति समझ लिया जाये तो किसी बलात् प्रवेश करने वाले अप्रिय विचार को भी मन से हटाना इतना ही सुगम है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं होना चाहिए, दो मत नहीं होने चाहिए। बात बिलकुल प्रकट, सुस्पष्ट तथा निर्भ्रान्त है। अप्रिय विचार को मन से निकाल देना भी उतना ही सुगम होना चाहिए जितना जूते में से ककड़ निकाल देना और जब तक मनुष्य इतना नहीं कर सके, उसे प्रकृति के ऊपर विजय पाने और उससे ऊपर

उठ जाने की बात करनी मूर्खता है। वह चमगादड़ के पंख जैसी आकृति वाले उन विचारों का ही दास और शिकार है जो उसके मस्तिष्क में चक्कर लगाते रहते हैं। ऐसे मनुष्यों का भाग्य भी शोचनीय है।

विचार- नियन्त्रण के लाभ

विचार ही कर्म की ओर ले जाता है। विचार ही सारे कर्मों के स्रोत हैं। विचारणा ही असली कर्म है। यदि आप प्रारम्भ में ही दूषित विचारों का उन्मूलन कर देंगे तो आप कोई दुष्कर्म नहीं करेंगे। यदि आप इन्हें प्रारम्भ में ही कुचल देंगे तो आप संसार की विपत्तियों तथा क्लेशों से छूट जायेंगे। अन्तर्निरीक्षण और जाग्रत रह कर अपने विचारों को देखें।

विचार ही सच्चा कर्म है। मन की क्रियाएँ वास्तविक कर्म हैं। यदि मन का विक्षेप दूर हो जाये तो आपको अच्छी निष्ठा मिलेगी तथा मन बहुत ही शान्त हो जायेगा। मन की मलिनताओं से रहित हो जायें। मन के ऊपर संयम रखें, तब जन्म और मृत्यु सहित संसार के सारे दुःखों का अन्त हो जायेगा। यदि आप अपने को मन के पंजों से छुड़ा लेंगे तो मोक्ष स्वयं ही आ जायेगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

बुद्धिमान् मनुष्य अपने विचारों पर निग्रह रखता है और सारे कुविचारों को जैसे ही वे उठते हैं, मन के ऊपर की तह पर से हटा देता है। इसलिए वह सुखी रहता है। उसके विचार सदा शुद्ध रहते हैं। परमात्मा का ध्यान करने से मन में शुद्ध विचार प्रकट होते हैं; क्योंकि परमात्मा नित्य शुद्ध है।

यदि आपको अपने विचारों पर वशित्व है तो आप गम्भीर एकाग्रता से बहुत कार्य सम्पन्न कर सकते हैं। सब प्रकार की मानसिक व्यथाएँ, चिन्ताएँ और क्लेश दूर हो जाते हैं। और जो शान्ति प्राप्त होती है, उसका तो उचित रीति से वर्णन ही नहीं हो सकता।

जिनको अपने विचारों और वाणी पर थोड़ा-सा भी संयम होता है उनका मुख शान्त, गम्भीर, सुन्दर और मनोहर; वाणी कोमल और आँखें देदीप्यमान्, द्युतिमान् तथा श्वेत होंगी। जैसे अगरबत्ती से निरन्तर मधुर सुगन्धि निकलती रहती है, ऐसे ही उस योगी मे, जिसने अपने विचारों का निग्रह कर लिया है और जो निरन्तर ब्रह्म-चिन्तन करता रहता है, दिव्य सुगन्धि और दिव्य तेज निकलते रहते हैं। उसके मुख का तेज और सुगन्धि ब्रह्मवर्चस कहलाता है। जब आपके हाथ में चमेली, गुलाब और चम्पक पुष्पों का बना गुच्छा होता है तो उसकी मधुर सुगन्धि सारे कक्ष में फैल जाती है और सबको समान रूप से प्रसन्न करती है, इसी प्रकार जिस योगी ने अपने विचारों का निग्रह कर लिया है, उसकी यश और कीर्ति-रूपी सुगन्ध दूर-दूर तक फैल जाती है वह विश्व के लिए शक्ति बन जाता है।

रेडियम बड़ा दुर्लभ पदार्थ है। सारे जगत् में केवल १६ ग्रेन है। जिन योगियों ने अपने विचारों का संयम किया हुआ है, वे इस संसार में रेडियम के समान दुर्लभ हैं।

विचार-शक्ति का संरक्षण तथा उचित उपयोग

जैसे व्यर्थ बातचीत करने में और गपशप में शक्ति क्षीण होती है उसी प्रकार निरर्थक विचार रखने में भी शक्ति क्षीण होती है। इसलिए आपको एक भी विचार व्यर्थ नहीं खोना चाहिए। निरर्थक विचारों में अपनी तनिक भी शक्ति नष्ट मत करें। सारे मानसिक बल को संग्रह करें। इसको दिव्य ध्यान, ब्रह्म-चिन्तन और ब्रह्म-विचार में उन्नत आध्यात्मिक उद्देश्यों के लिए उपयोग करें। आपको सारी विचार-शक्ति सुरक्षित रखनी चाहिए और उसका उपयोग ध्यानाभ्यास और लाभदायक लोक-सेवा में करना चाहिए।

अपने मस्तिष्क में अनुपयोगी जानकारी मत भर लें। मन को अमना करना सीखें। जो कुछ आपने सीखा है, उसे भुला दें। अब ये सब आपके लिए व्यर्थ हैं। तभी आप अपने मन को दिव्य विचारों से भर सकते हैं। आपको नवीन मनोबल प्राप्त करना होगा; क्योंकि मन की सारी बिखरी हुई किरणें अब प्रकृतिस्थ हो गयी हैं।

भौतिक विज्ञान में एक शब्द आता है 'अनुस्थापन-शक्ति । यद्यपि शक्ति का द्रव्यमान वर्तमान होता है, फिर भी विद्युत्-प्रवाह नहीं चलता। जब यह चुम्बक (मैगनेट) के साथ संयुक्त किया जाता है तो अनुस्थापन-शक्ति के द्वारा विद्युत्-प्रवाह चलने लगता है। इसी प्रकार मानसिक शक्ति जो अनेक व्यर्थ के सांसारिक व्यवहारों में अपव्यय और अपनिर्दिश होती है, उसे उपयुक्त आध्यात्मिक मार्ग में सुनिर्दिष्ट करना चाहिए।

नकारात्मक विचार

अपने मन से सारे अनावश्यक, अनुपयोगी और घृणित विचारों को भगा दें। निरर्थक विचार आपकी आध्यात्मिक उन्नति में बाधा डालते हैं, घृणित विचार आध्यात्मिक प्रगति में रुकावट होते हैं। जब आप अपने मन में निरर्थक विचारों को प्रश्रय देते हैं तो आप परमात्मा से दूर हो जाते हैं। भगवत्सम्बन्धी विचारों को प्रतिस्थापित करें। केवल उपयोगी और सहायक विचारों को ही रखें। उपयोगी विचार आध्यात्मिक उन्नति के सोपान है। मन को पुराने मार्गों में मत दौड़ने दें और इसको अपनी मनमानी मत करते हैं। सदा इस पर निगरानी रखें।

अन्तर्निरीक्षण के द्वारा आपको सब प्रकार के नीच विचार, निरर्थक विचार, अयोग्य विचार, अनुचित विचार, कामुक विचार तथा द्वेष, घृणा और स्वार्थ के विचार को अवश्य निकाल देना चाहिए। आपको असामंजस्य और कलह के विघटनात्मक विचारों को दूर करना होगा। आपको विचार-संस्कृति का विकास करना चाहिए अर्थात् अच्छे, प्रेमपूर्ण उन्नत दिव्य विचारों को बढ़ाना चाहिए। प्रत्येक विचार रचनात्मक होना चाहिए। यह दृह निश्चित और सकारात्मक होना चाहिए। उसकी मनोमूर्ति सुस्पष्ट और सुनिर्धारित स्वरूप वाली होनी चाहिए। आपको सद्विचारों का विकास करना चाहिए। प्रत्येक विचार दूसरों के लिए शान्ति और सान्त्वना देने वाला होना चाहिए। यह किसी के लिए तनिक भी कर और दुःख लाने वाला न हो तब आप पृथ्वी पर धन्य बन जायेंगे। आप भूलोक में महान् शक्तिशाली हो जायेंगे। आप ईसामसीह और बुद्ध के समान अनेकों की सहायता कर सकते हैं, हजारों को निरोग कर सकते हैं और बहुसंख्यक मनुष्यों को आध्यात्मिक बना कर उन्नत कर सकते हैं।

आप जैसे उद्यान में चमेली, गुलाब, नरगिस और अन्य प्रकार के फूल लगाते हैं। वैसे ही आपको अन्तःकरण के विशाल उद्यान में प्रेम, दया, कृपा और पवित्रता के शान्तिप्रद विचार रूपी पुष्पों को उगाना चाहिए। आपको अन्तर्निरीक्षण के द्वारा इस मन रूपी उद्यान को ध्यान और उन्नत विचारों के जल से सींचना होगा और निरर्थक कलह के विचारों के अपतृणों को हटाना होगा।

असंगत विचार

साधारणतया अप्रशिक्षित मनुष्य के मन में चार-पाँच प्रकार के विचार एक ही समय में निवास करते हैं। परिवार के विचार, व्यापार के विचार, कार्यालय के विचार, शरीर के विचार, खान-पान के विचार, आशा और प्रत्याशा, धनोपार्जन की योजनाओं के विचार, किसी प्रकार के प्रतिकार के विचार, मल-मूत्र त्याग और स्नानादि के कुछ स्वाभाविक विचार ये एक ही समय में मन को घेर लेते हैं। जब ३-३० बजे सायंकाल को आप बड़े ध्यान से किसी पुस्तक को पढ़ रहे होते हैं, तो ४ बजे क्रिकेट का खेल देखने के आनन्द का विचार आपके अध्ययन में समय-समय पर बाधा डालता है। एकाग्र चित्त बाला योगी ही एक समय में एक विचार रख सकता है और अपने इच्छानुसार उसे चाहे जितनी देर तक बनाये रख सकता है।

यदि आप मन पर सावधानी से निगाह रखें, तो आप देखेंगे कि बहुतेरे विचार होते हैं। मन निस्देश्य यदृच्छया घूमता फिरता है। कुछ विचार शरीर और इसकी आवश्यकताओं के सम्बन्ध में, कुछ विचार मित्रों के सम्बन्ध म कुछ खाने-पीने के सम्बन्ध में, कुछ विचार बचपन के सम्बन्ध में होते हैं। यदि आप मन का अध्ययन कर के और अन्य सब प्रकार के विचारों का बहिष्कार करके एक ही विषय से संगत विचार रख सकें तो यह बड़ी भारी उपलब्धि है, विचार-संयम में उन्नति की ओर महान् किया है। साहस मत छोड़ें।

पाप के सन्तापकारी विचार

कुछ लोगों को पाप के विचार सन्ताप देते रहते हैं। एक व्यक्ति सदा यह सोचता रहता है, "मैंने जघन्य पाप किया है। मेरी समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूँ।" बारम्बार यही एक विचार उसके मन में आता रहता है। यह आदत बुरी है। उन्हें ज्ञान नहीं होता कि अपने मन को किस प्रकार दूसरी दिशा में ले जायें। वे इन सन्तापकारी विचारों के शिकार बन जाते हैं। पुण्य और पाप सापेक्ष शब्द हैं। मन ही इनकी सृष्टि करता है। पाप तो केवल एक भूल है। भगवन्नाम का जप, दान और अनाहार व्रत से बड़े-से-बड़े पाप भी नष्ट हो जाते हैं। आप डरते क्यों हैं? बुरे से बुरा पापी भी मोक्ष प्राप्त कर सकता है और सबसे पावन बन सकता है। वाल्मीकि, जधाई, मधाई और अजामिल की प्रारम्भ में क्या दशा थी? क्या वे निकृष्ट श्रेणी के दुष्ट नहीं थे ? प्रणव और राम नाम का उच्चारण करें और साहसपूर्वक कहें कि 'मैं अब पवित्र हूँ, मैं अब पावन हूँ।' निराशा के लिए स्थान कहाँ है? किसी को निराश नहीं होना चाहिए। धर्म-कार्य करें, सदा प्रभु को याद रखें। अन्तर्यामी के प्रति सच्चे बने रहें।

विचार- नियन्त्रण की प्रविधि

विचारों को संयत करने के लिए नीचे कुछ आत्म-सुझाव दिये जाते हैं-

(१) मैं किसी वस्तु का ध्यान नहीं करूँगा।

(२) यदि मैं किसी वस्तु का ध्यान नहीं करूँगा तो मुझे शान्ति मिलेगी।

(३) मेरी इच्छा दृढ़ होती जा रही है। मैं अपने विचारों को संयत कर सकता हूँ।

(४) जब मैं विचार रहित हो जाऊँगा तो मुझे पूर्ण शान्ति मिलेगी। में उ निर्विचारावस्था के लिए बड़ी उत्सुकता से लालायित हूँ।

प्रत्येक विचार स्वतः दुर्बल होता है; क्योंकि मन एक ही समय में प्रतिक्षण बदलते हुए अगणित विचारों से विक्षिप्त रहता है। जितना अधिक विचारों को संयत किया जाता है, मन उतना ही एकाग्र होता जाता है और फलतः इसकी शक्ति बढ़ती जाती है। एक-एक करके बुरे विचारों को नष्ट कर देना चाहिए। निःसन्देह इसके लिए बड़े धैर्यपूर्वक कार्य करने की आवश्यकता होती है।

जैसे ही प्रातः काल धीरे-धीरे जागते हैं, प्रथम विचार जो प्रकट होता है वह अपने अस्तित्व का होता है कि 'मैं हूँ।' फिर गत सायंकाल की घटनाओं की स्मृति आती है। जो शक्तिशाली विचार आज सायंकाल में मन के ऊपर तैरते हैं, वे आगामी दिवस को प्रातःकाल बिस्तर से उठते ही शनैः-शनैः प्रकट होते हैं और आकार प्राप्त करते हैं। फिर वे विचार आते हैं जो दिन-भर में क्रिया-रूप में सम्पन्न होने वाले हैं। इसको सतर्क हो कर देखें।

जब कोई विचार मन में मँडराये, उसे पूरा कर लें। उसे दीर्घ काल तक लटकने मत दें। यह बार-बार फिर आयेगा और आपके लिए दुःखमय सिद्ध होगा। जब कभी किसी मित्र को पत्र भेजने का विचार मन में आये, इस काम को उसी समय समाप्त कर लें। इसमें विशेष विलम्ब मत करें।

दूषित विचारों को दूर करने के चार उपाय हैं। ज्ञानयोगी ओंकार अथवा सत्य में रह कर इसे करता है। यह विचार और उदासीन वृत्ति के द्वारा दूषित विचारों को नष्ट करता है। वह कहता है, "इसका मुझसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। मैं सच्चिदानन्द-स्वरूप हूँ। **शिवोऽहम्, शिवोऽहम्।** ये चेष्टाएँ मन की हैं। मैं मन से भिन्न हूँ।" भक्त इसे प्रार्थना और आत्म-निवेदन से नष्ट करता है। वह कहता है, "परमात्मन्। मैंने स्वयं अपने को, कर्मों के फल को और कर्मों को भी आपको समर्पित कर दिया है। मुझे शक्ति दीजिए कि इन दूषित विचारों को दूर भगा और नष्ट कर दूं।" उसे परमात्मा से आत्मनिवेदन के द्वारा सहायता मिलती है। ईश्वर काम-वासना का सत्व अथवा ओज में उदात्तीकरण कर देते हैं। राजयोगी या तो उठती हुई वृत्तियों का नाश करके या प्रतिपक्ष-भावना द्वारा, सात्त्विक प्रकृति के विरोधी तथा सकारात्मक विचारों को प्रतिस्थापित करके बुरे विचारों को नष्ट करता है।

ब्रह्म- विचार

सबसे प्रथम और अग्रणी विचार 'अहन्ता' का है। इसकी उत्पत्ति के पीछे ही और सब विचारों की उत्पत्ति होती है। पहले उत्तम पुरुष सर्वनाम 'मैं' मन में प्रकट हो जाता है, उसके पीछे ही प्रथम पुरुष सर्वनाम 'वह' और मध्यम पुरुष सर्वनाम 'तुम' प्रकट होते हैं। यदि मैं' का लोप हो जाये तो 'तुम' और 'वह' का भी लोप स्वयं हो जायेगा। यथायोग्य बाह्य- विचार की इस भ्रमपूर्ण तुच्छ 'मैं' को निकाल दें, इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग है ही नहीं।

विचार करने वाला विचार से भिन्न है। इससे पता चलता है कि आप मन से भिन्न हैं तथा मन में उठने वाले विकारों के मूक साक्षी हैं। आप कूटस्थ ब्रह्म हैं। आप प्रत्यगात्मा है।

संकल्प-विनाश

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ——राजयोग चित्त वृत्ति निरोध सिखाता है। चित्त की वृत्तियों का निग्रह योग है। यह आपको बल देता है जिससे आप विचारों को निकाल सके और यदि आवश्यक हो तो उन्हें वहाँ पर ही मार भी सकें। स्वाभाविक है कि इस कला के लिए भी अभ्यास आवश्यक है; परन्तु दूसरी कलाओं की भाँति जब एक बार इसे सीख लिया जाये तो इसमें कोई रहस्य या कठिनाई नहीं है। यह तो अभ्यास करने योग्य ही है।

देखिए! एक संकल्प का ही थोड़े से समय में कैसा विस्तार हो जाता है। मान लीजिए, आपके मन में मित्रों की चाय-गोष्ठी करने का संकल्प उठता है। चाय के एक विचार के साथ-साथ एकदम ही चीनी, दूध, प्याले, मेज, कुरसियाँ, मेजपोश, रूमाल, चम्मच, मिठाइयाँ, नमकीन आदि अनेक पदार्थों के विचार आ जाते हैं। यह संसार संकल्पों के विस्तार के अतिरिक्त और है क्या? फिर विचारों से स्वतन्त्र संसार कुछ वस्तु ही नहीं है। मन के विचारों का पदार्थों की ओर विस्तार कर लेने से बन्धन हो जाता है। संकल्पों का त्याग ही मोक्ष है। संकल्प के सूत्र में अगणित विचार माला की मणिकाओं की तरह गुँथे हुए हैं। यदि सूत्र टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाये तो आप स्वयं सोच सकत हैं कि इसमें भी हुई विचाररूपी मणिकाओं की क्या दशा होगी । आपको सदा सचेत रहना चाहिए कि जैसे ही मन में संकल्प उठे तत्काल ही उन्हें नष्ट कर दें । तभी आप सचमुच सुखी होगे। मन छल करता है। आपको उचित है कि इसके स्वरूप, स्वभाव और कार्य विधि को भली प्रकार समझ लें। तब आप इसे सुगमता से वश में कर सकेंगे।

प्राणायाम

प्राण मन का बाहरी लबादा है। सूक्ष्म प्राण के स्पन्द से विचार बनता है। प्राणायाम से भी आप मनोबल को बढ़ा सकते हैं और विचार-निग्रह तथा विचार संस्कृति का विकास कर सकते हैं। इससे धारणा और ध्यान में सहायता मिलती है, मन स्थिर होता है, रजोगुण और तमोगुण दूर हो जाते हैं तथा मन का मल जल जाता है।

प्रतिपक्ष भावना

यदि आप अपवित्र वस्तुओं को बार-बार सोचेंगे, तो दोहराये जाने से बुरा विचार शक्ति प्राप्त कर लेगा। उसको संवेग-बल मिल जायेगा। ऐसे विचारों को तुरन्त भगा देना चाहिए। यदि ऐसा करने में कठिनाई प्रतीत हो, तो उसके विपरीत ईश्वर-सम्बन्धी विचार धारण करें। उदात्त तथा उन्तकारी विचारों का सम्पोषण करें तब बुरे विचार स्वयं ही नष्ट हो जायेंगे। उच्च विचार कुविचारों को प्रभावहीन बनाने के लिए प्रभावकारी प्रतिकारक का काम करते हैं। प्रथम विधि से यह अधिक सुगम है। नित्य हजारों बार परमात्मा का नाम अपने से सद्विचारों को बल मिलता है। नित्य हजार बार **'अहं ब्रह्मास्मि'** कहने से यह विचार दृढ़ हो जाता है कि आप आत्मा हैं तथा यह विचार कि आप देह है, निर्बल होता जाता है।

शरीर तथा वाणी पर नियन्त्रण

यदि आप किसी दूषित विचार के संयम में समर्थ नहीं हैं, तो पहले शरीर और वाणी का निग्रह करें। शनैः-शनैः आपको मनोबल और इच्छा-शक्ति प्राप्त होंगे और धीरे-धीरे आप विचारों का निग्रह कर सकेंगे। यदि थोड़ी देर के लिए आप यह सोचें कि आप किसी कुविचार पर विजय नहीं प्राप्त कर सकेंगे तो तुरन्त उठ खड़े हों और शारीरिक परिश्रम का कार्य करने लग जायें। एक के बाद दूसरा प्रयत्न करते-करते कार्य सुगम हो जायेगा और थोड़े दिनों में आपको विचारों पर पूर्ण वशित्व प्राप्त हो जायेगा।

पहले स्थूल शरीर और वाणी का संयम करें। फिर धीरे-धीरे विचारों का निग्रह करें। दूसरों की बुराई मत करें। जिह्वेन्द्रिय को पहले वश में करें। धीरे-धीरे मन में दूसरों की बुराई का विचार नहीं आयेगा। मन अपने-आपसे कहेगा, “जब जिह्वा मेरे विचारों को प्रकट करने के लिए तैयार नहीं है तो मैं दूसरों की बुराई क्यों सोचूँ।" जब आपमें नैतिक सदाचार दृढ़ हो जाये तभी आप अपने कर्मों का निग्रह कर सकते हैं। जब आप किसी की बुराई करते हैं तो कई मनुष्यों के मन में विष घोल देते हैं। दूसरों की बुराई करना अधम काम है; किन्तु कभी-कभी घृणा और द्वेष के बिना न्यायपूर्ण आलोचना की जा सकती है।

निरर्थक या दूषित विचारों को शब्दों में विकसित मत होने दें। वाणी का निग्रह करें। तुरन्त मन को कुछ सद्विचारों की ओर लगायें। गीता के कुछ श्लोकों को याद करने की चेष्टा करें। कुछ प्रार्थना करने लगें। 'ॐ हरि', 'ॐ शिव', 'ॐ नारायण' आदि कुछ शब्द-मूर्तियाँ बनाये रखें। नित्य कुछ घण्टों के लिए मौन पालन बोलने और विचारने की स्वाभाविक प्रवृत्ति को रोकेगा, शक्ति का संचय करेगा और ध्यान, विचार-निग्रह तथा विचार-संस्कृति में सहायक होगा।

सतर्कता

कुविचारों के भारी विनाशकारी परिणाम को स्वयं जान लें। इसमें जब कभी कुविचार आयेंगे तो आप सचेत हो जायेंगे। जिस क्षण ऐसे विचार आयें, तुरन्त ही अपने मन को दिव्य विचारों, प्रार्थनाओं अथवा जप में लगाने का प्रयास करें। बुरे विचारों को दूर भगा देने की सच्ची लगन रहने से आप सचेत रहेंगे, यहाँ तक कि यदि स्वप्न में भी कोई कुविचार प्रकट होगा तो आप तुरन्त जाग उठेंगे। यदि आपके जागते रहने पर शत्रु प्रकट हो और आप यथेष्ट सचेत रहें तो उससे सामना कर लेना बहुत कठिन नहीं होता है।

मन को पूर्णतः व्यस्त रखें

जब मन शून्य होता है तो कुविचार प्रवेश करने की चेष्टा करते हैं। मैथुन का प्रारम्भ ही कुविचारों से होता है। कामपूर्ण दृष्टि से किसी की ओर देखने से ही आपने हृदय में मैथुन कर लिया। मानसिक क्रियाएँ ही सच्चे कार्य हैं। यह स्मरण रखें कि ईश्वर मनुष्य का न्याय उसके मानसिक भावों के अनुसार करता है और संसारी मनुष्य उसके बाहरी स्थूल कर्मो से करते हैं। । जब आप मनुष्य के आन्तरिक भावों को देखेंगे, तब आप गलती नहीं करें । मन को पूर्ण रूप से व्यस्त रखेंगे तो बुरे विचार मन में नहीं आयेंगे। अकर्मण्य मस्तिष्क शैतान की कार्यशाला है। मन को प्रतिक्षण देखते रहें। अपने को किसी-न-किसी काम जैसे सीना, बगीचा लगाना, बरतन मांजना, झाडू लगाना, पानी भरना, पढ़ना, ध्यान करना, जप करना, परमात्मा के भजन गाना, प्रार्थना करना, बड़ों की या रोगियों की सेवा में संलग्न रखें व्यर्थ की गपशप से बचे। मन में गीता, उपनिषद् योगवासिष्ठ आदि के उत्कृष्ट विचार भरें।

विचार की सात्त्विक पृष्ठभूमि

बहुत से मनुष्य सदा किसी स्थूल पदार्थ की आवश्यकता मानेंगे जिसके सहारे अपने विचार मन में स्थिर कर सकें, जो उनके विचार स्वरूप का केन्द्र-बिन्दु बन सके। यह मन का—स्वभाव है। मन को स्थिर करने के लिए विचारों की पृष्ठभूमि चाहिए।

सात्विक पृष्ठभूमि ही रखनी चाहिए। मन जिस पदार्थ को तत्परता से सोचता है. उसी का रूप बन जाता है। यदि वह सन्तरे का ध्यान करता है तो सन्तरे का रूप बन जाता है और यदि वंशीधारी श्रीकृष्ण का ध्यान करता है तो उनका ही रूप बन जाता है। आपको उचित है कि मन को यथावत् प्रशिक्षित करें और आत्मसात् करने के लिए इसके सामने उचित सात्त्विक पदार्थ ही रखें।

लक्ष्य तक पहुँचने के लिए आपको अपने विचारों की पृष्ठभूमि सात्विक बनानी चाहिए। यदि आप भगवान् कृष्ण के भक्त हैं तो आपको उनके रूप-स्मरण और **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** का जप करने की पृष्ठभूमि बनानी चाहिए। निर्गुण उपासक (वेदान्ती) को ओंकार-चिन्तन और उसके अर्ध-स्मरण (सच्चिदानन्द, व्यापक, परिपूर्ण आत्मा) की पृष्ठभूमि बनानी चाहिए। संसार में कार्य करते रहें और जिस क्षण भी चित्त को अवकाश मिले, अपने विचारों की पृष्ठभूमि का चिन्तन प्रारम्भ कर दें चाहे वह आपकी रुचि, स्वभाव और सामर्थ्य के अनुसार सगुण हो या निर्गुण । निरन्तर चिन्तन से एक स्वभाव बन जाता है और मन बिना प्रयास के ही विचार की पृष्ठभूमि की ओर दौड़ने लगता है।

यह बड़े खेद की बात है कि बहुसंख्यक लोगों का कोई आदर्श जीवन का कोई कार्यक्रम और विचार की पृष्ठभूमि ही नहीं होती। वे नाश की ओर ही जाते हैं। साधारणतः विवाहिता स्त्री के विचारों की पृष्ठभूमि कामपूर्ण होती है। वृद्धा माता के विचारों की पृष्ठभूमि अपने पुत्रों और पौत्रों की ओर प्रेमपूर्ण होती है। बहुसंख्यक मनुष्यों के विचारों की पृष्ठभूमि अधिकतर ईर्ष्या और द्वेष की होती है। विश्वविद्यालयों से सम्मानपत्र प्राप्त शिक्षित कहलाने वाले लोगों का भी कोई लक्ष्य (उद्देश्य), कार्यक्रम और विचार का आधार नहीं होता कि ज्ञान के सामने तो विश्वविद्यालयों की यह शिक्षा भूसे के ही है। सहायक उपायुक्त को जब निवृत्तिवेतन मिलता है तो वह तीसरा विवाह कर लेता है और किसी रियासत में दीवान पद पर नियुक्त हो जाता है।

सारी मनुष्य यौन विचारों और घृणा, क्रोध और प्रतिकार के विचारों का शिकार रहता है। यही दो प्रकार के विचार उसके मन पर अधिकार बनाये रखते हैं। वह इनका ही दास बना रहता है। वह इनसे मन को हटा कर किसी उत्तम विचारों में लगाने का उपाय नहीं जानता। वह विचारों का नियम नहीं जानता। वह मन के स्वभाव और इसकी जटिल क्रिया-शैली से अनभिज्ञ होता है। संसारी सम्पत्ति और विश्वविद्यालय में प्राप्त किये हुए पुस्तकीय ज्ञान के रहते हुए भी उसकी दशा बड़ी शोचनीय हो जाती है। उसकी विद्या देकर है। उसमें विवेक का उदय नहीं हुआ है। उसे सन्तों,

शास्त्रों और ईश्वर में श्रद्धा नहीं है। अपनी दुर्बल इच्छा-शक्ति के कारण वह अपनी दुर्वासनाओं, तृष्णाओं तथा प्रलोभनों को रोक नहीं सकता। उसके संसारी मद, संसारी मोह और संसारी भ्रम को दूर करने के लिए निरन्तर सत्संग ही एकमात्र प्रभावकारी औषधि है।

जीविका - वृत्ति से निवृत्त हो जाने पर प्रत्येक मनुष्य को अपने विचारों का एक आधार बनाना चाहिए और अपना समय दार्शनिक स्वाध्याय और दैवी ध्यानाभ्यास में बिताना चाहिए। असम्बद्ध विचार की पुरानी आदत को अच्छे विचारों की नवीन आदत बना कर बदल देना चाहिए। पहले अच्छे विचारों की ओर झुकाव होगा। अभ्यास जारी रखने से धार्मिक सहायक विचारों की निश्चित आदत पड़ जायेगी। आपको बहुत अधिक प्रयास करना पड़ेगा। पुरानी आदतें बार-बार लौट कर आने की चेष्टा करेंगी। जब तक आप सद्विचारों की आदत में दृढ़ता से स्थित नहीं हो जाते, आपको बारम्बार मन में मान्विक विचार, दैवी विचार, गीता के विचार, भगवान् कृष्ण के, भगवान् राम के, उपनिषद् आदि के विचार करने होंगे। अब नये-नये मार्ग और नालियाँ बन जायेंगी जैसे ग्रामोफोन की सुई प्लेट में एक छोटा-सा निशान बनाती है इसी प्रकार सात्त्विक विचार मन और मस्तिष्क में नयी-नयी स्वस्थ नालियाँ बनायेंगी, नये संस्कार बन जायेंगे।

निर्विचार योगी की महिमा

निरन्तर और तीव्र अभ्यास के द्वारा आप विचार-हीन हो सकते हैं। विचार-रहित संसार में कार्य करने वाले पुरुष से अधिक संसार की सहायता करता है। साधारण मनुष्य इस बात को कठिनाई से समझ सकते हैं। जब आप वृत्ति रहित (विचार रहित) होते हैं तो आप संसार के प्रत्येक कण में व्याप्त हो जाते हैं और सारे संसार को उन्नत कर देते हैं। जड़भरत और वामदेव-जैसे वृत्ति-रहित ज्ञानियों के नाम आज भी स्मरण किये जाते हैं। उन्होंने कभी आश्रम नहीं बनाये, कभी व्याख्यान नहीं दिये कभी पुस्तकें नहीं छपवाय और कभी शिष्य नहीं बनाये फिर भी इन वृत्ति-रहित ज्ञाने लोगों के मन पर कितना भारी प्रभाव डाला था। ऐसे वृत्ति रहित ज्ञानियों की जय हो।

परिच्छेद-२०

वासनाएँ

वासनाएँ कैसे प्रकट होती हैं

मन के सरोवर में जो लहर उठती है, उसे वासना कहते हैं। वासना का अधिष्ठान कारण-शरीर है। वहाँ यह बीज-रूप में रहती है और मन-सरोवर में प्रकट होती है। जैसे बीज में पुष्प छिपे रहते हैं वैसे ही अन्तःकरण में वासनाएँ, अन्तर्हित रहती हैं। नित्य नये-नये पुष्प प्रस्फुटित होते हैं। एक-दो दिन में वे मुरझा जाते हैं। इसी प्रकार नयी-नयी बासनाएँ एक-एक करके उन्नत होती हैं, मन की सतह पर बाहर आती हैं, जीवों के मन में सकल्प उत्पन्न करके उन्हें भोग-पदार्थों को प्राप्त करने और भोगने की प्रेरणा करती है। बासनाएँ कर्म की निमित्त बनती हैं और कर्म वासनाओं की पुष्टि करते हैं। यही दुश्चक्र है। ब्रह्मज्ञान के उदय होने पर सभी वासनाएँ भस्म हो जाती हैं। वास्तविक शत्रु अन्तस्थित बासनाएँ हैं। उन्हें नष्ट करें। उनका उन्मूलन करें। वे दृढमूल हैं।

बीज के अन्दर सूक्ष्म रूप से आम का सम्पूर्ण वृक्ष शाखा और पत्तियों सहित छिपा हुआ है। इसके प्रकट होने के लिए समय की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार बाल्यावस्था में काम-वासना छिपी रहती है, १८ वर्ष की अवस्था में प्रकट होती है, २५ वर्ष की आयु में सारे शरीर में व्याप्त हो जाती है, २५ वर्ष से ४५ वर्ष तक बड़ा अनर्थ करती है और फिर शनैः शनैः क्षीण होने लगती है। मनुष्य २५ से ४५ वर्ष तक की अवस्था में बहुत से अपराध तथा अनिष्ट करते हैं। यह जीवन का बड़ा क्रान्तिकारी काल होता है। छोटी अवस्था में बालक और बालिकाओं के स्वभाव में कोई विशेष भेद नहीं होता। यौवनारम्भ होने पर वे अपने-अपने स्वभाव को प्रकट करते हैं।

चपलता

चपलता मृदु प्रकार की वासना है। यह थोड़े समय तक ही रहती है। दो प्रकार की मुख्य चपलताएँ होती हैं। एक जिह्वा-चपलता है जिसमें बार-बार अनेक पदार्थ खाने की इच्छा होती है। यह विकृत क्षुधा का रूप है। जो धनी मनुष्य विलासपूर्ण जीवन यापन करते हैं, उनको जिह्वा-चपलता हुआ करती है। दूसरी उपस्थ-चपलता होती है जिसमें जननेन्द्रिय रति-सम्भोग (स्पर्श) का सुख बार-बार चाहती है।

वासना अशान्ति तथा बन्धन उत्पन्न करती है

धन की अशान्ति वासना के कारण होती है। ज्यों-ही वासना प्रकट होती है, त्यों-ही मन और पदार्थ के बीच विषय-वृत्ति-प्रवाह के द्वारा एक घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाता है। जब तक मन को यह पदार्थ न मिल जाये और उसे भोग न लें तब तक यह पीछे नहीं हटता है। जब तक उस पदार्थ का भोग प्राप्त नहीं होता मन की अशान्ति बनी रहती है। जब एक विषय-पदार्थ प्राप्त नहीं हो जाता और भोग नहीं किया जाता, तब तक वृत्नि करावा पदार्थ की ओर बहती रहती है। साधारण मनुष्य अपनी दुर्बल इच्छा के कारण किसी वासना को दबा नहीं सकता।

मन की वासनाओं के कारण ही विषय-पदार्दो की ओर आकर्षण होता है और उन वासनाओं के लोप से बन्धन का भी लोप स्वभावतः हो जाता है। यदि मन के अन्दर कोई वासना न हो तो बाहर भी किसी पदार्थ के लिए आकर्षण, अनुराग या उत्तेजना नहीं होती। आपके सारे दुःखों तथा क्लेशों का कारण वासनाएँ हैं। ईश्वर-सृष्टि (ईश्वर के बनाये हुए पदार्थ) से कोई कष्ट नहीं होता। जल आपकी तृषा शान्त करता है, वायु आपको सुख देती है, धूप से जीवन मिलता है, अग्नि से गरमी मिलती है; किन्तु जीव-सृष्टि से ही मनुष्य बन्धन में पड़ता है। अहंकार, क्रोध, अभिमान, आसक्ति-ये सब जीव-सृष्टि हैं। शुद्ध संकल्प रखें; परन्तु वासना को मत रहने दें।

केवल सदाचार-पालन से ईर्ष्या, राग, द्वेष, काम, क्रोधादि को दबाया जा सकता है; परन्तु उनका पूर्णतया उन्मूलन नहीं किया जा सकता। इन अपवित्र अशुभ वासनाओं को सदाचार-संस्कृति के द्वारा दुर्बल किया (तनु-अवस्था में रखा) जा सकता है। उनका रूप सूक्ष्म हो जाता है। वे किसी व्यक्ति की हानि नहीं कर सकीं। वे पूर्ण संयम में रहती है।

दमन नहीं, वरन् उन्मूलन ही समुचित उपाय है

कोई साधक थोड़े समय के लिए वासना को दबा सकता है, किन्तु उपयुक्त अवसर मिलते ही यह फिर दूनी प्रबलता के साथ प्रकट हो जाती है। जैसे मन्त्री राजा की आज्ञा मानते हैं वैसे ही पाँचों इन्द्रियाँ मन के आदेशानुसार कार्य करती हैं। इसलिए अपने ही शुद्ध मन और उचित प्रयत्नों द्वारा आपको पदार्थों की वासनाओं का उन्मूलन करना चाहिए। संसार-सागर में भ्रमती हुई मनुष्य-रूपी नौका को वासनाओं की रस्सी ने बाँध रखा है, आपको उचित है कि दृढ़ प्रयत्न द्वारा इस लम्बी रस्सी को तोड़ कर फेंक दें। वासना को मूल से उखाड़ फेंकना चाहिए। यदि विचार और विवेक के द्वारा इन वासनाओं का क्षय कर दिया जाये तो नित्य चंचल मन उसी प्रकार शान्त हो जायेगा जैसे घी के बिना दीपक शान्त हो जाता है।

वासनाओं को कैसे नष्ट करें

शम

साधक के लिए विज्ञानमय-कोश बड़े दुर्ग का काम देता है। वहाँ से वह वासनाओं पर, जब कभी वे कारण-शरीर से मन में निकलने का प्रयत्न करें, आक्रमण कर सकता है। विज्ञानमय-कोश की सहायता से, शम के अभ्यास से साधक एक-एक करके वासनाओं का नाश कर सकता है। जैसे ही वे शिर उठाने की कोशिश करें, साधक को उन्हें कुचल देना चाहिए। उन्हें अंकुरित होने का अवसर नहीं देना चाहिए। यह वासना-त्याग है। यह युद्ध अन्दर से ही होता है।

जब कोई वासना या संकल्प मन में उठता है तो मन अन्दर इन्द्रियों को एक धक्का-सा देता है। यही धक्का अन्तर इन्द्रियों से बाह्य करणों-जैसे हाथ, पाँव, आँख, कान आदि-तक पहुँचता है। शम का अभ्यास इसी धक्के को रोकता है जो कि सारी इन्द्रियों और बाह्य करणों की गति का मूल कारण है।

वासनाओं के उन्मूलन से जो चित्त को शान्ति होती है, उसे शम कहते हैं। शमयुक्त पुरुष का अन्तःकरण हिम से भी अधिक शीतल होता है। उसकी शीतलता की समता चन्द्रमा की शीतलता भी नहीं कर सकती। संसारी मनुष्य का अन्तःकरण साधारणतः धधकती हुई भट्टी के समान होता है। शमयुक्त पुरुष इष्ट वस्तु की प्राप्ति से हर्षित नहीं होता और अनिष्ट वस्तु के प्राप्त होने पर शोक नहीं करता। उसका मन सदा सन्तुलित रहता है। उसका कोई शत्रु नहीं होता। शमयुक्त पुरुष के आध्यात्मिक परमानन्द की तुलना में एक सम्राट् का सुख भी तुच्छ होता है। मोक्ष के चार प्रहरियों में से एक शम है। यदि आपमें शम है तो इसके शेष तीनों मित्र अर्थात् सन्तोष, विचार और सत्संग भी आपके पास स्वयमेव आ जायेंगे।

दम

इन पर आक्रमण बाहर से भी करना चाहिए। बाह्यवृत्ति-निग्रह दम के द्वारा होना चाहिए। बाहर से विषय-स्पन्दनों को इन्दियों के मार्ग से मन में प्रवेश करने नहीं देना चाहिए। अकेला शम पर्याप्त नहीं है। दम के द्वारा इन्द्रियों को कुण्ठित कर देना चाहिया उदाहरणार्थ मिठाई की वासना को उसके अन्तर में उठते ही शम के द्वारा वासना-त्याग से नाश करना चाहिए और मिठाई को देखने से जो बाह्य वृत्ति उठती है, उसको बाजार में चलते हुए मिठाई की ओर से दृष्टि हटाने से और चीनी खाना छोड़ देने से कुचल देना चाहिए। मन के संयम में दम शम का पूरक है। वासनाओं के पूर्ण उन्मूलन में दस सहायक है।

यदि आप चाय पीने की पुरानी आदत को छोड़ दें तो कहा जा सकता है कि आपने स्वाद को किसी हद तक वश में कर लिया है, एक वासना को क्षीण कर दिया है। इससे आपको थोड़ी शान्ति मिलेगी; क्योंकि आप चाय, दूध, चीनी आदि प्राप्त करने के विचार और प्रयत्न से मुक्त हो गये हैं। दार्शनिक और साधक के लिए विचार करना, देखना और सुनना सभी दुःखदायी हैं। संसारी मनुष्यों के लिए यह सुखदायक है। जो शक्ति आपको चाय के लिए दौड़ने को बाध्य कर रही थी, वह अब इच्छा-शक्ति में परिणत हो चुकी है। एक वस्तु के त्यागने से आपको शान्ति और इच्छा-शक्ति मिलती है। यदि आप पन्दरह वस्तुओं का त्याग कर दें तो आपकी मानसिक शान्ति तथा इच्छा-शक्ति और भी प्रबल हो जायेगी। यह त्याग का फल है। इसलिए त्याग में आपको हानि नहीं होती। आपको विशेष ज्ञान, आनन्द और शक्ति मिलती है। किसी उच्चतर पदार्थ के लिए आप साधारण पदार्थ का त्याग करते हैं। क्या कोई मनुष्य ऐसा है जो चीनी के लिए गुड़ को नहीं त्याग देगा? यदि आप एक बार एक वासना का संयम कर लें तो दूसरी वासनाओं का संयम भी आपके लिए सुगम हो जायेगा; क्योंकि इससे आपको शक्ति प्राप्त होगी।

स्वाध्याय तथा ध्यान

प्रारम्भ में अपनी शास्त्र-वासना को बढ़ायें। अपने मन को प्रामाणिक दार्शनिक ग्रन्थों के अध्ययन में लगायें। इस प्रकार आप देह-वासना और लोक-वासना को घटा सकते हैं। बाद में आपको शास्त्र-वासना भी त्याग देनी होगी। आपको अपना सारा समय तथा अपनी सारी शक्ति केवल ध्यान के अभ्यास में ही लगानी चाहिए। भली प्रकार किये हुए विचार, ब्रह्म-ध्यान, वैराग्य और त्याग के द्वारा वासना-क्षय होता है।

विचार तथा ब्रह्म-भावना

ज्ञानी जानते हैं कि वासनाओं से युक्त मन बन्धन में ले आता है और वासना से सर्वधा शून्य मन मुक्त ही कहलाता है। जैसे पिंजरे में बन्द हुआ सिंह उसकी शलाकाओं की तोड़ कर बाहर निकल आता है इसी प्रकार ज्ञानी विचार, निदिध्यासमकाओं कसे -भावना द्वारा वासनाओं का क्षय करके इस शरीर रूपी पिंजरे से विजयी हो कर बाहर विकल आता है। आप स्वरूप-भावना के द्वारा जितना अपनी वासनाओं को क्षीण करेंगे उतना ही अधिक आप सुखी होंगे। जितनी-जितनी वासनाएँ, दुर्बल होती है उसी अनुपात में मन भी क्षीण होता जाता है। मन सिवाय वासनाओं की गठरी के और कुछ नहीं है। पुनर्जन्म की अनन्त श्रृंखलाओं को उत्पन्न करने वाली वासनाओं के सिवा मन कुछ भी नहीं है। मन का वास्तविक स्वरूप वासनाएँ हैं। मन और वासना एक ही हैं।

अहंकार पर विजय

यदि आप अहंकार का नाश करके इन्द्रियों को वश में कर लें तो वासनाओं का स्वयमेव क्षय हो जाता है। सारे दुःखों का मूल कारण अहंकार ही है। जिस प्रकार कुटुम्ब के अन्य लोग पिता के आश्रित रहते हैं वैसे ही सारी तृष्णाएँ, वासनाएँ, कामनाएँ आदि शरीर-रूपी कुटुम्ब के प्रधान, अहंकार के आश्रित रहती हैं।

सात्विक मन-रूपी भण्डार में से बराबर **'अहं ब्रह्मास्मि'**-वृत्ति (ब्रह्माकार-वृत्ति) बनाते रहें। यह अचूक औषधि है। इसे बराबर अपने पास रखें और जब कभी अहंकारमय 'मैं-पन' के मिथ्या विचार दबाने लगें, इसी ब्रह्माकार-वृत्ति के प्रयोग से रोगमुक्त हो जायें। जब आप मन के इस दुःखदायक अहंकार का नाश करेंगे और इन्द्रिय-रूपी शत्रुओं को जीत लेंगे, तभी जाग्रत रहने वाली वासनाएँ शान्त होंगी।

मोक्ष का अर्थ

सैकड़ों जन्मों के अभ्यास से जो भ्रमपूर्ण संसारी वासनाएँ उत्पन्न हो चुकी हैं, वे दीर्घ काल तक योगाभ्यास के बिना कभी नष्ट नहीं होतीं। इसलिए हे साधको! विवेकपूर्ण प्रयत्नों के द्वारा भोग-कामना को दूर हटा कर मन की उस अवस्था का अभ्यास करें जिसमें यह वासनाओं से बिलकुल शून्य हो जाता है।

मोक्ष का अर्थ यह नहीं है कि समस्त संसारी कार्यों से भौतिक वियोग कर लिया जाये; अपितु इसका अर्थ ऐसी मानसिक स्थिति है जो सारी मलिन वासनाओं से रहित हो कर संसारी वस्तुओं में सामान्य रूप से कार्य करता रहे। संसार में रहते हुए संसार के द्वारा ही ईश्वर-प्राप्ति करनी चाहिए। गीता का मुख्य उपदेश यही है- "निगृहीत चित्त पुरुष रागद्वेषादि से रहित स्व-वशीभूत इन्द्रियों द्वारा विषय-समूह को ग्रहण करता हुआ भी आत्म-प्रसाद प्राप्त करता है" (गीता : २-६४)। योगवासिष्ठ का भी मुख्य उपदेश यही है।

ब्रह्म में कोई वासना नहीं है। वासनाओं का पूरा-पूरा नाश केवल निर्विकल्प समाधि में ही हुआ करता है। केवल निर्विकल्प समाधि ही अशुद्ध वासनाओं के बीज को पूर्णतया विदग्ध कर सकती है। ब्रह्म-ज्ञान के द्वारा विषय-भोग की कारण-भूत कामनाओं का नाश होता है। जब सभी वासनाएँ लुप्त हो जाती हैं तो मन उसी प्रकार शान्त हो जाता है। जैसे घी-रहित दीपक।

परिच्छेद- २१

कामनाएँ

अपने मानस-दक्षेत्र को स्वच्छ कर उसमें अपने प्रेम-पात्र प्रभु को आसीन करने का स्थान बनायें। सारे सांसारिक विचारों को बाहर निकाल दें जिससे उनका सिंहासन उनके अनुरूप हो। लाखों कामनाओं, आकांक्षाओं तथा उद्देश्यों ने आपको घेर रखा है। ये कामनाएँ प्रभु के क्षेत्र (हृदय) को खाली नहीं कर देती तब तक आप प्रभु के जब तक ये क लिए स्थान कैसे बना सकते हैं?

कामना क्या है?

भावात्मक मन का एक स्वरूप कामना है। इसमें मन को बहिर्गामी बनाने की शक्ति है। इच्छा ईंधन है और विचार अग्नि है। इच्छा-रूपी ईंधन द्वारा विचार-रूपी अग्नि जलती रहती है। यदि ईंधन निकाल दिया जाये तो विचार की अग्नि अपने गर्भ में प्रवेश कर जाती है। यदि इच्छाओं को भेद कर विचार को रोक दिया जाये तो मन ब्रह्म में वापस लौट जाता है।

मन की शुद्धि तब होती है जब वह सारी कामनाओं से हीन हो कर सुख और दुःख में उदासीन रहे और कोई वस्तु इसको आकृष्ट न कर सके। तब ही यह माया के फन्दै से वैसे ही मुक्त हो जाता है जैसे पिंजरे से निकला हुआ पक्षी, जो इच्छानुसार आकाश में घूमता है।

इच्छा, विचार और अहंकार एक दुश्चक्र है। यदि उनमें से एक को भी नष्ट कर दें तो शेष दोनों स्वयं ही मर जाते हैं। मन-मन्दिर के ये तीनों स्तम्भ हैं। ये मनश्श्रृंखला की तीन कड़ियाँ हैं। इनमें से एक कड़ी के टूटने से सारी जंजीर टूट जाती है।

कामनाएँ क्यों उत्पन्न होती हैं?

मन में कामनाएँ क्यों उत्पन्न होती हैं? आनन्द-अभाव के कारण। कामना का कारण बाह्य पदार्थों का अस्तित्व है। उत्सुकता ही मन में कामना बन जाती है। अभिरुचि और भाव कामना से पहले आते हैं। आशा और अपेक्षा से कामना पुष्ट होती है।

विक्षेप मन का स्वभाव ही है

जैसे ताप अग्नि से अपृथक्करणीय है वैसे ही विक्षेप मन से अपृथक्करणीय है। यह साधकों को बहुत दुःख देता है। यह दृढ़ इच्छा-शक्ति वाले पुरुषों के निश्चय को भी अचानक ही नष्ट कर डालता है। यदि विक्षेप न रहे तो मन का अस्तित्व नहीं रहता। यह विक्षेपयुक्त मन संसार की रचना करता है। मल भी सुगमता से दूर किया जाता है; परन्तु विक्षेप दूर करने के लिए साधक को दीर्घ काल तक बड़ा सुदृढ़ प्रयत्न करने की आवश्यकता है। जब निर्भीक उद्दालक निर्विकल्पावस्था में प्रवेश करने का प्रयत्न कर रहे थे तो उन्हें इस चित्त-विक्षेप के कारण बहुत कष्ट सहना पड़ा था। राजा भर्तृहरि जब दुःखदायिनी विक्षेप-शक्ति पर प्रभुत्व पाने का प्रयत्न कर रहे थे तब उनको भी ऐसी ही कठिनाई का सामना करना पड़ा था। विक्षेप माया है। विक्षेप अशुद्ध वासना है। निरन्तर उपासना, योगाभ्यास या ब्रह्म-विचार द्वारा विक्षेप-शक्ति का नाश करना होगा, तब शान्ति स्वयं ही आ जायेगी।

कामनाओं के प्रकार

मन के अन्दर कामना का होना ही सच्ची मलिनता है। कामवासना, प्रतिजाति के प्रति अशिष्ट आकर्षण निकृष्टतम मलिनता है। इससे ही वास्तविक बन्धन होता है। आप स्त्री, सन्तान तथा धन का परित्याग कर सकते हैं; परन्तु नाम और यश की कामना को त्यागना बहुत कठिन है। मोक्ष के मार्ग में यह कामना बड़ी बाधा होती है। यह माया का सर्वाधिक प्रबल शत्रु है जिससे वह संसारी मनुष्यों का वध करती है। यदि नाम और यश की थोड़ी-सी भी कामना रहती है तो सत्य प्रकट नहीं होता। सत्य तो स्वयं ही प्रकाशित हो जाता है। इसको विज्ञापन की आवश्यकता नहीं होती। यह सारे प्राणियों और पदार्थों का आत्मा ही है।

अनिर्बुद्ध कामनाएँ

जब आप सारी कामनाओं का त्याग भी कर चुके हों, फिर भी मन में कई सूक्ष्म अज्ञात कामनाएँ छिपी रहती हैं जो पहचानी नहीं जा सकीं। वे बड़ी भयानक होती हैं। अतएव आपको अत्यन्त सावधान रहना होगा। यदि आप सतर्क नहीं रहेंगे तो कामनाओं के अन्तप्रवाह आपको किसी क्षण भी पटक देंगे, आपका वैराग्य नष्ट कर देंगे और अन्त में आपका पतन कर देंगे। मैंने ऐसे बहुत से योगभ्रष्टों को देखा है जिनका इन सूक्ष्म निहित वासनाओं के अभिभूत करने वाले प्रभाव के कारण योग से पतन हो गया। जब तक आपमें सुक्ष्म समाधि प्राप्त करने की आशा नहीं कर सकते। आपमें वास्तविक परवैराग्य भी समृद्ध नहीं हो सकता।

तृष्णा

चाहे आप वृद्ध हो जायें, आपके बाल श्वेत हो जायें; परन्तु मन तो युवा ही रहता है। शक्ति भले ही क्षीण हो जाये; परन्तु बड़ी अवस्था में भी तृष्णा बनी रहती है। तृष्णा जन्म का वास्तविक कारण है। तृष्णा के बीज से संकल्प और कर्म उत्पन्न होते हैं। संसार-चक्र इन्हीं तृष्णाओं के कारण चलता रहता है। तृष्णा को प्रारम्भ में ही कुचल दें, तभी आप सुरक्षित रह सकते हैं। आपको मोक्ष प्राप्त हो जायेगा। ब्रह्म-भावना, ब्रह्म-विन्तन, ओंकार का ध्यान और श्रद्धा-युक्त भक्ति इन दृढ़ तृष्णाओं के बीज को उखाड़ फेंकेंगे। इनको चारों ओर से खोद निकालना होगा और ऐसा भस्म करना होगा कि ये फिर न उभर सकें। इसके बाद ही आपके प्रयत्न निर्विकल्प समाधि का फल प्रदान करेंगे।

'प्रेम करो, मार डालो', 'विवाह करो और ब्रह्मचर्य पालन करो', 'इच्छा-रहित हो कर विषय-भोग करो', 'फल की वांछा बिना कर्म करो' -ये विरोधाभास-युक्त शब्द हैं। स्थूल व्यावहारिक बुद्धि-युक्त मनुष्य कठिनाई से इसका तात्पर्य समझ सकता है। इसके लिए सूक्ष्म शुद्ध बुद्धि की आवश्यकता है। मान लें, आप गत पन्दरह वर्षों से अत्यधिक सिगरेट पीते थे। फिर आपने पाँच वर्ष तक सिगरेट पीना छोड़ दिया। सिगरेट पीने की बासना भी मर गयी। छठे वर्ष में आपका कोई मित्र आपको सिगरेट देता है। अब आपको सिगरेट पीने की वासना भी नहीं है। यदि आप अब सिगरेट स्वीकार करके अपने मित्र को प्रसन्न करने के लिए पी लें तो यह शुद्ध भोग कहलायेगा। आपने बिना किसी वासना के इसका भोग किया है। ईश्वर शुद्ध भोग भोगता है।

कामनाओं की तृप्ति केवल भ्रामक सुख प्रदान करती है

कामना मन और इन्द्रियों को भड़काती है। जब इष्ट पदार्थों के भोग से कामना तृप्त हो जाती है, तो मन को क्षणिक तृप्ति मिल जाती है। इच्छित पदार्थों की प्राप्ति से उत्पन्न हुई प्रसन्नता को हर्ष कहते हैं। जो-कुछ प्राप्त हुआ है, उसका रसास्वाद आनन्द कहलाता है। जहाँ हर्ष है वहाँ आनन्द भी है; परन्तु जहाँ आनन्द है वहाँ हर्ष का होना

आवश्यक नहीं है। हर्ष तो उस थके हुए पथिक के समान है जो दूर से चलने के बाद जल का शब्द सुनता है या छायादार जंगल देखता है। आनन्द उसको पीना और जंगल की छाया में प्रवेश करना है।

जब कामना होती है, तभी सुख होता है। सुख का कारण कामना है। जब कामना नहीं होती तो सुख नहीं हो सकता। जब कभी भोग की इच्छा होती है, तभी उसमें सुख होता है। भूख नहीं हो तो सुस्वादु भोजन आपको सुख नहीं दे सकता। प्यास न हो तो स्फूर्तिदायक पेय भी कुछ फल नहीं दे सकता। इसलिए भूख ही सबसे अच्छा स्वाद देती है। गरम दूध का एक प्याला आनन्द देता है, दूसरे प्याले से अरुचि होने लगती है। भोग के पश्चात् ही तृप्ति मिलती है। इसलिए दूसरा प्याला पीने के बाद अरुचि उत्पन्न होती है। दूध में सच्चा आनन्द नहीं होता, आनन्द तो आत्मा में होता है। भ्रान्ति और अविद्या के कारण ही पदार्थ (दूध) में सुख का आभास दिखायी पड़ता है। यह भ्रान्ति-सुख है। यदि दूध में सच्चा सुख होता तो यह सदा सब मनुष्यों को सुख पहुँचाता; परन्तु ऐसी बात नहीं है।

मन में एक कामना उठती है। अब यह एक वृत्ति-रूप में है। यह वृत्ति जब तक आप इष्ट पदार्थ को भोग कर तृप्ति प्राप्त नहीं कर लेते तब तक आपके मन में उद्वेग पैदा करती रहती है। भोग के उपरान्त शान्ति या आनन्द होता है। मन में एक और कामना उठती है। पहली कामना के तृप्त होने और दूसरी कामना के उठने के बीच के समय में शुद्ध आनन्द रहता है; क्योंकि इस समय मन होता ही नहीं। मन विश्राम में होता है। आप ब्रह्म के साथ संयुक्त होते हैं। दोनों कामनाओं के बीच में शुद्ध आनन्द की अवस्था ब्रह्म है। यदि आप साधना द्वारा ब्रह्म-चिन्तन जारी रख कर और दूसरी कामनाओं को न उठने दे कर इस आनन्द के काल को बढ़ा सकें तो आप समाधि में रहेंगे। दोनों वृत्तियों के बीच का समय वास्तविक सन्धि है।

कामनाएँ अतोषणीय होती हैं

मन कामनाओं के द्वारा बड़ा अनर्थ करता है। जब कोई कामना होती है, तब आप सोचते हैं कि इसकी प्राप्ति से आपको पूर्ण सुख मिल जायेगा। आप अभीप्सित पदार्थ की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं। जैसे ही आपको वह मिल जाता है तो थोड़ी-सी मिथ्या तुष्टि होती है। फिर मन अशान्त हो जाता है। इसे नये संवेदन की आवश्यकता होती है। जुगुप्सा तथा असन्तोष का अनुभव होने लगता है। फिर इसे भोग के लिए नवीन पदार्थ चाहिए। इसी कारण वेदान्ती इस संसार को कल्पना-मात्र कहते हैं।

कामनाएँ असंख्य, अतोषणीय और अजेय होती हैं। विषय-भोगों से तृप्ति नहीं मिल सकती। ऐसा सोचना भूल है कि भोग से तृप्ति मिलती है। भोग से इच्छा भड़कती है।

भोग से तुमि की आशा करना अग्नि में घी डालने के समान है। भोग से कामना बलवती, पुष्ट और तीव्र हो जाती है। प्राचीन काल के राजा ययाति का उदाहरण देखें। उसने सहस्रों वर्ष तक काम वासना की तृप्ति के लिए अपने पुत्र से उसकी युवावस्था माँग ली थी। अन्त में अपनी वृद्धावस्था में उसने बड़ी कटुता से कहा, "शोक है, मैं कैसा मूर्ख हैं। अब मेरी काम-वासना बढ़ती जा रही है। कामनाओं का अन्त नहीं है। है परमात्मा। भन अपना जीवन ही व्यर्थ गंवा दिया। मुझ पर दया करो। मुझे इस संसारपंक से उबार लो।" यह महाभारत में मिलता है। गीता के तृतीय अध्याय के उनतालिसवें श्लोक में लिखा है, **''कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च"** अर्थात् कामना अग्नि-ज्वाला के समान दुष्पूर है-तृप्त नहीं हो सकती।

ज्ञान-प्राप्ति के लिए निष्कामता आवश्यक है

यदि आप इन्द्रिय-भोग की वासनाओं और मन की अनैतिक वृत्तियों से मुक्त हैं तो आप ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। ज्ञान की प्राप्ति के लिए शरीर का ऐन्द्रिय पदार्थों से विलगाव तथा मन का अनैतिक स्थिति से अलगाव आवश्यक है।

तभी दिव्य ज्योति प्राप्त होती है। जैसे राष्ट्रपति के स्वागत के लिए बँगले के सारे जाले साफ किये जाते हैं और बगीचे से जंगली घास निकाल दी जाती है, उसी प्रकार परब्रह्म के स्वागत के लिए मन-रूपी महल को भी सारे दोषों, इच्छाओं और बुरी वासनाओं से साफ करना चाहिए।

जब मन में इच्छा होती है तो संसारी मनुष्य उसका स्वागत करके उसे पूर्ण करने का प्रयास करता है; परन्तु साधक विवेक द्वारा उसे उसी क्षण त्याग देता है। ज्ञानी जन कामना के छोटे से स्फुलिंग को भी बहुत बड़ी बुराई समझते हैं; इसलिए वे किसी भी कामना को प्रश्श्रय नहीं देते। वे आत्मा में ही प्रसन्न रहते हैं।

कामनाओं का नियन्त्रण कैसे करें

इस संसार-सागर में इच्छाएँ मगर-रूप हैं। जैसे ही वे मन के उपरिस्तल पर उभरें, उनको नष्ट कर दें। उनके आगे मत झुकें। अपनी परीक्षाओं में निराश मत हों। शुद्ध सात्विक मन को मित्र बनायें और उसकी सहायता से अशुद्ध मन का नाश कर दें। अपने मन को आनन्दपूर्ण आत्मा में विश्राम करने दें। विवेक और निर्भीक तथा अथक प्रयत्न से कामनाओं को उभरते ही नष्ट कर दें।

जब कभी मन में कामना उत्पन्न हो तो सदा विवेक से परामर्श लें। यह फौरन बतलायेगा कि इच्छा के साथ-साथ दुःख है। यह केवल मन का भ्रम है। केवल वैराग्य और त्याग ही मन को तृप्ति और शान्ति पहुँचा सकते हैं। यह आपको परामर्श देगा कि इच्छा को तत्काल त्याग दें और उपनिषदों का स्वाध्याय करें, ओंकार का उच्चारण और वित्र गंगातट पर एकान्त में समाधि-निष्ठा बनायें। बार-बार गम्भीरता से विचार करें कि क्या यह नयी इच्छा आपको विशेष सुख और आत्मिक लाभ पहुँचाने में समर्थ है? ज्ञान-मार्ग के साधक के लिए विवेक और दृढ़ इच्छा-शक्ति इस दुष्ट मन को नष्ट करने के लिए और छोटी-बड़ी सारी बाधाओं को भगा देने के लिए अमोघ शस्त्र हैं।

कभी किसी से, अपने घनिष्ठ मित्र से भी भेंट स्वीकार न करें। इससे दासत्वबुद्धि और आसक्ति बढ़ेगी तथा इच्छा-शक्ति दुर्बल बनेगी। किसी से कुछ माँगना ही भीखारीपन है। किसी की सिफारिश करना भी भिखारीपन है। भिखारी स्वतन्त्रता और आध्यात्मिक साधना के सर्वथा अयोग्य है।

जैसे पानी से न सींचने पर पौधा सूख जाता है, इसी प्रकार यदि मन बार-बार चिन्तन करे तो दुर्वासनाएँ भी मुरझा जाती हैं। जब तक आप किसी वस्तु का स्वरूप नहीं जान लेते तब तक उसके लिए आपमें इच्छा उत्पन्न नहीं होती। जब आप उसे देख लेते हैं, स्पर्श कर लेते या सुन लेते हैं, तब उसके लिए कामना उपजती है। इसलिए मनुष्य के लिए सबसे उत्तम यही सिद्धान्त है कि जो वस्तु उसकी कल्पना को कलुषित करने वाली हो, उसको ग्रहण न करे, न स्पर्श ही करे और न उसको देखे। आपको निश्चयपूर्वक अवधान और कल्पना को विषय से दूर हटाना होगा। समय पा कर सारी अवांछनीय कामनाएँ मर जायेंगी।

मन में इच्छा रहने से शरीर मिला है। इच्छा का स्वभाव संस्कारों के गुणों पर निर्भर है। अच्छे संस्कार होंगे तो अच्छी इच्छा बनती है और बुरे संस्कारों से बुरी इच्छा बनती है। बुद्धि भी कार्यानुसारिणी होती है। शास्त्रों के पवित्र आदेशों के अनुसार विचार और कार्य करने के लिए इसे बराबर प्रयत्न करके प्रशिक्षित करना पड़ता है। इच्छा ही विचार बन जाती है और विचार कर्म बन जाता है। बुरी इच्छा से बुरे विचार और बुरे कर्म बन जाते हैं। सदा सत्कर्म करने से; दान, तप, जप, दम, ध्यान और स्वाध्याय करने से; निषिद्ध कर्मों को छोड़ देने से और सदा सत्संग करने से मन के बुरे संस्कार बदल जाते हैं। इसके लिए यह एक अमोघ उपाय है।

अर्धपरिपक्व ज्ञानी के मन को सभी वासनाओं का त्याग करते हुए बड़ी तीव्र बेदना होती है। वह प्रार्थना करके उन्नत आत्माओं से सहायता की याचना करता है।

संसारी इच्छाओं की प्रतिपक्ष-भावना, ईश्वर-प्राप्ति की इच्छा पैदा कर लेने से सभी सांसारिक वासनाओं का नाश हो जायेगा। सदिच्छाओं के द्वारा बुरी इच्छाओं का दमन करना चाहिए, सदिच्छाओं को भी एक ही दृढ़ इच्छा-मुमुक्षुत्व द्वारा त्याग दें और अन्त में इस ईश्वर-प्राप्ति की इच्छा को भी त्याग दें। अशुभ वासना को शुभ वासना द्वारा द्वारा त्याग दें। विवेक के उदय से वासना का लोप हो जायेगा। जब वासना का लोप हो जायेगा तो जीवत्व का भी लोप हो जायेगा।

ब्रह्म-चिन्तन सारी कामनाओं को नष्ट कर देता है। ब्रह्म में कामनाएँ नहीं होतीं। ब्रह्म विर्मलता है। प्रणव का जप करें और कहें- 'मैं सर्व पवित्रता हूँ।' सारी कामनाएँ, विलीन हो जायेंगी।

विचारों का हनन करें। निर्विचारावस्था का अभ्यास करें। आप वासनाओं को नष्ट कर सकते हैं। कामुक विचारों की तृप्ति से सम्बद्ध मन मनुष्य को विषय-सुखों की खोज के लिए प्रेरित करता है। अनियन्त्रित विचार सारे अनर्थों का मूल कारण है। उत्कृष्ट विचार निम्न अधम विचारों को सुगमता से नष्ट कर सकते हैं। अधम विचारों को प्रश्रय न दीजिए।

वासनाओं का नाश आत्मानन्द की उपलब्धि कराता है

वासना-सहित मन का होना बन्धन है। कामना-रहित मन मुक्त है। कामनाएँ स्वयं ही दुःख हैं। कामना-राहित्य स्वयं शुद्ध आत्मानन्द है। माया का नाश ही मोक्ष है। कुत्सित संकल्पों का नाश कर देने से अविद्या का नाश हो जाता है। यदि दृश्य पदार्थों के लिए सारी कामनाएँ समाप्त हो जायें तो मन का इस प्रकार का त्याग ही अज्ञान का नाश है। ऐसा आनन्द मनुष्य के अपने ही प्रयत्न से उत्पन्न होता है। पुरुषार्थ के समान कोई वस्तु नहीं है। पुरुषार्थ से ही मार्कण्डेय का भाग्य बदल गया था। वह चिरंजीवि बन गया था।

कामना शान्ति की शत्रु है। इच्छाओं के कारण ही आप भिखारी बन गये हैं। इच्छा-रहित मनुष्य संसार में सच्चा धनवान् है। मन ही मनुष्य को धनवान् बनाता है।

कामना-रूपी ग्राहों के दृढ़ पाश से अपने को मुक्त करें। परीक्षाओं में साहस न खोयें। हिम्मत रखें। सिंह की भाँति उठ खड़े हों। शुद्ध मन की सहायता से अशुद्ध मन का नाश कर दें। सात्त्विक मन से मित्रता करें और शान्तिपूर्वक आत्मा में स्थित रहें।

परिच्छेद- २२

राग-द्वेष

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।

आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ।।

"परन्तु अपने अधीन किये हुए अन्त:करण बाला साधक अपने वश में की हुई राग-द्वेष से रहित इन्द्रियों द्वारा विषयों में विचरण करता हुआ अन्तःकरण की प्रसन्नता को प्राप्त होता है" (गीता : २-६४)।

राग-द्वेष बन्धन के कारण हैं

राग, द्वेष और तटस्थता-ये मन की मुख्य तीन वृत्तियाँ हैं। राग और द्वेष मन में दो प्रवाह होते हैं जो मनुष्य को जन्म-मरण-रूपी संसार-चक्र से बाँधे रखते हैं। ये मन के दोष हैं। इनके ही कारण आपको संसार में आना पड़ा है। बन्धन का स्वरूप राग-द्वेष है। अज्ञान का स्वरूप राग-द्वेष है। सारी भावनाएँ राग-द्वेष की श्रेणी के ही अन्तर्गत हैं। ये दोनों प्रवाह मन के धर्म हैं, आत्मा के नहीं। सुख-दुःख, हर्ष और शोक राग-द्वेष के कारण हुआ करते हैं। यदि मन में से राग और द्वेष निकल जायें तो हर्ष-शोक भी जाते रहेंगे।

स्वार्थी प्रेम तथा दिव्य प्रेम

जब समान गुणों और बल वाली दो शक्तियाँ मिलती हैं तो एक तीसरी शक्ति बनती है। जब समान बल और गुणों वाले दो मनुष्य एक-दूसरे की ओर आकृष्ट होते हैं तो उनके बीच में एक तीसरी शक्ति बनती है जिसे प्रेम कहते हैं। प्रेम को बताने का यह वैज्ञानिक ढंग है। एक आकर्षण-शक्ति होती है और एक विकर्षण-शक्ति होती है। जब मैं दूसरे मनुष्य में अपनी ही आत्मा को देखता हूँ, जब मैं उसको अपनी ही आत्मा-सा देखता हूँ तो मैं उससे अपने ही समान प्रेम करने लगता हूँ। जब मैं आपमें कोई चीज देखता हूँ जो मेरे पास भी है तो मैं स्वभावतः आपकी ओर आकर्षित होता हूँ और आपसे प्रेम करने लगता हूँ। प्रेम को बताने का यह वेदान्तिक ढंग है। अपने प्यार को दूसरे पर उँडेल देना प्रेम कहलाता है। प्रेम ईश्वर है। प्रेम दो प्रकार का होता है। एक स्वार्थपूर्ण या भौतिक, दूसरा दिव्य प्रेम जो निःस्वार्थ और चिरस्थायी होता है। पहले प्रकार का प्रेम आसक्ति-सहित प्रेम है। दूसरी प्रकार का प्रेम बिना आसक्ति के है। जो वेदान्त-मार्ग का सच्चा साधक है, जिसको अपनी आत्मा ही सब कहीं प्रतीत होती है और जो सच्चा भक्त है, जो हर एक वस्तु में नारायण वही वास्तव में दूसरों से प्रेम कर कोई सुख के लिए या अपने जीवन के लिए दूसरे के आश्रित रहता है तो भौतिकीन मनुष्य अपन हो जाती है। आसक्ति से दास-बुद्धि और इच्छा-शक्ति दुर्बल होती है। आसक्ति मृत्यु है, भौतिक प्रेम मृत्यु है। **"असंगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा"** सब प्र आसक्ति आसक्तियों को दृढ़ असंग-रूपी तलवार से काट दें (गीता : १५-३)।

राग उतना ही दुःखदायी है जितना द्वेष

मन के अन्दर राग भी उतना ही भयानक है जितना द्वेष। जहाँ भी राग होता है, वहाँ देष भी होता है। न केवल द्वेष-वृत्ति ही अपितु राग-वृत्ति भी मनुष्य को दुःख पहुँचाती है। यदि किसी पदार्थ से सुख मिलता है तो आपमें उसके लिए राग उत्पन्न होता है; परन्तु जब उसी पदार्थ से वियोग होता है, जैसा कि प्रिय पत्नी या पुत्र की मृत्यु से, तो आपको अत्यन्त कष्ट होता है जिसका वर्णन नहीं हो सकता। मान लें कि आपको भोजन के बाद फल खाने की आदत है। फलों से आपको सुख मिलता है। आपको फलों से राग हो गया है; परन्तु यदि किसी स्थान पर फल नहीं मिल सकते तो आपको दुःख होता है।

जहाँ कहीं आनन्द और राग होते हैं, वहीं भय और क्रोध भी रहते हैं। क्रोध केवल इच्छा का विकार है। भय तथा क्रोध आनन्द और राग के पुराने साथी हैं। राग में भय और क्रोध छिपे रहते हैं। ये बराबर मन को सताते रहते हैं।

राग में भय छिपा रहता है। जब आपको शरीर के लिए राग होता है तो मृत्यु का भय आ जाता है। जब धन के लिए राग होता है तो धन के नाश का भय आ जाता है; क्योंकि भोग-पदार्थों की प्राप्ति में धन ही कारण (निमित्त) होता है। जब स्त्री के लिए राग होता है तो आप उसकी रक्षा करने में सर्वदा सतर्क रहते हैं। भय राग का बहुत पुराना तथा घनिष्ठ साथी है।

राग-द्वेष की विभिन्न अवस्थाएँ

राग-द्वेष की चार अवस्थाएँ होती हैं-दग्ध, तनु, विच्छिन्न और उदार। इनमें से प्रथम दो अवस्थाएँ योगियों में होती हैं। और पिछली दो संसारी मनुष्यों में होती है। पूर्ण योगी में निर्विकल्प समाधि द्वारा ये वृत्तियाँ भस्मीभूत हो जाती हैं। वे दग्ध होती हैं। योगाभ्यास करने वाले योगियों में राग और द्वेष के संस्कार बहुत तनु रूप से रह जाते हैं। वे सूक्ष्मावस्था में होते हैं। उनको इन दोनों वृत्तियों पर पूर्ण अधिकार होता है। भोग-वासना मैं लिप्त साधारण मनुष्यों में ये वृत्तियाँ विच्छिन्न और उदार पायी जाती हैं। विच्छिन्न-अवस्था में ये छिपी रहती हैं। जब स्त्री अपने पति से प्रेम करती है तब राग-वृत्ति कार्य करती है और उसकी क्रोध और घृणा की वृत्तियाँ उस समय दबी रहती हैं। जब वह किसी कारणवश पति से अप्रसन्न हो जाती है तब द्वेष-वृत्ति के संस्कार अनुकूल वातावरण पा कर बड़े क्रियाशील हो जाते हैं। संसारी मनुष्य इन दो वृत्तियों का दास होता है। वह इन वृत्तियों से इधर-उधर आलोड़ित होता रहता है।

सुषुप्ति में ये दोनों भावनाएँ मनुष्य में बीजावस्था में रहती हैं। उनका नाश नहीं होता। ज्यों-ही मनुष्य निद्रा से जागता है, वे फिर क्रियाशील हो जाती हैं।

बालकों में ये युगल प्रवाह थोड़े ही काल के लिए प्रकट होते हैं और फिर लोप हो जाते हैं। वे एक क्षण में लड़ते हैं और दूसरे क्षण प्रसन्नता से आपस में मिल जाते हैं। वे अपने मन में दुर्भावनाएँ नहीं रख छोड़ते और वे दूसरों द्वारा की हुई बुराइयों का अधिक चिन्तन नहीं करते। वे कुछ मनोमालिन्य नहीं रखते। लहर आती है और गुजर जाती है। ज्यों-ज्यों बालक बड़ा होता जाता है, ये दोनों प्रवाह बार-बार की पुनरुक्ति से गम्भीर रूप धारण कर लेते हैं और दृढ़ हो जाते हैं।

जब छोटा बच्चा दूसरे वर्ष में प्रवेश करता है तो धीरे-धीरे द्वैत भाव बढ़ने लगता है। एक वर्ष से कम आयु के बालक को किसी भी स्थान में रख दें; वह वहाँ शिलाखण्ड की भाँति रहेगा। वह हँसेगा और सब लोगों को बिना राग-द्वेष के समान रूप से ही देखेगा। दो वर्ष के बच्चे को बैठने को कहें तो वह खड़ा हो जायेगा। उसे पास आने को कहें तो वह पीछे हट जायेगा। बच्चे को कहें, बाजार मत जाना तो वह तुरन्त बाजार को ही जाता है। वह विरुद्ध आचरण करेगा; क्योंकि अब उसमें द्वैत का विकास हो रहा है।

राग-द्वेष के कारण

अनुकूल-प्रतिकूल ज्ञान के कारण राग-द्वेष उपजते हैं। अनुकूल वस्तुओं के लिए राग होता है और प्रतिकूल वस्तुओं के लिए द्वेष । जब यह अनुकूल-प्रतिकूल ज्ञान, जो भेद-ज्ञान के आधार पर है, लोप हो जाता है तो राग-द्वेष भी नष्ट हो जाते हैं।

राग-द्वेष अभिमान (अहंकार) के कारण भी उत्पन्न होते हैं। जैसे ही अभिमान प्रकट होता है, राग-द्वेष भी आ जाते हैं। जैसे ही आप पति होने का विचार करते हैं, आपके अन्दर पत्नी के प्रति आसक्ति (राग) हो जाती है। जैसे ही आप ब्राह्मण होने का विचार करते हैं, ब्राह्मणत्व का राग आ जाता है। यदि राग-द्वेष को निकाल देना चाहते हैं तो अभिमान छोड़ दें। यदि अविद्या का फल-रूप अभिमान दूर हो जाये तो राग-द्वेष भी नष्ट हो जायेंगे।

कोई मन राग के द्वारा आपका चिन्तन करता है तो कोई मन द्वेष के कारण चिन्तन करता है। रावण का मन द्वेष और भय के कारण श्रीराम का चिन्तन किया का चिन्तन बरसार तीव्र चिन्तन के द्वारा वह श्रीराम को सब कहीं, प्रत्येक पदार्थ में देखता था। इसी विकार कंस का मन भी श्रीकृष्ण का चिन्तन किया करता था। यह भी एक प्रकार की भारतक (बैर-भक्ति) होती है। किसी-न-किसी प्रकार उनके मन परमात्मा का चिन्तन करते रहते थे।

राग-द्वेष से वास्तविक कर्म बनते हैं

मन में राग-द्वेष ही वास्तविक कर्म हैं। यही आद्य कर्म हैं। जब राग-द्वेष के प्रवाहों द्वारा मन गतिशील होता है तो वास्तविक कर्म प्रारम्भ होता है। वास्तविक कर्म मन के संकल्प से उपजता है। मन की क्रियाएँ ही सच्चे कर्म कहलाती हैं। बाह्य क्रियाएँ तो पीछे प्रकट होती हैं। इच्छा से मन गतिशील होता है। कामना के साथ-ही-साथ मन में राग और द्वेष रहा करते हैं। इच्छा प्रेरक शक्ति होती है। भावना और आवेग कामना के सहवर्ती है।

अविद्या से अविवेक होता है, अविवेक से अहंकार और अभिमान होते हैं और अभिमान से राग-द्वेष होते हैं। राग-द्वेष से कर्म आता है। कर्म से शरीर मिलता है। शरीर से दुःख मिलता है। यह सात कड़ियों वाली बन्धन-श्रृंखला है। यही दुःख-श्रृंखला है।

यदि आप दुःख नहीं चाहते तो शरीर धारण न करें। यदि शरीर नहीं चाहते हैं तो कर्म न करें। यदि कर्म नहीं करना चाहते तो राग-द्वेष और अभिमान छोड़ दें। अभिमान को छोड़ना चाहते हैं, तो अविवेक का त्याग कर दें, अविद्या का त्याग कर दें। यदि आप अविद्या नहीं चाहते हैं तो ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करें।

राग-द्वेष, पुण्य-पाप और सुख-दुःख रूपी छह अरों वाले चक्र से यह संसार चलता है। यदि मूल कारण मूलाविद्या को ज्ञान-प्राप्ति के द्वारा नष्ट कर दिया जाये तो अभिमान, राग, द्वेष, कर्म, शरीर, पुण्य-पाप, सुख-दुःख की सारी श्रृंखला अदृश्य हो जायेगी। इसकी एक कड़ी दूसरे के आश्रित रहती है। ज्ञान प्राप्त हो जाने पर कड़ियाँ पूर्णतया टूट जाती हैं। भगवती श्रुति कहती है: **"ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः"**-ब्रह्म-ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं मिलता है।

राग-द्वेष का अभाव मोक्षदायक है

जिस योगी या ज्ञानी ने राग तथा द्वेष इन दोनों ही वृत्तियों का नाश कर दिया है, वह तीनों लोकों में सर्वोत्तम मनुष्य है। वह राजाओं का राजा है और महाराजाओं का महाराजा है। जीवन्मुक्त का मुख्य लक्षण राग और द्वेष से रहित होना है। यदि ज्ञानी या योगी में कभी-कभी क्रोध की झलक प्रकट होती भी है तो यह आभास-मात्र होती है। जैसे जल में लकड़ी से बनायी हुई रेखा तुरन्त ही मिट जाती है, इसी प्रकार यद्यपि ज्ञानी में क्रोध प्रकट होता है तो वह पल-मात्र में ही दूर हो जाता है। संसारी मनुष्य इस बात को नहीं समझ पाते।

जिसके भीतर राग का भाव नहीं है और जो सहनशील (तितिक्षु) है वह चाहे जो-कुछ कर सकता है, चाहे जहाँ जा सकता है। वह आकाशमण्डलीय वायु के समान स्वच्छन्द रहता है। उसके आनन्द, स्वतन्त्रता और शान्ति असीम होते हैं। उनके विस्तार की कल्पना भी नहीं की जा सकती। बेचारे क्षुद्र विचार वाले सांसारिक लोग ऐसे संन्यासियों की स्वतन्त्रता तथा आनन्द की कल्पना भी नहीं कर सकते। गृहस्थियों को तो राग और भोग ने ही दुर्बल बना रखा है।

राग-द्वेष का विनाश ही आध्यात्मिक साधना का सार है

मैं आपको आध्यात्मिक साधना का सार बताता हूँ। विचार और ब्रह्म-चिन्तन के द्वारा राग और द्वेष के दोनों प्रवाहों को नष्ट कर दें। द्वन्द्वों से अतीत हो जायें। आपको नित्य, अनन्त आनन्द और शान्ति मिलेगी। आपको ब्रह्म-ज्योति प्रकाशित करेगी। आप ब्रह्म बन जायेंगे। आप ब्रह्म हैं।

जैसे अग्नि से उष्णता मन्त्र और औषधि के द्वारा दूर की जा सकती है इसी प्रकार मन के ये दोनों (राग और द्वेष) भी योग-क्रिया के द्वारा दूर किये जा सकते हैं। निर्विकल्प समाधि अथवा असम्प्रज्ञात समाधि के द्वारा राग-द्वेष को समूल भस्म किया जा सकता है।

मन की विविध वृत्तियों में राग, द्वेष और मोह बहुत ही बद्धमूल हैं। उनके उन्मूलन के लिए बड़े श्रमसाध्य अनवरत प्रयत्न की आवश्यकता होती है। अपने मानसिक जीवन में या तो आप पतवार को पकड़े रह कर अपनी नौका की दिशा, संसर्ग में आने वाले स्थान आदि का निश्चय कर सकते हैं या इसमें असफल हो कर इधर-उधर वायु के झोंकों से फेंके हुए, प्रत्येक भावना, तुच्छ राग-द्वेष आदि के प्रवाह से बहाये जाते रहेंगे।

परिच्छेद-२३

सुख तथा दुःख

सुख तथा दुःख का सम्बन्ध मन से है

मुख तथा दुःख पुण्य और पाप के फल हैं। ये दो प्रकार के भाव हैं, जिनका केवल इन के साथ ही सम्बन्ध है। मन ही अपने ऊपर सुख और दुःख लाता है और पदार्थों की और अपनी अत्यधिक आसक्ति होने कारण उनको (सुख-दुःखादि को) भोगता है। दुःख सेशन सिमट जाता है और सुख में फैल जाता है।

अहंकार शरीर निर्मित करता है। प्राण सब प्रकार की चेष्टा करता है। मन सुख और दुख का अनुभव करता है। यदि आप निर्मल मन के द्वारा अकर्ता और निष्काम भाव से कर्ज करेंगे तो आपका शरीर फलभागी नहीं होगा।

बाहर तो केवल पदार्थ, स्पन्द या क्रियाएँ हैं। प्रकृति उदासीन और अन्धी है। पदार्थों में सुख-दुःख कुछ भी नहीं है। यह सब मन की ही सृष्टि, मन का बोध, माया की जादूगरी है। पदार्थों के प्रति मानसिक अभिवृत्ति अथवा निश्चित प्रकार का मानसिक व्यवहार ही हर्ष तथा शोक, सुख और दुःख लाता है। मन की कल्पना में माया का दृढ़ आसन है।

सारे दुःख समान रूप से अनुभव नहीं होते। निद्रा में दुःख नहीं मालूम होता। केवल उसी समय दुःख का अनुभव होता है, जब मन का शरीर के साथ सम्बन्ध होता है। अविद्या-जनित अभिमान के कारण मन और शरीर को एक मानने से दुःख का अनुभव होता है।

जब मन में किसी वस्तु के लिए अति तीव्र अनुराग हो तो प्राणान्त होते हुए भी कट का संवेदन नहीं होता। जब मन किसी पदार्थ में पूर्णतया निमग्न होता हो तो अन्य कौन शरीर की क्रियाओं को देखे और इनसे दूर भागे?

जल के ऊपर एक बूँद तेल डालने से वह सारे जल में फैल जाती है और पानी को तेलमय बना देती है, इसी तरह विलासी मनुष्य को थोड़ा-सा भी दुःख उसके सारे सुख को बिगाड़ देता है और उसे आनन्द के सारे पदार्थ दुःखमय प्रतीत होते हैं। जब आपको तीव्र कष्ट हो तो दूध या चाय के प्याले से आनन्द नहीं मिलता। जब आपको तीव्र वेदना हो तो जो संसार स्वस्थ रहने की दशा में आपको आनन्दपूर्ण लगता था, अब वह निरा शुष्क दिखायी देगा। जब आप गम्भीर रूप से रुग्ण हों तो संसार का आकर्षण जाता रहता है।

यदि निराशावादी मनुष्य अपना मानसिक व्यवहार बदल दें तो उन्हें संसार आनन्दपूर्ण ही दिखायी देगा।

क्योंकि मन आनन्द-ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है; इसीलिए यह सदा आनन्द के पीछे भागता है। आप आम को इसलिए पसन्द करते हैं कि आम आपको आनन्द देता है। सब वस्तुओं में आप अपने-आपको सबसे अधिक प्रेम करते हैं, इसी से पता लगता है कि आनन्द आत्मा ही का धर्म होगा।

आत्मा को कोई सुख-दुःख नहीं होता

शरीर और मन के बन्धन से रहित होना आत्मा का वास्तविक स्वरूप है। इसलिए आत्मा में पुण्य और पाप की कोई सम्भावना नहीं है, फिर आत्मा को इनके प्रभावित करने की सम्भावना तो और भी कम है। अतएव सुख तथा दुःख आत्मा को स्पर्श भी नहीं करते। आत्मा असंग, अनासक्त और निर्लिप्त है, यह मन के सुख और दुःख-रूपी दो विकारों का साक्षी है। मन भोक्ता है, आत्मा साक्षी है। इसको सुख और दुःख से कोई प्रयोजन नहीं।

ऐन्द्रिक सुख केवल मन का धोखा है

सुख और दुःख, सुन्दरता और असुन्दरता मन की झूठी कल्पनाएँ हैं। जब मन ही भ्रान्तिजनक पदार्थ है तो उसके विकार क्यों न भ्रान्तिजनक होंगे। ये मृगतृष्णा के समान हैं। जो आपके लिए सुन्दर है, वह दूसरे के लिए कुरूप हो सकता है। सुन्दरता और भद्दापन-ये दोनों सापेक्ष शब्द हैं। सौन्दर्य केवल मानसिक संकल्पना है। यह मन का प्रक्षेपण है।

केवल सभ्य मनुष्य ही सुडौल शरीर, अच्छी आकृति, मनोहर चाल, सद्व्यवहार आदि की विशेष चर्चा करता है। अफ्रीका के हबशियों को इन सब बातों का विचार भी नहीं होता। सच्चा सौन्दर्य तो केवल आत्मा में ही है। सुख और सौन्दर्य मन में ही रहते हैं, पदार्थों में नहीं। आम में मिठास नहीं होती, अपितु आम के विचार में मिठास होती है। यह केवल वृत्ति है। सब मन का भुलावा, मन की संकल्पना और मन की सृष्टि है। वृत्ति का नाश कर देने से सौन्दर्य का भी लोप हो जाता है। पति सौन्दर्य के अपने भाव अपनी कुरूप पत्नी में निवेश करता है और काम के बश उसे अतीव सुन्दरी पाता है। शेक्सपीयर ने इस भाव को अपनी 'मिड समर नाइट्स ड्रीम' में क्या ही अच्छी तरह प्रकर किया है-"कामदेव को चित्रकारों ने अन्धा बनाया है। यह हेलेन के सौन्दर्य को मिश्र देश की रमणियों में भी पा लेता है।"

बाह्य पदार्थों से मिलने वाला सुख क्षणभंगुर, अनित्य तथा अल्पकालिक होता है। यह केवल नाड़ियों की गुदगुदाहट और मानसिक भ्रम होता है। जीव मन और वृत्तियों के साथ मिल कर विषयों को भोगता है। जो वस्तु आपको सुख देती है, वही दुःख भी देती है। "ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते"-जो भोग इन्द्रियों और पदार्थों के समागम से प्राप्त होते हैं, उनमें निश्चय ही दुःख भरा होता है। शरीर दुःख और रोग का स्थान है। धन उपार्जन करने और उसकी रक्षा करने में बड़ा कष्ट होता है। प्रत्येक संसर्ग में दुःख निकलता है। स्त्रियाँ निरन्तर सन्ताप की जड़ होती हैं। खेद है, फिर भी मनुष्य आध्यात्मिक आनन्द-पथ को छोड़ कर संसार के दुःख-पथ पर जाना पसन्द करते हैं।

संसारी वस्तुओं के भोग से सच्ची, स्थायी तृप्ति नहीं मिलती। यह जान कर भी कि संसारी पदार्थ अनित्य हैं और संसार दुःखपूर्ण है, मनुष्य संसारी पदार्थों की ओर ही दौड़ते हैं। यही माया है। जब मन आत्मा में स्थिर हो जायेगा तब ही नित्य तृप्ति मिलेगी; क्योंकि आत्मा परिपूर्ण है। आत्मा में आपको सब-कुछ मिल जाता है। यह स्वतःपूर्ण है। आत्म-साक्षात्कार से सारी इच्छाएँ तृप्त हो जाती हैं।

कोई कहते हैं कि बच्चे बहुत सुखी हैं। यह ठीक नहीं है। वे बहुत अधिक उल्लसित हो जाते हैं। उनमें गम्भीर प्रतिक्रिया भी होती है। उनका मन साम्य-भाव में नहीं होता। वे बिना किसी बात के भी घण्टों तक रोते रहते हैं। सन्तुलित मन वाला व्यक्ति ही सच्चा सुखी हो सकता है।

सुख वृत्ति-लय से उत्पन्न होता है, ऐन्द्रिक पदार्थों से नहीं

वस्तुत: पदार्थों में सुख नहीं है। आत्मा मन को धकेल कर उसे गतिशील बनाता है। बासना के बल से मन में एक वृत्ति उठती है। मन में क्षोभ होता है और वह उस पदार्थ की ओर दौड़ता है। जब तक मन को उसका इष्ट पदार्थ नहीं मिल जाता, तब तक यह क्षोभ शान्त नहीं होता। यह बार-बार उसी पदार्थ का चिन्तन करता रहता है। उस पदार्थ को प्राप्त करने के लिए यह अनेक युक्तियाँ और उपाय सोचता है और सदा बेचैन रहता है। यह सदा पदार्थ का ही आकार बनता रहता है। ज्यों-ही पदार्थ प्राप्त हो जाता है और यह उसका उपभोग कर लेता है। इसकी वह वृत्ति जो मन में क्षोभ उत्पन्न करती रहती थी, वह शान्त हो जाती है; तभी शान्ति प्राप्त होती है। यह शान्ति और आनन्द वृत्ति-लय हो जाने पर स्वरूप अथवा अन्तरात्मा से प्राप्त है, बाह्य पदार्थ से नहीं। ज्ञानी मनुष्य बाह्य पदाथों को सुख का कारण बताते हैं। यह बड़ी भारी भूल है।

संसार के किसी पदार्थ में सुख नहीं है। यह सोचना कोरी अज्ञानता है कि हमको विषय-पदार्थों से अथवा मन से सुख प्राप्त होता है। जब कभी हमें वासना-तृप्ति का अनुभव होता है तो हम देखते हैं कि मन चित्त की ओर, आत्मा की ओर जाता है और आत्म-सुख का आनन्द लेता है। सुख में भी मन की गति होती है। यह फैलता और अन्तर्मुख हो कर अपने अधिष्ठान, अपने मूल स्रोत आत्मा की ओर जाता है और आत्म-सुख को भोगता है।

सच्चा सुख अन्दर है

हे संसारी मूर्खो! आप व्यर्थ ही बाहरी पदार्थों कंचन, कामिनी, पद, सम्मान, नाम और यश-जो मिथ्या, बेकार और गोबर के सदृश हैं- में अपने सुख की खोज क्यों करते हैं? आपको इनमें सुख नहीं मिल सकेगा। आप भूल कर रहे हैं। हृदय के अन्दर, सारे आनन्द के स्रोत अपने आत्मा में ही सुख की खोज करें।

सच्चा आनन्द आपके ही अन्दर है। यह आत्मा में है। यह आत्मपरक है। यह सत्त्वगुण में है और सत्त्व से भी अतीत है। यह मन के एकाग्र होने पर प्रकट होता है। जब इन्द्रियों का प्रत्याहार किया जाता है, जब मन एकाग्र होता है, जब वासनाक्षय और मनोनाश हो जाता है, जब आप निष्काम तथा निर्विचार होते हैं तो आत्मानन्द का उदय होने लगता है, आध्यात्मिक आनन्द भाव-विह्वल करने लगता है।

आसक्ति तथा सुख

भ्रामक पदार्थों में आसक्ति का कारण मन ही है। सारे कर्मों का सूत्र भी मन ही है। यह नित्य ही हमारे स्थूल शरीर को कार्य करने और भोगने के लिए विविध विषय-पदार्थों को प्राप्त करने के लिए बाध्य करता है।

मन सदा ही कुछ-न-कुछ करते रहना चाहता है। जब वह अपनी इष्ट वस्तुओं में आसक्त होता है तो इसे मनोरंजन और आनन्द मिलता है। ताश के खेल में कुछ नहीं है, किन्तु जो अवधान और आसक्ति इसमें रखनी होती है, उससे ही आनन्द मिलता है।

आसक्ति के बिना भी आकर्षण हो सकता है। आप गुलाब के फूल या सुन्दरी युवती के प्रति आकर्षित हो सकते हैं, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि आपको उस गुलाब के फूल या सुन्दरी युवती से आसक्ति हो जाये। प्राप्ति और भोग के पश्चात् ही आसक्ति होती है।

आसक्ति, प्रेम और आनन्द-ये सब साथ-साथ चलते हैं। आप अपनी पत्नी और सन्तान में आसक्त रहते हैं, आप उन्हें प्रेम भी करते हैं; क्योंकि ये आपको आनन्द देते हैं। यह संसार भ्रममूलक है और भ्रान्ति से ही दुःख सुख के समान भासता है, इसलिए, आप शारी सांसारिक ममता को निर्दयता से काट कर अपने प्रेम और आसक्ति उस तत्त्व-पदार्थ अधिष्ठान-रूप ब्रह्म की ओर लगायें जो मन और सारे पदार्थों के पीछे रहता है और जो बुद्धि में होने वाली क्रियाओं का साक्षी है।

जो मन बाल्यावस्था से ही बाह्य पदार्थों में आनन्द खोजने की बुरी आदत में पड़ गया है, उसे इस स्वभाव से फेरना कठिन है और आप जब तक इसके आमोद के लिए कोई उत्तम पदार्थ नहीं देंगे तब तक यह सदा ऐसा ही करता रहेगा।

सुख के भेद तथा कोटियाँ

इन्द्रियजन्य सुख से बुद्धिजन्य सुख उत्तम है। ध्यानजन्य सुख बुद्धिजन्य सुख से उत्तम है। आध्यात्मिक सुख-जो आत्म-साक्षात्कार से प्राप्त होता है- अपरिच्छिन्न, अपरिमेय और असीम होता है। यह आनन्दधन होता है।

स्वर्णिम मध्यमार्ग

मन को मिताचार अथवा सुखमय स्वर्णिम मध्यमार्ग में रखें। मन में अतिरेक न होने दें। हर्ष और शोक के अतिरेक से ठेस लगने पर मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। मन में सदा उद्धर्ष उत्पन्न न होने दें। उद्धर्ष अतिशय प्रमोद को

कहते हैं। मन सदा अति की ओर-या तो अति-उदासी या अति-प्रसन्नता की ओर भागता है। अति मिलते हैं। अति प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है। मन अत्यधिक आह्लाद में कभी भी शान्त नहीं रह सकता है। मन प्रसन्न किन्तु शान्त रहे।

सदा प्रसन्न रहें। हँसते और मुस्कराते रहें। निरुत्साह तथा उदास मन ईश्वर का विचार ही कैसे कर सकता है! आपका स्वभाव ही प्रसन्नता है। इसे अनवसाद कहते हैं। सब साधकों को यह प्रसन्नता का स्वभाव बना लेना चाहिए।

धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करें। सदा सत्संग करें। नित्य २१,६०० बार भाव-सहित प्रणवोच्चार करें। इसमें तीन घण्टे लगते हैं। आत्मा या कृष्ण का ध्यान करें, ब्रह्म-प्राप्ति कर लें। केवल यही आपको सांसारिक दुःखों से छुटकारा दिलायेगा और अनन्त शान्ति, ज्ञान और आनन्द प्रदान करेगा।

मन की वृद्धि के साथ दुःख भी बढ़ते हैं, इसके निराकरण से बड़ा आनन्द मिलता है। मन के ऊपर प्रभुत्व प्राप्त करके अपने को दृश्य जगत् से मुक्त करें जिससे कि आप ज्ञान-स्वरूप हो जायें। आपके मन के सन्तुलन को भंग करने वाले अनेक सुखद तथा दुःखद पदार्थों से घिरे हुए रहने पर भी सब वस्तुओं को समचित्तता से ग्रहण करते हुए आप शिला के समान दृढ़ रहें। जब मन निरंजन ब्रह्म में लीन होता है उस समय इसे जो सुख अनुभव है, वह शान्त और मधुर हँसी द्वारा प्रकट होता है।

परिच्छेद- २४

विवेक

विवेक क्या है ?

जब आपको इस दुःखद तथा सापेक्ष जगत् में मानव जीवन के दुःखों की महत्ता का पूरा ज्ञान हो जायेगा तो आप स्वभावतः ही सत् और असत् पदार्थों में विवेक करने लगेंगे। ब्रह्म सत् है, जगत् असत् है। यही विवेक है। फिर श्रद्धा बढ़ेगी और ईश्वर-प्राप्ति के लिए दृढ़ इच्छा उत्पन्न होगी। तब आपको सत्य को सदा स्मरण रखना होगा और बराबर 'अहं ब्रह्मास्मि'- 'मैं ब्रह्म हूँ की घोषणा करनी होगी। सतत अभ्यास से नाम, रूप और संकल्प का लोप हो जायेगा और

आप ब्रा-साक्षात्कार कर लेंगे। यह वेदान्त का साधन है। विवेक, श्रद्धा, सदा सत्य का स्मरण, दृढ़ कथन और साक्षात्कार-ये ब्रह्म-साक्षात्कार के विविध सोपान अथवा साधन हैं।

विवेक के सहायक

सत्संग और शास्त्रों के श्रवण से विवेक जाग्रत होता है। जिन्होंने पूर्व-जन्मों में असंख्य सुकृत किये हैं, उन्हें ही भगवत्कृपा से महात्मा, साधु, भक्त, योगी, ज्ञानी और संन्यासियों के सत्संग का सौभाग्य मिलता है।

विवेक के लाभ

एक बार किये हुए भोग को मन फिर भी चाहता है। मन में भोग की स्मृति उठती है। स्मृति कल्पना और चिन्तन को प्रेरित करती है। इस प्रकार आसक्ति उत्पन्न होती है। बार-बार एक विषय का भोग करने से स्वभाव पड़ जाता है। इसी स्वभाव के कारण तीव्र तृष्णा उत्पन्न होती है। फिर बेचारे, निःसहाय दुर्बल इच्छा वाले संसारी मनुष्यों पर मन अपना शासन चलाता है। परन्तु जैसे ही विवेक जाग्रत होता है, मन की शक्ति क्षीण हो जाती है। फिर मन पीछे मुड़ता है और हृदय में विश्राम लेने को लौटने लगता है। इसके विषैले दाँत विवेक द्वारा उखाड़ लिये जाते हैं। विवेक के सामने यह कुछ नहीं कर सकता। यह अपदस्थ हो जाता है। विवेक के जाग्रत होने पर इच्छा-शक्ति अधिकाधिक प्रबल होती जाती है। विवेक के कारण हम दुःखमय संसार से मुक्त होने योग्य बनते हैं।

परिच्छेद-२५

वैराग्य और त्याग

वैराग्य क्या है?

यदि मन बराबर चाय का चिन्तन करे और चाय न मिलने पर इसको कष्ट हो तो कहते हैं कि आपको चाय के लिए आसक्ति है। यही आसक्ति बन्धन में ले जाती है। वैराग्य का अभ्यास चाहता है कि आप इस चाय की आसक्ति को त्याग दें। केवल चाय पीना छोड़ देना वैराग्य का सार नहीं है।

योगवासिष्ठ में वैराग्य-प्रकरण पढ़ें। आपको वैराग्य के यथार्थ स्वरूप का भली प्रकार ज्ञान हो जायेगा। उसमें श्रीराम की वास्तविक विरक्त मनोदशा का विशद वर्णन दिया हुआ है। स्वादु भोजन, उत्साहवर्धक पेय-पदार्थ, प्रेमी माता-पिता, भ्राता, प्रिय मित्र, होरे-मोती, फूल, चन्दन, आभूषण, कोमल शय्या, उद्यान आदि उनको आकृष्ट नहीं कर सके; अपितु उनके दर्शन मात्र से ही उन्हें अतीव कष्ट होता था।

वैराग्य में ब्रह्मचर्य अन्तर्गत है। मन, वचन और कर्म से ब्रह्मचर्य होना वैराग्य में अन्तर्विष्ट है।

दो प्रकार का वैराग्य

वैराग्य दो प्रकार का होता है: (१) कारण वैराग्य जो कुछ विपत्तियों के कारण हो जाता है और (२) विवेकपूर्वक वैराग्य जो सत् और असत् वस्तु के विवेक से उत्पन्न होता है। जिस मनुष्य को प्रथम प्रकार का वैराग्य होता है, उसका मन केवल अवसर की प्रतीक्षा करता रहता है और मौका मिलते ही पूर्व में त्यागे हुए पदार्थों को फिर भोगने लगता है। उसका पतन हो जाता है और वह पूर्वावस्था में चला जाता है। विषय अनर्थ कर डालता है और प्रतिक्रिया के कारण दोगुने बल से प्रतिशोध लेने के लिए उस पर आक्रमण करता है परन्तु दूसरा पुरुष जिसने विवेक के कारण, पदार्थों के भ्रामक स्वरूप के कारण उनके भोग को त्याग दिया है, वह आध्यात्मिक मार्ग में उन्नति प्राप्त करता है। उसका पत नहीं होता।

वैराग्य कैसे उदय होता है?

देखिए, मन में वैराग्य कैसे उठता है। पदार्थों की अनित्यता तथा क्षणभंगुरता से सबके मन में घृणा पैदा होती है और अपने-अपने स्वभाव की सूक्ष्मता के अनुसार संसार से विमुख होने की यह प्रतिक्रिया प्रत्येक व्यक्ति के मन में न्यूनाधिक वेग के साथ काम करती है। हमारे मन में अप्रतिरोध्य भावना हो जाती है कि तुच्छ और नश्वर पदार्थ हमारे अनन्त और अविनाशी स्वरूप को कभी तृप्त नहीं कर सकते।

जब आप धनिकों के जीवन से प्रभावित नहीं होते तो उनका जीवन आपको आकृष्ट नहीं कर सकता। जब आप इस विचार से प्रभावित हो जायें कि मांस और मदिरा से आनन्द नहीं मिल सकता तो इनके प्रति आपके मन में आकर्षण नहीं होगा। ऐसी दशा में यदि आपको मद्य, मांस और धनिकों का-सा जीवन न मिले तो आपके मन को व्यथा नहीं होगी। आप युवती सुन्दर स्त्री की ओर क्यों आकृष्ट होते हैं? अविद्या के कारण आपमें मिथ्या विचार उत्पन्न होता है कि उससे आपको आनन्द मिलेगा। यदि आप विवेक का आश्रय लें तो आपको तुरन्त मालूम होगा कि उस स्त्री से आपको असीम दुःख मिलेगा। तब आपका मन स्त्री-पदार्थ से फिर जायेगा।

वैराग्य-रहित साधना व्यर्थ जाती है

मन में वैराग्य प्रकट होने से दिव्य ज्ञान का द्वार उद्घाटित होता है। संसारी विषयों और भोगों से विरक्त होने से शुभेच्छा होने लगती है। इससे अन्यमनस्कता होने लगती है और फिर धारणा आती है। धारणा से ध्यान होता है। ध्यान से समाधि होने लगती है। बिना विरक्ति या वैराग्य के कुछ भी सम्भव नहीं है।

जैसे पथरीली और क्षार-युक्त भूमि में खेती बिलकुल निष्फल होती है, इसी प्रकार बिना वैराग्य के योगाभ्यास और आत्म-विचार निष्फल हो जाते हैं। जैसे खेती में दिया हुआ पानी यदि चूहों के बिल में चला जाये और खेत में न फैले तो व्यर्थ होता है और शस्यों की वृद्धि नहीं करता, इसी भाँति वैराग्य के गुण के अभाव में साधक के प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं। उसे आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त नहीं होती।

मोक्ष के लिए तीव्र वैराग्य आवश्यक है

साधकों के मन में साधना-काल में तीव्र वैराग्य होना आवश्यक है। योग में सफलता प्राप्त करने के लिए केवल मानसिक निष्ठा ही पर्याप्त नहीं है। मोक्ष की उत्कट इच्छा और साधना के लिए सामर्थ्य का होना परम आवश्यक है। तभी उनको निर्विकल्प समाधि औरमोक्ष प्राप्त होगे। राजा जनक और प्रह्लाद को तीव्र वैराग्य था । शीघ्र साक्षात्कार

प्राप्त करने के लिए इसी प्रकार के वैराग्य की आवश्यकता होती है। मन्द वैराग्य से संसार-सांगर को पार करना बहुत कठिन है। विषयों और भोगों का तृष्णा-रूपी मगर साधकों की गरदन पकड़ कर जोर से खींच लेगा और आधे मार्ग में डुबा हुआ देगा।

वैराग्य के शत्रु राग और अभिशाप

राग से मोह पैदा होता है। बहुधा देखा जाता है कि यदि बिल्ली किसी का पालतू मुर्गा खा जाती है तो उसे बड़ा दुःख होता है। परन्तु जब बिल्ली कोई चूहा या चिड़िया खा जाती है जिसमें उस मनुष्य का कोई राग नहीं होता तो उसे तनिक भी दुःख नहीं होता। इसलिए आपको चाहिए कि मिथ्या आसक्ति से उत्पन्न हुए इस राग को बिलकुल नष्ट कर दें। शरीर में बहुत से जीवाणु बनते रहते हैं जिन्हें दूर करने के लिए लोग उत्सुक रहते हैं। परन्तु एक कार के जीवाणुओं को वे सन्तान का नाम देते हैं जिनके लिए अपना जीवन भी बिता देते है। समार का मोह ऐसा ही है।

राग और प्रेम के पीछे दुःख और शोक हैं। राग के साथ शोक मिला हुआ है। सुख के पीछे दुःख है। सुख के साथ दुःख मिला हुआ है। प्रेम के नाम से मनुष्य दुःख का विषैला बीज बोता है जिससे जल्द ही राग की कोंपलें फूटती हैं जिनमें बिजली-जैसी भयानक अग्नि रहती है। इन कोंपलों से दुःख के वृक्ष उगते हैं जिनकी अनेक शाखाएँ होती जो ढके हुए फूस के ढेर की भाँति जलते हुए धीरे-धीरे शरीर को भस्म कर देते हैं।

दीर्घ काल तक सेवन से राग की ग्रन्थि पक्की हो जाती है। इसने मनुष्यों के हृदय पर अपना जाल फैला रखा है। इससे छुटकारा पाने का मुख्य उपाय यही है कि मानव-जीवन की नश्वरता पर विचार किया जाये। इस विशाल संसार में कितने ही करोड़ माता-पिता, स्त्रियाँ-बच्चे, चाचा-दादा गुजर चुके हैं। आपको अपने मित्रों के समाज को क्षणिक बिजली की चमक के समान नाशवान् समझना चाहिए और अपने मन में बार-बार इस पर बिचार करके सच्चा आनन्द प्राप्त करना चाहिए।

आशा तथा प्रत्याशा

आशा तथा प्रत्याशा का वैराग्य तथा त्याग से विरोध है। वे मन को पुष्ट करते हैं। बिलकुल आशा-रहित होना दार्शनिक की एक बड़ी ऊँची अवस्था है। परन्तु संसारी मनुष्य इसको अच्छा नहीं मानते। वे बड़ी घृणा के साथ कहते हैं कि अमुक बड़ा निकम्मा है। संसारी मनुष्य और दार्शनिक परस्पर विरोधी मार्गों पर चलते हैं।

वैराग्य का विकास कैसे करें ?

जो अपने आत्मा के अन्तर्गत वैराग्य का सुगमता और सुखपूर्वक विकास नहीं करते, वे मनुष्य-रूप में अन्न के नाशक जन्तु हैं। जब मक्खी देखती है कि उसके पाँव शहद में चिपक गये हैं तो वह धीरे-धीरे कई बार अपने पाँव को चाट लेती है और फिर आनन्द से उड़ जाती है। इसी प्रकार राग और मोह द्वारा जनित देहाध्यास और सन्तान के आसक्ति-रूप शहद में मन की चिपकन से वैराग्य और ध्यान के द्वारा अपने को बाहर निकाल लें और हाड़-मांस के इस पिंजरे से मूल स्रोत ब्रह्म की ओर उड़ जायें।

कुछ बच्चों का दूध छुड़वाना बड़ा कठिन होता है। ये तीन-चार वर्ष के हो जाने पर भी माता का स्तन पीते रहते हैं। माता अपने स्तनों में नीम पीस कर लगा देती है। तब बच्चा जल्दी स्तन पीना छोड़ देता है। इसी प्रकार मन को विषयों से छुड़वाने के लिए भी आपको नीम के पीसे के समान औषधि प्राप्त करनी होगी। एकान्त कमरे में बैठ जायें। संसारी जीवन के क्लेश, चिन्ता, भूख, प्यास, पाप, प्रलोभन, काम, कलह, भय, दर्प, रोग, मृत्यु, वृद्धावस्था, शोक,

हानि, असफलता, निराशा, वैर, बिच्छू के डंक, मच्छरों के काटने आदि पर विचार करें। यह प्रभावयुक्त नीम के पीसे का काम करेगा और संसार में मन को छुड़ाने में सहायक होगा। इस प्रकार आपको प्रतिदिन विचार करना चाहिए।

इस भौतिक जीवन में अनेक प्रकार के दुःखों को सदा ध्यान में रखें। गीता का यह वाक्य दोहराते रहने से मोह का लोप हो जायेगा है : 'जन्ममृत्युजराव्याधि- दुःखदोषानुदर्शनम्' जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि तथा दुःख-रूप दोष का पुनः पुनः विचार करना। बराबर मन को यही समझायें कि संसार में केवल दुःख-ही-दुःख है। इस संसार की अनित्यता पर निरन्तर विचार करें। मुमुक्षुओं के लिए यह प्रथम साधन है। इससे वैराग्य की वृद्धि होती है। मन पदार्थों से दूर हो जायेगा, धीरे-धीरे विषय-भोग के पदार्थों से ममता दूर हो जायेगी।

त्याग मोक्ष-प्रदायक है

संसारी पदार्थों से अग्नि, विष या विष्ठा के समान बचें। सारी वासनाओं और इच्छाओं को त्याग दें। यही मोक्ष है। कामनाओं के त्याग से मन का नाश हो जाता है। इससे माया का नाश होता है; क्योंकि मन ही माया है। मन की कल्पना में माया का सिंहासन है। यह कितनी चालाक है। विवेक इसकी चालों को खूब जानता है। त्यागी और आत्म-विचार-युक्त करती है। मनुष्य से: यह बहुत डरती है। । यह उसको दोनों हाथ जोड़ कर प्रणाम करती है ।

सच्चा त्याग क्या है?

मन ही सब-कुछ है और इसके संयम से सबका त्याग हो जाता है। केवल चित-त्याग ही सबका त्याग कहलाता है। सच्चा त्याग मन के संयम में है। इसमें सारी कामनाओं और अहंकार का त्याग करना होता है, संसार की सत्ता का नहीं। इस प्रकार के मानसिक त्याग के द्वारा आप सारे दुःखों से मुक्त हो जायेंगे। तब जीवन में अमृतत्व या अहकार से रहित ब्रह्म में सबकी एकता पर स्थित जीवन का असीम आनन्द प्राप्त होगा।

संन्यास-एक मानसिक दशा

संन्यास केवल मानसिक दशा है। वास्तव में तो मन को गेरुआ रंगने की आवश्यकता है, कपड़ों को नहीं। जो अहंकार और बासनाओं से रहित है तथा जिसमें सारे सात्त्विक सद्गुण हैं, वह यद्यपि संसार में परिवार के साथ भी रहता है तो भी वह सच्चा संन्यासी है। रानी चुडाला एक संन्यासिनी रानी थी, यद्यपि वह एक राज्य का कार्यभार सँभालती थी। जो संन्यासी जंगल में रह कर भी वासनाओं से भरा हुआ है, वह गृहस्थी और संसारी मूर्ख से भी गया बीता है। शिखिध्वज कई वर्षों तक जंगल में नंगा रहता रहा तो भी वह संसारी ही बना रहा।

सारी वासनाओं, अहंकार और काम का त्याग ही सच्चा त्याग है। यदि आपका मन निर्मल है; आसक्ति, वासना और अहंकार से रहित है तो चाहे आप जंगल में रहें या नगर में, श्वेत वस्त्र पहनें या गेरुआ, शिर मुँड़वा लें या जटा बढ़ा लें, आप संन्यासी ही हैं।

मन को मूँड़ दें। किसी ने गुरुनानक से पूछा- "महात्मा जी! आपने शिर क्यों नहीं मुँड़वाया? आप तो संन्यासी हैं।" उन्होंने उत्तर दिया- "मेरे प्यारे मित्र! मैंने अपने मन को मूँड़ दिया है।" वास्तव में मन का मुण्डन बहुत साफ होना चाहिए। सारी आसक्ति, कामना, अहंकार, मोह, काम, लोभ, क्रोध आदि से बचना ही मन का मुण्डन है। जब तक अन्दर तृष्णा बनी हुई है, बाहर से शिर मुँड़वाने का कोई अर्थ नहीं है।

बहुत से मनुष्यों ने सच्चे त्याग का अर्थ नहीं समझा है। भौतिक पदार्थों का त्याग कोई त्याग नहीं है। अहंकार को त्यागना ही सच्चा त्याग है। यदि आप अहंकार को त्याग दें, तो आपने संसार की सारी वस्तुओं को त्याग दिया है। यदि सूक्ष्म अहंकार को त्याग दिया जाये तो देहाध्यास स्वतः ही चला जायेगा।

वेदान्त आपसे यह नहीं कहता कि दुनिया को छोड़ दें। यह तो चाहता है कि आप अपनी मनोवृत्ति को बदल दें और इस झूठी भ्रमपूर्ण अहन्ता और ममता को त्याग दें। संपेरा साँप के केवल दो विषेले दाँत ही उखाड़ता है। साँप वैसा ही रहता है। यह फुंकार मारता है, फन भी उठाता है और दाँत भी दिखाता है। वास्तव में यह सब कार्य पूर्व की भाँति ही करता है। सँपेरे ने सर्प की ओर अपनी मनोवृत्ति को बदल दिया है। अब उसमें यह भावना है कि इसके विषैले दाँत नहीं हैं। इसी प्रकार आपको भी मन के दोनों ही विषैले दाँतों-अहन्ता और ममता को उखाड़ डालना चाहिए। तब मन को जहाँ यह चाहे, जाने दे सकते हैं। तब आपकी सदा समाधि ही रहेगी।

आपको त्याग का अभिमान भी छोड़ देना चाहिए। त्याग का अभिमान बड़ी दृढ़ता से बद्धमूल होता है। आपको यह भाव निकाल देना चाहिए कि 'मैंने प्रत्येक वस्तु का त्याग कर दिया है। मैं बड़ा त्यागी हूँ।' साधुओं का यह अभिमान गृहस्थियों के इस अभिमान से भी बुरा है कि 'मैं पृथ्वीपति हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ इत्यादि।

परिच्छेद- २६

इन्द्रिय-संयम

इन्द्रियाँ मन का प्रवर्धित रूप हैं

पदार्थ-स्वरूप वासनाएँ इन्द्रियाँ हैं। देखने की इच्छा आँख है। सूँघने की इच्छा कान हैं। इन्द्रियों की दो अवस्थाएँ होती हैं : एक गतिशील (Dynamic) और दूसरी निश्चल (Static)। जब वासना अपना काम प्रारम्भ करती है तो इन्द्रियाँ प्रवृत्तिशील हो जाती हैं। यह गतिशील अवस्था है। जैसे ही वासना की पूर्ति हो जाती है, इन्द्रियों की तृप्ति हो जाने से वे संकुचित हो जाती हैं। यह निश्चल अवस्था है।

मन और इन्द्रियाँ एक हैं। मन का प्रवर्धित रूप इन्द्रिय है। समुद्र नदियों से भरा जाता है; बिना नदियों के समुद्र की स्थिति नहीं रह सकती। इसी प्रकार मन इन्द्रियों द्वारा पूर्ण होता है; बिना इन्द्रियों के मन का अस्तित्व नहीं रह सकता। जो इन्द्रियों को वश में कर लेता है, वह मन को पहले ही वश में कर चुका होता है। इन्द्रिय मन का एक नाम है।

मन इन्द्रियों का समूह है। मन इन्द्रियों से श्रेष्ठतर शक्ति है। मन समाहित इन्द्रिय है। इन्द्रिय मन का अभिव्यक्त रूप है। जैसे मन्त्री राजा की आज्ञा का पालन करता है वैसे ही पंच-ज्ञानेन्द्रियाँ मन के आदेशानुसार कार्य करती हैं। मन

में खाने की वासना जिह्वा, दाँत और उदर के रूप में प्रकट हुई है। मन में चलने की वासना पैर के रूप में प्रकट हुई है। यदि मन को वश में कर लिया जाये तो इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं।

आँखें केवल देख सकती हैं। कान केवल सुन सकते हैं। जिह्वा केवल स्वाद ले सकती है। त्वचा केवल स्पर्श कर सकती है। नाक केवल सूंघ सकती है। परन्तु मन देख सकता है, सुन सकता है, स्वाद ले सकता है, स्पर्श कर सकता है और सूंघ सकता है। मन सामूहिक संवेदी है। पाँचों इन्द्रियाँ वहाँ मिली हुई हैं। यह इन्द्रियों से स्वतन्त्र रह कर सीधे देख, सुन तथा सूंघ सकता है, स्वाद ले सकता है तथा स्पर्श कर सकता है। यह पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का समुच्चय है। पाँचों ज्ञानेन्द्रियों की शक्तियाँ मन में मिली होती हैं। योगाभ्यास से आप मन के द्वारा सीधे देख और सुन सकते हैं। इससे पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों के प्रतिबोधवाद (Theory of Perception) का निराकरण हो जाता है।

गीता में मन को छठी इन्द्रिय भी कहा है : **'मनः षष्ठानीन्द्रियाणि'** (गीता : १५-७)। पाँच इन्द्रियाँ ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और छठी इन्द्रिय मन है।

सब इन्द्रियों के अनुभव की मूल भूमि अर्थात् आयतन मन ही होता है। यदि मन का सम्बन्ध इन्द्रियों के साथ न रहे तो वे कुछ भी नहीं कर सकतीं। जब आप किसी रोचक समाचार-पत्र को पढ़ने में पूर्णतः लीन हों तो अपने मित्र की जोर की पुकार भी नहीं सुनते। आपको पता नहीं लगता कि कब घण्टे ने पाँच बजाये। यह प्रत्येक व्यक्ति का नित्य का अनुभव है। उस समय मन कहीं और ही लगा हुआ था। यह श्रवणेन्द्रिय के साथ नहीं था। गहरी निद्रा में नेत्र भले ही पूरे खुले रहें; परन्तु वे कुछ देखते नहीं; क्योंकि उस समय मन साथ में नहीं होता।

सहोदरा इन्द्रियाँ

नासिका और गुदा सहोदरा इन्द्रियाँ हैं। वे दोनों ही पृथ्वी-तन्मात्रा से उत्पन्न हुई हैं-नाक सात्त्विक अंश से और गुदा राजसिक अंश से। ये दोनों इन्द्रियाँ सबसे कम हानिकर हैं। गन्धेन्द्रिय तथा गन्धचेता अधिक दुःख नहीं देती हैं और इनका संयम भी सरलता से हो सकता है।

जिह्वा और उपस्थ (जननेन्द्रिय) जल-तन्मात्रा से उत्पन्न हुई हैं- पहली सात्त्विक अश से और दूसरी राजसिक अंश से। ये सहोदरा इन्द्रियाँ हैं। भोजन से जननेन्द्रिय को शक्ति मिलती है।

चक्षु और पैर अग्नि-तन्मात्रा से उत्पन्न हुए हैं-नेत्र सात्त्विक अंश से और पैर राजसिक अंश से। ये सहोदरा इन्द्रियाँ हैं। आँख दृश्य देखना पसन्द करती है और पैर उसे वहाँ ले जाने को तैयार रहते हैं।

त्वचा और हाथ वायु-तन्मात्रा से उत्पन्न हुए हैं-त्वचा सात्त्विक अंश से और हाथ राजसिक अंश से। ये सहोदरा इन्द्रियाँ हैं। त्वचा को रेशम और दूसरे कोमल पदार्थ उपभोग के लिए चाहिए और हाथ वही पदार्थ प्राप्त करने को तैयार रहते हैं।

वाक्-इन्द्रिय और कान दोनों आकाश-तन्मात्रा से उत्पन्न हुए हैं-कान सात्विक अंश से और वाक् राजसिक अंश से। ये सहोदरा इन्द्रियाँ हैं। ये एक-दूसरे की सम्बन्धी और सहायक हैं।

आप देखेंगे कि बँगले में दो सदर फाटक हुआ करते हैं-एक आने के लिए और सरा जाने के लिए। हमारी देह भी भगवान् के लिए अच्छा बंगला है। आँखें और कान रूप और शब्द के प्रवेश-द्वार हैं। ये इन्द्रिय-ज्ञान के मार्ग हैं। उपस्थ इन्द्रिय और गुदा विर्णम-द्वार हैं। इनसे मल और मूत्र बाहर निकलते हैं।

जिह्वा का संयम सर्वाधिक कठिन है

सबसे अधिक चंचल और दुःखदायी जननेन्द्रिय है। उससे कम जिह्वा, उससे वाक्-इन्द्रिय, फिर कान और आँख हैं। जिह्वा का संयम जननेन्द्रिय के संयम से भी अधिक कठिन है; क्योंकि जन्म से ही सुस्वादु पदार्थ खाते रहने का अभ्यास होता है। काम-वासना अट्ठारहवें वर्ष में प्रकट होती है। यौन-सुख का सेवन तो अल्प काल तक ही किया जाता है; परन्तु भोजन तो जराजीर्णावस्था में भी करना पड़ता है। जिह्वा के संयम से ही सारी इन्द्रियों का संयम होता है।

गाना, सिनेमा, सैर, तमाशे आदि का उपभोग मनुष्य-जन्म में ही किया जाता है। चींटियाँ और चूहे सिनेमा नहीं देखते। चक्षुरिन्द्रिय इतनी प्रबल नहीं होती जितनी जिह्वेन्द्रिय होती है।

चक्षु-इन्द्रिय रसनेन्द्रिय की प्रिय सहकारी है। आम का पीला-पीला रूप देखते ही मन में गुदगुदी होती है। आँख सुन्दर आम को देखती है और अनेक प्रकार के भोजन को भी जो सामने रखा जाता है, देखती है। तत्काल जिह्वा-ग्रसनीचेता उद्दीप्त होने लगती है। आपको भोजन की अच्छी रुचि होती है। भोजन अधिक स्वादिष्ट और ग्राह्य हो जाता है। अन्धे मनुष्य को भोजन से इतनी अच्छी रुचि नहीं होती जितनी कि तीव्र दृष्टि वाले मनुष्य को होती है।

इन्द्रियों को बहिर्गामी होने से रोकना ही साधना का उद्देश्य है

आँख, कान और जिह्वा- ये तीनों इन्द्रियाँ मन को बहिर्मुखी कर देती हैं और मनुष्य पूर्णतः संसारी हो जाता है। आँख और कान वृत्ति-ज्ञान के मार्ग हैं। आँखें बन्द कर लें और कानों को रुई की डाट लगा कर या दोनों अँगूठों से बन्द कर लें (इसे योनिमुद्रा कहते हैं)। अब आपने संसार के पाँच में से दो द्वार नष्ट कर दिये हैं। इन दोनों ज्ञानेन्द्रियों के द्वारों में से किसी भी चीज को मन में प्रवेश न करने दें।

साधन का आशय आत्मनिरीक्षण अथवा अन्तर्मुखी वृत्ति द्वारा मन को अन्तर्मुखी करके अपने अन्दर ही सत्य का अनुभव करना है। आँख, कान और जिह्वा-इन तीन इन्द्रियों का संयम करें, तब आप इस मन को वश में करके इसकी शक्ति को बाहर जाने से रोक सकते हैं। ये इन्द्रियाँ ही मन को अशान्त बनाती है। इन पर संयम शक्ति को अन्दर केन्द्रित करने में सहायक होता है।

सच्चा क्षत्रिय वही है जो मन के साथ आन्तरिक युद्ध छेड़ता है, जो स्वभाव और इन्द्रियों के साथ विवेक और इच्छा-शक्ति द्वारा आन्तरिक युद्ध करता रहता है और मन पर पूर्ण विजय प्राप्त कर लेता है। जो सत्वगुण की वृद्धि करके बुरे संस्कारों और बुरे विचारों से, रजोगुण और तमोगुण से युद्ध छेड़ता है, वही सच्चा क्षत्रिय है। जिसका शस्त्र इच्छा-शक्ति और अस्त्र विवेक है जिसका युद्ध-क्षेत्र मन के ही अन्दर है, जिसका मारू बाजा प्रणव-ध्वनि और छान्दोग्य उपनिषद् का उद्गीथ है और जिसका कवच विवेक, वैराग्य और मुमुक्षुत्व हैं, वही सच्चा क्षत्रिय है।

इन्द्रिय-संयम कैसे करें ?

इन्द्रियों को वश में करने के छह उपाय हैं: (१) विचार द्वारा, (२) इच्छा-शक्ति द्वारा, (३) कुम्भक द्वारा, (४) दम द्वारा, (५) प्रत्याहार द्वारा और (६) वैराग्य तथा त्याग द्वारा। पूर्ण संयम केवल विचार द्वारा ही हो सकता है।

दम

केवल दम से इन्द्रियों का संयम नहीं हो सकता। इन्द्रियाँ यदि प्रबल हों तो वे अच्छे-अच्छे साधकों के मन को भी इसी प्रकार प्रचण्ड वेग से उड़ा ले जाती हैं, जैसे समुद्र के झंझावात में प्रबल वायु जलपोत को ले जाती है (गीता: २-६७)। मन की सहायता से सद्विचार द्वारा उनका पूर्ण संयम हो सकता है।

जब आप मद्रास में माउण्ट रोड पर टहलते हैं, तब आपकी प्रत्येक इन्द्रिय अपने-अपने उपभोग तथा आमोद-प्रमोद के पदार्थ प्राप्त करने का यथाशक्य प्रयत्न करती है। यदि आप इन्द्रियों को वे पदार्थ प्राप्त नहीं करा देते तो वे बड़ा प्रबल उपद्रव मचाती हैं। जिह्वा आपको काफी होटल या होटल-डी एंजलिस की ओर खींचती है। त्वक् कहती है : 'चलो! बम्बई सेठ की दुकान पर चलें और बढ़िया चाइना सिल्क ले आयें।' कान कहते हैं : 'आओ! एक हारमोनियम या ग्रामोफोन खरीदें।' नाक कहती है: 'हमें ओटो डी रोज़ की एक बोतल ले दो।' इन सब इन्द्रियों को भड़काने वाला मन है। पाँचों इन्द्रियों में बड़ा उग्र आन्तरिक युद्ध चलता है और प्रत्येक अपने-अपने उपभोग के लिए बड़ा हिस्सा लेने को उत्सुक रहती है। सदा विवेक से काम लें। इन्द्रियाँ आपको प्रलोभन दे कर धोखे में डालती हैं। इन्द्रियाँ ऐन्द्रजालिक हैं। माया भी इन्द्रियों और मन के द्वारा अपना मोह-जाल फैलाती है। मंदा सचेत रहें। वैराग्य और वासना-त्याग के द्वारा दम की अभ्यास करें। इन्द्रियों और पन की उपरति से आनन्द प्राप्त होता है। विताई के बाजारों में खूब पैसा ले कर जायें। चन्दरह मिनट इधर-उपर टहलते रहें। भाँति-भाँति की विडयो को लोभमची दृष्टि से देखें। कोई चीज न खरीदें और घर को वापस आ जायें। उस दिन या या यदि स्वादिष्ट भोजन भी दिये जायें तो उन्हें ग्रहण न करें। सादा भोजन करें। ऐसा करने से जिद्या वश में कर लेंगे जो सभी क्लेशों का मूल है। अन्ततः मन को भी वश में कर सकेंगे और आपकी इच्छा-शक्ति भी बढ़ेगी।

सारे राजसी भोजन और इन्द्रियों के उपभोग के सारे पदार्थ छोड़ दें। तीव्र तप का अभ्यास करें। तप से इन्द्रियाँ दुर्बल हो जाती हैं और अन्त में मन भी वश में हो जाता है। यदि आप चाय पीना छोड़ दें तो आपने वस्तुतः मन के अल्पांश को वश में कर लिया। जिह्वा-संयम का अर्थ मन का संयम है।

प्रत्याहार

जब इन्द्रियाँ पदार्थों का परित्याग कर देती हैं तो वे मानस-द्रव्य का रूप बन जाती हैं। वे मन में लीन हो जाती हैं। यह प्रत्याहार कहलाता है। जब इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों से अलग हो जाती हैं तो इन्द्रिय-प्रत्याहार होता है। जब मन इन्द्रियों से अलग हो जाता है तो मानसिक प्रत्याहार होता है। प्रत्याहार एक सामान्य शब्द है जिसमें दम भी अन्तर्विष्ट है। दम का परिणाम प्रत्याहार है।

यदि आप संज्ञानपूर्वक इच्छानुसार प्रत्याहार कर सकते हैं अर्थात् मन को इन्द्रियों के साथ संयुक्त अथवा वियुक्त कर सकते हैं तो आपने मन का बहुत निग्रह कर लिया है। आप किसी समय भी मन की बहिर्गामी वृत्तियों को रोक सकते हैं। आन्तरिक आध्यात्मिक जीवन के लिए प्रत्याहार प्रथम सोपान है। जो प्रत्याहार में सफल हो गया, वह सुगमता से दीर्घ काल तक मन को एकाग्र कर सकता है। यदि प्रत्याहार पूर्ण हो तो धारणा और ध्यान स्वयं ही आ जाते हैं। प्रत्याहार पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने के लिए साधक को बड़ा प्रयास करना पड़ता है। प्रत्याहार में सफलता के लिए वैराग्य का होना आवश्यक है। कुछ वर्षों तक निरन्तर परिश्रम-सहित प्रयास करते रहने से आपको सफलता मिल सकती है। योगसूत्र में कहा है कि जब प्रत्याहार पूर्ण हो तो सारी इन्द्रियों का सबसे उत्कृष्ट वशीकरण होता है- **'ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्'** (पातंजल योगसूत्र : २-५५)।

साधना-काल में अधिक न मिलें-जुलें, अधिक बात-चीत न करें, अधिक चलें नहीं, अधिक भोजन न करें तथा अधिक सोयें नहीं। इन पाँचों निषेधों का सावधानी से पालन करें। मिलने-जुलने से मन में उद्वेग होता है। अधिक बोलने से मन की एकाग्रता भंग होती है। अधिक चलने से थकान और कमजोरी होती है। अधिक भोजन से आलस्य और तन्द्रा आती है।

विचारों पर नियन्त्रण एक महान् माँग है

यदि घोड़ों की लगाम आपके हाथ में हो तो आपकी यात्रा कुशलतापूर्वक होगी। इन्द्रियाँ घोड़े हैं। इन्द्रियों पर यदि आपका अधिकार हो तो मोक्ष-मार्ग में आपकी यात्रा सकुशल हो सकती है। मन की सहायता के बिना इन्द्रियाँ कुछ नहीं कर सकतीं। इन्द्रिय-निग्रह का अर्थ केवल मन का निग्रह है। विचारों के संयम से मन और इन्द्रियों का भी निग्रह होता है। इससे अपार आनन्द और अमर जीवन मिलता है। विचार का संयम अपरिहार्य है और सबके लिए अत्यन्त अपेक्षित है।

अपने मूल निवास का स्मरण करें

हे मन! इन्द्रियों और उनके विषयों की संगति में पड़ कर तुम अपना सर्वनाश मत करो। पर्याप्त हो चुका है। अब अपने को ब्रह्म-स्वरूप पर एकाग्र कर लो। वही तुम्हारा मूल स्थान है। वह तुम्हारा वास्तविक सुखमय घर है। जब ॐ का उच्चारण करो तब इस बात का ध्यान रखो। इससे ब्रह्माकार अथवा अखण्डाकार-वृत्ति उत्पन्न होगी। क्योंकि तुम अपना वास्तविक स्वरूप बार-बार भूल जाते हो, इसलिए मुझे इसे बार-बार दोहराना पड़ता है कि स्वरूप तुम्हारा असली घर है। तुमने स्वरूप से ही जन्म लिया है। सतत निदिध्यासन से उत्पन्न हुई ब्रह्माकार-वृत्ति की सहायता से, तैलधारावत् महावाक्य के अनुसन्धान से अपने वास्तविक स्थान में लौट जाओ। तब अविद्या का नाश हो जायेगा और तुम हर प्रकार के सन्ताप और दुःखों से मुक्त हो कर परमानन्द-पद प्राप्त कर लोगे। जब स्वरूपाकार-वृत्ति पैदा होगी तो तुम्हारे सब मिथ्या संकल्प भी नष्ट हो जायेंगे। तुम सहजानन्द के साथ तुरीयावस्था को पहुँच जाओगे। हे मन! तब तुम जन्म-मरण से मुक्त हो जाओगे और यह हाड़-मांस का पिंजर गन्दा शरीर तुम्हें नहीं मिलेगा। तुम अपने अधिष्ठान सच्चिदानन्द ब्रह्म में लीन हो जाओगे।

परिच्छेद-२७

मौन तथा आत्मनिरीक्षण

मौन, उसका अभ्यास तथा उसके लाभ

मिली-जुली अनेक प्रकार की बातचीत करना बहुत बुरा स्वभाव है। इससे मन अपकृष्ट रहता है। यह मन को सदा बहिर्मुख बनाता है और मनुष्य आध्यात्मिकता से हट जाता है। सप्ताह में एक बार मौन-व्रत का पालन अवश्य करना चाहिए। बोलने से बहुत शक्ति का अपव्यय होता है।

वाक्-इन्द्रिय मन को बुरी तरह अपकृष्ट करती है। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है-"वाणी मन-रूपी ब्रह्म का चौथा चरण है, क्योंकि वाणी-रूपी चरण के द्वारा ही आप उद्दिष्ट गाय, बकरी आदि पदार्थों तक पहुँच पाते हैं। इसलिए वाणी मन का एक चरण है; क्योंकि नासिका के द्वारा ही सूँघने योग्य पदार्थों को आप प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार चक्षु और श्रोत्र भी मन के चरण हैं। यह मन-ब्रह्म के चार चरणों का स्वरूप है" (छा. उ. ३-१८-१ से ६)।

वाक्-इन्द्रिय से किसी बात को बाहर न आने दें। मौन रहें। इससे आपको सहायता मिलेगी। मौन रहने से अतुल शान्ति मिलती है। वाक्-शक्ति ओज-शक्ति में बदल जाती है। संकल्प बहुत घट जाते हैं। इच्छा-शक्ति बलवती हो जाती है। अब आपने उपद्रव का एक बड़ा कारण बन्द कर दिया। अब आपको शान्ति मिलेगी। अब दृढ़ निश्चय के साथ ब्रह्म का ध्यान करें।

आध्यात्मिक साधकों को नित्य ही कुछ घण्टों के लिए मौन रखना चाहिए।

बोलने से पहले अपने शब्दों को चुनने में सतर्क रहें। बोलने से पहले दो-तीन बार सोच लें। विचार करें कि आपके शब्द दूसरे के मन पर क्या प्रभाव डालेंगे ? कुछ वर्षों तक मौन रहें। यह वाङ्मय तप है।

अनावश्यक विवाद न करें। विवाद से विरोध, उत्तेजना बढ़ते हैं और शक्ति क्षीण होती है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना-अपना मत, विचार, भाव और विश्वास होता है। दूसरों के मत को बदलना अति कठिन है। दूसरों को विश्वास दिलाने का प्रयत्न न करें। जब तक आप साधक हैं और धार्मिक विषयों में जानकारी प्राप्त ही कर रहे हैं, जब तक आपके विचार परिपक्व और स्थिर न हो जायें, दूसरे से विवाद न करें।

मन का अनुमान सदा बात को बढ़ाया करता है। अत्युक्ति एक प्रकार का असत्य है। साधकों को अत्युक्ति नहीं करनी चाहिए। उन्हें गणितीय तथा वैज्ञानिक परिशुद्धता से शब्द बोलने चाहिए।

साधक को संग छोड़ने और मौन रहने का इसलिए आदेश दिया जाता है; क्योंकि राग के कारण वह बहुत लोगों से जानकारी बढ़ायेगा और द्वेष के कारण कुछ अप्रिय शब्द बोल कर कुछ लोगों को अप्रसन्न कर देगा। जिह्वा में तलवार होती है। शब्द तीर के समान होते हैं। वे दूसरों के भाव को चोट पहुँचाते हैं। मौन रहने और संगति छोड़ देने से मनुष्य वागिन्द्रिय का संयम कर सकता है। तब मन शान्त हो जाता है।

संग से १५ दोष उत्पन्न होते हैं, इसलिए साधना-काल में साधक को अकेले रहना ही उचित है। संग-दोष ये हैं : (१) नासमझी, (२) कुभाव, (३) अप्रसन्नता, (४) राग-द्वेष, (५) ईर्ष्या, (६) अहंकार, (७) आसक्ति, (८) दूसरे के दुःख के मानसिक भाग, (९) दूसरे की आलोचना, (१०) अनात्म विषयों की चर्चा, (११) बोलने का स्वभाव, (१२) बहिर्मुख वृत्ति, (१३) द्वैत का भाव और संस्कार, (१४) दासत्व की मनोवृत्ति तथा दुर्बल इच्छा-शक्ति और (१५) घृणा। थोड़ा प्रेम करें, परन्तु दीर्घ काल तक।

जब आप मौन-व्रत लें तो अन्दर से बार-बार कभी न कहें, "मैं बोलूंगा नहीं, मैं बोलूँगा नहीं।" इससे मस्तिष्क में थोड़ी गरमी पैदा हो जायेगी; क्योंकि मन आपसे प्रतिशोध लेना चाहता है। केवल एक बार निश्चय कर लें और फिर शान्त रहें। दूसरी बातों को देखें। सदा यही न सोचते रहें, "मैं बोलूंगा नहीं, मैं बोलूँगा नहीं।"

जब आप मौन व्रत रखते हैं तो प्रारम्भ में आपको कठिनाई मालूम होती है। वृत्तियों का बड़ा तीव्र आक्रमण होगा। अनेक प्रकार के विचार उठेंगे और आपको मौन भंग करने के लिए बाध्य करेंगे। यह सब मन की व्यर्थ कल्पना है, मन का भुलावा है। साहसी बनें। सारी शक्तियाँ ईश्वर में केन्द्रित कर दें। मन को पूर्ण रूप से विचार में लगाये रखें। बात करने और संगति करने की इच्छा जाती रहेगी। आपको शान्ति मिलेगी। वाक्-इन्द्रिय मन को बहुत चलायमान कर देती है।कहा

मन का मौन

मन का मौन वाणी के मौन से उत्तम है। मौन स्वयं ही आना चाहिए। यह स्वाभाविक होना चाहिय। बलपूर्वक करने से मन के साथ झगड़ना पड़ता है. प्रत्य काना पड़ता है। यदि आप सत्य में निवास करें तो भौन स्वतः ही आयेगा। तब ही पूर्ण शान्ति होगी ।

प्राकृतिक मौन और मानसिक नाता होनी चाहिए। शारीरिक जमता निरर्थक है। यह मुखों को हामसिक तप है जिसका शास्त्र और बुद्धि अनुमोदन नहीं करते हैं। जीवन्मुक्त है भूत स्वाभाविक हो जाती है, जब वह सप्तम भूमिका में पहुँच कर ब्रा में लीन रहता है।

आत्मनिरीक्षण क्या है और यह क्या करता है?

स्वयम्भू ब्रह्म ने मन और इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाया है। स्मरणातीत काल से बहिर्मुख होना मन की बड़ी हानिकर आदत है। इसलिए आप बाह्य जगत् को देखते हैं; किन्तु अन्तरात्मा को नहीं देखते। विक्षेप-शक्ति या माया आपको बाहर की ओर खींचती है। बचपन से ही आपको बाह्य जगत् को देखना सिखाया जाता है और अन्तर के सामहिक जगत् की ओर बिलकुल ही ध्यान नहीं दिया जाता। आपने अन्तर्निरीक्षण की कला को बिल्कुल खो दिया है। मन के अन्दर क्या चल रहा है। इसको भली प्रकार जान लेने के लिए शुद्ध बुद्धि और अन्तर्निरीक्षण की सूक्ष्म बुद्धि की आवश्यकता होती है। आपको मन को अन्तर्मुखी करना होगा। फिर इसकी सारी शक्तियों को इकट्ठा करके स्वय कान के ऊपर डाल देना होगा जिससे कि मन अपना स्वरूप जान जाये और विश्लेषण कर ले। यह राजयोग है।

स्वयं अपने अन्तर्जगत् में खूब छानबीन करें। अपने मन और इन्द्रियों पर विश्वास न करें। श्री और धन आपके शत्रु हैं। ये दोनों महान् बुराइयाँ हैं।

अन्तर्निरीक्षण में मन ही स्वाध्याय का विषय होता है। मन का एक भाग शेष मन का अध्ययन करता है। उच्च मन निम्न मन की परीक्षा करता है। अन्तर्निरीक्षण आत्मबोध है। जैसे आप मजदूर का काम देखते हैं, इसी प्रकार मन का एक अंश शेष मन की क्रियाओं को देखता है। यदि आप मन को अपने से अभिन्न जानते हैं, यदि आप मन से सादात्म्य करते हैं तो आप अपने दोषों को नहीं जान सकते। यदि आप मन के साक्षी बनें तो आपको अपने अनेक दोषों का पता चल जायेगा।

ध्यानपूर्वक निरीक्षण से बहुत से दोष मालूम पड़ते हैं और उपयुक्त साधन से वे दूर किये जाते हैं। एकान्त कमरे में बैठ जायें, नित्य १५ मिनट प्रात:-सायं मौन हो जायें और ध्यानपूर्वक मन का अन्तर्निरीक्षण किया करें। मन या तो विचार करता होगा या योजना बनाता होगा या जानता होगा या इच्छा करता होगा या इन्द्रिय-ज्ञान प्राप्त करता होगा।

अन्तर्निरीक्षण से आपको मालूम करना होगा कि किस समय पर मन क्या कर रहा है? इसका अभ्यास करने के लिए अन्तर्मुखी वृत्ति, आत्मनिष्ठ मन तथा मूक्ष्म बुद्धि की आवश्यकता है। दर्शन-शास्त्र के स्वाध्याय, सत्संग, इन्द्रिय-निग्रह और मात्त्विक भोजन से बुद्धि को सूक्ष्म बनाया जा सकता है। हरि ॐ, नारायण, राम, शिव आदि परमात्मा के पवित्र नामों का निरन्तर उच्चारण करते रहने से मन शुद्ध होता है और अन्तर्मुख होने में सहायता मिलती है।

अन्तर्निरीक्षण कैसे करें?

आप ही अपने मन के सबसे अच्छे निर्णायक हैं। एक घण्टे अकेले रह कर या शान्त कमरे में चुप बैठ कर निरीक्षण करें। एकान्त कमरे में नेत्र बन्द करके बैठ कर मन की क्रियाओं को देखें। तब आपको मन के दोष और दुर्बलताओं का भली प्रकार ज्ञान हो जायेगा।

तत्पश्चात् आपको उन्हें निकाल देने की आवश्यकता मालूम होनी चाहिए। आपका स्वभाव भी परिवर्तन के अनुकूल बन जाना चाहिए। दोषों को दूर करने का ठीक-ठीक उपाय भी आपको मालूम होना चाहिए और वह उपाय बार-बार काम में लाना चाहिए। तभी सुधार आरम्भ होगा। साधना का निरन्तर उपयोग अपरिहार्य आवश्यकता है। कभी-कभी सप्ताह में, पक्ष में या मास में एक बार अपनी उन्नति को भी देखते रहना चाहिए। अपनी उन्नति के विवरण के लिए आध्यात्मिक दैनन्दिनी अवश्य रखनी चाहिए। ध्यान से देखें कि आप अध्यात्म-मार्ग में उन्नति कर रहे हैं, जहाँ थे वहाँ ही हैं या पीछे हट रहे हैं, आपका मन एकाग्र है या विक्षिप्त है। यदि मन में विक्षेप है तो धैर्यपूर्वक उपयुक्त प्रयत्नों से इस विक्षेप के कारणों को एक-एक करके दूर करना होगा। यदि एक उपाय से इष्ट उन्नति न प्राप्त हो तो दो उपायों को (योगविधि तथा विचार को) मिला कर काम में लाना चाहिए।

आत्म-विश्लेषण, स्वावलम्बन, आत्म-निर्णय-इस त्रिपुटी को याद रखें। आपकी आध्यात्मिक साधना में यह आपको अतीव लाभकारी होगी। अन्तर्निरीक्षण के द्वारा आत्म-विश्लेषण करें। अपनी वृत्तियों के लक्षण खोज लें। मालूम करें कि किस समय में कौन-सा गुण-सत्त्व, रज या तम-प्रधान है। आपका मन लक्ष्य (ईश्वर, ब्रा, कोई विचार, पदार्थ बाह्य या अभ्यन्तर) पर निरन्तर स्थिर रह सकता है। सारे पदार्थों को छोड़ कर केवल गुलाब पर ही आपका मन कितने काल तक स्थिर रह सकता है। दो मिनट, पाँच मिनट या आधा घण्टा ? यह आत्म-विश्लेषण कहलाता है। अपने ऊपर निर्भर रहें। आप अपने ही तारक या उद्धार करने वाले हैं। कोई आपको मोक्ष नहीं दे सकता। एक-एक पग करके आध्यात्मिक पथ पर आपको स्वयं ही चलना होगा। पुस्त के और गुरु तो आपको मार्ग बता सकते हैं। यह आत्मावलम्बन है। दृढ़ निश्चय करें कि ईश्वर को प्राप्त करूँगा। मैं अनिश्चित भविष्य में नहीं बल्कि इसी क्षण आत्म-सो कि मैं या ब्रह्मानुभव प्राप्त कर लूंगा।' यह आत्म-निर्णय कहलाता है।

संसारी मनुष्यों को कुछ मिनटों के लिए भी जीवन की समस्याओं तथा जीवन के रहस्यों पर विचार करने का समय नहीं मिलता। राग के कारण उसका मन विषय-भोग के पदार्थों की ओर दौड़ता है। उनकी मानसिक शक्तियाँ देह के विचारों, खाने और पहनने के बिचारों, स्त्री, बच्चों और मित्रों के विचारों तथा कार्यालय और व्यापार-सम्बन्धी विचारों में व्यय होती है और इस प्रकार दिन पूरा हो जाता है। दिन-प्रति-दिन, सप्ताह-प्रति-सप्ताह यही क्रम चलता रहता है। वर्षों बीत जाते हैं और जीवन व्यर्थ चला आता है। यह बड़ी शोचनीय बात है।

जो अन्तर्मुख वृत्ति के द्वारा मनन और अन्तर्निरीक्षण करता है, केवल वही पुरुष अपनी संसारी प्रकृति को बदल सकता है। केवल उसी मनुष्य में ब्रह्म का भाव स्थायी रूप से ठहर सकता है।

परिच्छेद- २८

कुवृत्तियाँ तथा उनका उन्मूलन

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, दर्प, दम्भ, असूया, ईर्ष्या, अहंकार, राग और द्वेष-ये कुछ कुवृत्तियाँ हैं। ये मनुष्य को संसार-बन्धन में डालती हैं। अभिमान, प्रम और इच्छाएँ मन को बाँधने के लिए कितनी ही रस्सियाँ हैं।

काम एक शक्तिशाली शक्ति है

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य-ये मन के छह विकार हैं। यदि काम पर विजय प्राप्त हो जाये तो लोभादिक सहायक शस्त्र भी बेकार हो जायेंगे। यदि इस पुराने शत्रु काम का नाश कर दिया जाये तो इसका परिवार बड़ी सुगमता से जीता जा सकता है। यदि सेनाध्यक्ष को पहले ही मार दिया जाये तो सिपाहियों को मारना बिलकुल सहज हो

जाता है। यदि काम से, जो समस्त भोगों की जड़ है, छुटकारा मिल जाये तो सारे सांसारिक बन्धन, जिनका अधिष्ठान मन है, स्वयं छूट जायेंगे। त्याग के बिना आप विरल निर्विकल्प समाधि अथवा ब्रह्मनिष्ठा की आशा कैसे कर सकते हैं?

काम उस मनुष्य में उत्पन्न होता है जो प्रतिजाति में आसक्ति रखता है। काम का सबसे बड़ा शस्त्र नारी है। इसलिए प्रतिजाति में आसक्ति बढ़ानी नहीं चाहिए।

पति और पत्नी का प्रेम मुख्यतः शारीरिक होता है। यह स्वार्थपूर्ण, अस्थायी और परिवर्तनशील होता है। जिसने आत्म-साक्षात्कार कर लिया है, केवल वही पुरुष सबको सच्चे हृदय से प्रेम कर सकता है। मन और बुद्धि की समानता के आधार पर बनाया हुआ दो साधकों का प्रेम सच्चा और स्थायी होता है। स्वार्थ-रहित हो जायें। स्वार्थ बड़ा प्रधान मल है। यह बुद्धि को आच्छादित कर लेता है। इसे निःस्वार्थ सेवा, दान, वेदान्त-साहित्य के स्वाध्याय और सत्संग द्वारा दूर कर दें।

ज्ञानी पुरुष में काम-वासना बिलकुल नष्ट हो जाती है। साधक पुरुष में यह भली प्रकार संयत रहती है। गृहस्थी पुरुष में यदि इसका संयम नहीं किया जाये तो यह बड़ा उपद्रव करती है। उन लोगों में यह अपने पूर्ण विकसित रूप में रहती है। वे इसका विरोध नहीं कर सकते। वे निस्सहाय हो कर इसके वश में हो जाते हैं; क्योंकि उनकी इच्छा-शक्ति दुर्बल होती है और उनमें दृढ़ निश्चय का अभाव होता है।

यदि आप सुवर्ण के प्याले में नीबू या इमली का रस भरें तो प्याला खराब नहीं होता। यदि आप पीतल या ताँबे के बरतन में भरेंगे तो रस एकदम खराब हो जायेगा अऔर हर्षिता बन जायेगा। इसी प्रकार यदि किसी मनुष्य के शुद्ध मन में विषय-वृत्तियाँ हों तो ये उसको मलिन नहीं करतीं और विकार उत्पन्न नहीं होता। यदि मलिन पुरुषों के मन में विषय-वृत्तियाँ हों तो जब वे विषयों के सम्मुख आते हैं, उनमें उत्तेजना होती है।

स्त्री की मूर्ति का ध्यान मन को विचलित कर देता है। जब शेर को एक बार मनुष्य रक्त का स्वाद मिल जाता है तो वह सदा मनुष्यों को ही शिकार बनाता है। इसी प्रकार अथ मन को एक बार यौन सुख का स्वाद मिल जाता है तो यह सदा स्त्री के पीछे भागता रहता है। काम बड़ा बलवान् है। इसके पास पुष्प-धनुष और मोहन, स्तम्भन, उन्मादन, शोषण और तापन ये पंचशर हैं।

भगवद्गीता में बताया गया है कि इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि काम के अधिष्ठान हैं। प्राणमय-कोश इसका दूसरा स्थान है। वासना सारे शरीर में व्याप्त रहती है। शरीर का प्रत्येक कोशाणु, प्रत्येक परमाणु, प्रत्येक अणु, प्रत्येक विद्युदणु वासना से पूर्ण हो जाता है। काम-सागर में प्रत्येक प्रकार की स्थूल, सूक्ष्म, बाह्य, आन्तरिक धाराएँ बहती हैं। आपको चाहिए कि इनमें से प्रत्येक का भली प्रकार नाश कर दें।

कामवासना का नाश करने में सचेत रहें। सचेतन मन को वश में कर लेना सुगम है, परन्तु अवचेतन मन (अन्तःकरण) को वश में करना अत्यन्त कठिन है-चाहे आप संन्यासी हों अथवा सदाचारी। आपको देखना चाहिए कि स्वप्न में मन की गतिविधि कैसी रहती है। आप स्वप्न में चोरी करने लगते हैं, परस्त्रीगमन करते हैं, कामुक भाव, आकांक्षाएँ, नीच भावनाएँ-ये सब आपमें जमी हुई होती हैं जो अवचेतन मन में बद्धमूल होती हैं; इससे अवचेतन मन और इसके संस्कारों को विचार, ब्रह्म-भावना तथा प्रणव के अर्थ-सहित ध्यान के द्वारा नष्ट करें। जो मनुष्य मानसिक ब्रह्मचर्य में स्थित है उसको स्वप्न में एक भी कुविचार नहीं आ सकता। उसको कभी दुःस्वप्न नहीं आ सकता। स्वप्न में विवेक और विचार नहीं होता। इसी कारण यद्यपि जाग्रतावस्था में विवेक और विचार के द्वारा आप पवित्र रहते हैं तो भी आपको दुःस्वप्न दिखायी देते हैं।

मन की वह अवस्था, जिसमें एक भी यौन-विचार मन में प्रवेश नहीं कर पाता, मानसिक ब्रह्मचर्य कहलाती है। भीष्म को यह अवस्था प्राप्त थी। यदि आप मानसिक ब्रह्मचर्य में स्थित नहीं हो सकते तो जब यौन-आवेग दुःख दे तो कम-से-कम शरीर को संयत करने का प्रयास करें।

साधकों के निरन्तर संकट का स्रोत

स्त्रियों की उपस्थिति या उनका ध्यान संसार से विरक्त और आध्यात्मिक साधना में तत्पर तपस्वियों के मन में भी प्रायः अपवित्र विचार उत्पन्न कर देता है और इस प्रकार उनकी तपश्चर्या के फल से उन्हें वंचित कर देता है। दूसरे मनुष्यों के मन में, विशेषकर आध्यात्मिक साधकों के मन में, सूक्ष्म कामवासना की उपस्थिति को जान लेना बड़ा कठिन है, यद्यपि दृष्टि, स्वर, भाव, गति, आचरण आदि से कुछ पता लग जाता है।

जैमिनि का दृष्टान्त

एक समय श्री वेदव्यास अपने शिष्यों को वेदान्त पढ़ा रहे थे। उन्होंने बताया कि 'युवा ब्रह्मचारियों को बहुत सावधान रहना चाहिए और युवतियों से नहीं मिलना चाहिए; क्योंकि अपनी सतर्कता रखते हुए भी वे काम के शिकार बन सकते हैं। कामदेव बड़ा बली है।' पूर्व-मीमांसा का रचयिता जैमिनि उनका शिष्य बड़ा धृष्ट था। उसने कहा, "गुरु जी महाराज! आपकी बात गलत है। मुझे कोई स्त्री आकृष्ट नहीं कर सकती। मैं ब्रह्मचर्य में स्थित हूँ।" व्यास ने कहा, "जैमिनि, तुम्हें शीघ्र ही मालूम हो जायेगा। मैं वाराणसी जा रहा हूँ। तीन मास के भीतर लौट कर आऊँगा। तुम सावधान रहना। अहंकार से फूल मत जाना।" अपनी योग-शक्ति के द्वारा श्री व्यास ने एक सुन्दर युवती का रूप बना लिया, बड़ी तीखी आँखें, मनोहर मुख और रेशमी वस्त्रों से सुसज्जित। सूर्यास्त के समय वह युवती वृक्ष के नीचे खड़ी थी। बादल घिर आये, वर्षा होने लगी। संयोगवश जैमिनि उसी वृक्ष के पास से हो कर जा रहा था। उसने उस कन्या को देखा और दया करके उससे कहने लगा, "हे सुन्दरी! तुम मेरे आश्रम में आ कर रह सकती हो। मैं तुम्हें आश्रय दूँगा।" युवती ने पूछा, "क्या आप अकेले रहते हैं? क्या कोई स्त्री वहाँ रहती है?" जैमिनि ने उत्तर दिया, "मैं अकेला हूँ; परन्तु मैं पूर्ण ब्रह्मचारी हूँ। मुझे कामवासना का प्रभाव नहीं हो सकता। मैं प्रत्येक प्रकार के विकार से मुक्त हूँ। तुम वहाँ रह सकती हो।" युवती ने आपत्ति की, “कुमारी युवती के लिए ब्रह्मचारी के साथ रात्रि में अकेले रहना उचित नहीं है।" जैमिनि ने कहा, “सुन्दरी, भय मत करो। मैं तुम्हें पूर्ण ब्रह्मचर्य का वचन देता हूँ।" तब युवती मान गयी और रात्रि को उसके आश्रम में ठहर गयी। जैमिनि बाहर सोया और वह युवती कमरे के अन्दर सो रही थी। रात्रि के पिछले प्रहर में जैमिनि के मन में कामदेव का संचार होने लगा। प्रारम्भ में वह बिलकुल पवित्र था। उसने दरवाजा खटखटाया और कहा, "हे सुन्दरी ! बाहर हवा चल रही है। मैं ठण्डी वायु नहीं सह सकता। मैं अन्दर सोना चाहता हूँ।" युवती ने द्वार खोल दिया। जैमिनि अन्दर सो गया; क्योंकि वह एक श्री के अति-निकट था और उसकी चूड़ियों का शब्द सुन रहा था, इसलिए वासना कुछ अधिक तीव्र हो गयी। तब वह उठा और युवती का आलिंगन करने लगा। तुरन्त श्री व्यास जी ने अपना दाढ़ीदार वास्तविक रूप प्रकट किया और कहा : "हे प्रिय जैमिनि! कहो, अब तुम्हारा ब्रह्मचर्य का बल कहाँ है? क्या तुम पूर्ण ब्रह्मचर्य में स्थित हो ? जब इस विषय पर मैं व्याख्यान दे रहा था तो तुमने क्या कहा था।" जैमिनि ने लज्जा से शिर झुका लिया और कहा : "गुरु जी! मुझसे भूल हुई। कृपया मुझे क्षमा कर दीजिए।"

ईसामसीह को भी शैतान ने लुभा दिया था। बुद्ध को निर्वाण प्राप्त करने से पहले मार (काम) के साथ बड़ा युद्ध करना पड़ा था।

माया से सावधान रहें-साधकों को एक चेतावनी

इसलिए प्रिय साधको! आपको अत्यन्त सतर्क रहना होगा। साधना-काल में स्त्रियों की संगति से बचना ही श्रेयस्कर है। आप कितने भी दृढ़ क्यों न हों, आपको युवतियों का संग कभी नहीं करना चाहिए। माया ऐसे चुपके-चुपके सूक्ष्म संचारों के द्वारा काम करती है कि आपको अपने वास्तविक पतन का पता भी नहीं लगेगा।

मन को आध्यात्मिक कार्यों में पूरा-पूरा लगाये रखें। इसलिए प्रत्येक उस वस्तु से अतीव दूर रहें जो आपकी वासनाओं को जाग्रत कर दे। तभी आप सुरक्षित रहेंगे।

गृहस्थियों के साथ कभी नहीं रहना चाहिए। जब आप पथ पर प्रारम्भिक अवस्था में हैं तो अपने आत्मबल और पवित्रता की कभी परीक्षा न करें। आध्यात्मिक पथ के नवीन पथिक को यह दिखाने के लिए कि उसमें पाप और मलिनता का सामना करने के लिए साहस है, कभी कुसंगति में नहीं पड़ना चाहिए। यह बड़ी भारी भूल होगी। आप महान् आपत्ति में पड़ जायेंगे और शीघ्र ही आपका अध:पतन हो जायेगा। छोटी-सी अग्नि को रेत की ढेरी बड़ी आसानी से बुझा देती है।

मन में अनुकरण करने की बड़ी शक्ति है। इसलिए आध्यात्मिक साधक को गृहस्थियों से मिलना वर्जित है। उसका मन भी संसारी मनुष्यों के मन का अनुकरण करने लगेगा। फलस्वरूप उनका पतन आरम्भ हो जायेगा।

यदि कोई साधक धनिकों, जमींदारों और राजाओं के साथ रहता है तो उसका मन इनकी विलासपूर्ण प्रकृति का अनुसरण करने लगता है और शीघ्र ही उसका अनजाने में अध:पतन हो जाता है। उसमें कुछ बुरी आदतें पड़ जाती हैं और उसे इनको दूर करना कठिन प्रतीत होता है। चालीस वर्ष की अवस्था के बाद पुरानी आदतों को दूर करना और नयी स्वस्थ आदतें बनाना कठिन होता है।

आवश्यक बुलावा होने पर साधक अपने जन्म-स्थान में थोड़े समय तक रह सकता है। चाहे वह स्थान उसको कितना ही अनुकूल हो और वैराग्य चाहे कितना भी बढ़ा हुआ हो, यौगिक नियम उसको अति दीर्घ काल तक वहाँ रहने की आज्ञा नहीं दे सकते। संस्कारों का बल बड़ा भारी होता है। जब तक सारे संस्कार असम्प्रज्ञात समाधि या निर्विकल्प अवस्था के द्वारा पूर्णतया भस्म न हो जायें, उसके लिए अपने जन्म-स्थान में दीर्घ काल तक रहना सुरक्षित नहीं है। अभी वह भय-प्रदेश में ही है।

पाँच वर्ष एकान्तवास करने के उपरान्त साधक को अपनी मानसिक अवस्था की जाँच संसार में आ कर और संसारी मनुष्यों के साथ रह कर करनी चाहिए। यदि वस्तुओं की ओर आकर्षण नहीं होता तो उसे निश्चय समझ लेना चाहिए कि वह तीसरी ज्ञान-भूमिका-तनुमानसी को प्राप्त कर चुका है जिस अवस्था में मन धागे के समान पतला हो जाता है।

कामवासना कैसे विकसित होती तथा विनाश करती है

संस्कारों और वासनाओं की क्यारी में स्मृति के द्वारा कल्पना प्रकट होती है। फिर आसक्ति होती है। कल्पना के साथ-साथ भाव और मनोवेग आते हैं। ये दोनों साथ-साथ रहते हैं। फिर काम-सम्बन्धी उत्तेजना, काम-पिपासा मन में उद्वेग और शरीर में तपन उत्पन्न होती है। मन का उद्वेग और ताप सारे शरीर में फैलता है जैसे घड़े के अन्दर का पानी घड़े के बाहर व्याप्त हो जाता है। यदि आप बहुत सावधान रहें तो प्रारम्भ में ही कल्पना को भगा सकते हैं और इस प्रकार इस भय का निवारण कर सकते हैं। यदि कल्पना-रूपी चोर प्रथम द्वार में प्रवेश कर भी जाये तो जब उद्वेग पैदा हो तो दूसरे द्वार पर सावधान रहें। अब आप तपन को रोक सकते हैं। आप तीव्र कामवासना को भी इन्द्रिय तक जाने से सुगमतापूर्वक रोक सकते हैं। उड्डियान और कुम्भक द्वारा काम-शक्ति को ऊपर खींच लें। बल-सहित प्रणव का मानसिक जप करें। मन को दूसरी ओर लगायें। प्रार्थना करें। ध्यान करें।

कामवासना का नियन्त्रण

जैसे आप शरीर के हाथ और पैर में खुजली का निग्रह करते हैं, उसी प्रकार कामवासना की खुजली का निग्रह भी विवेक, विचार, ब्रह्म-भावना, सात्त्विक हलका भोजन, उपवास, प्राणायाम, उड्डियान-बन्ध, सत्संग आदि के द्वारा करना चाहिए। आपको आध्यात्यिक आनन्द का अनुभव तभी हो सकता है।

विचार तथा ब्रह्म-भावना

सतत विचार और ब्रह्म-भावना के द्वारा ही मन को कामपूर्ण विचारों तथा प्रवृनियाँ से युक्त किया जा सकता है। आपको न केवल कामवासनाओं तथा कामप्रवृतियों को दूर करना चाहिए, अपितु यौन-आकर्षणों को भी त्यागना चाहिए। विवाहित जीवन और अकी भाँति-भाँति की उलझनों तथा बन्धनों से आपको कितने कितने क्लेश मिलते है, तनिक इस पर तो विचार करें। मन को बार-बार आत्म-सुझाव द्वारा भली प्रकार समझायें कि यौन सुख व्यर्थ, मिथ्या, भ्रामक और दुःखपूर्ण है। मन के सामने आध्यात्मिक जीवन के लाभ, आनन्द, शक्ति और ज्ञान रखने चाहिए। उसे समझाना बाहिए कि उच्चतम नित्य जीवन केवल आत्मा में ही है। जब यह लगातार इन लाभदायक सुझावों को सुनता रहेगा तो धीरे-धीरे अपनी पुरानी आदतों को छोड़ देगा। शनैः-शनैः यौन-आकर्षण भी शान्त हो जायेगा। तभी यौन-उदात्तीकरण होगा और आप ऊर्ध्वरेता बन जायेंगे।

आत्मा नपुंसक है। पंचतत्त्वों में लिंग भेद नहीं है। मन ही यह यौन-विचार उत्पन्न करता है। शुकदेव में यौन-विचार नहीं था। यह समझें कि स्त्री पंचतत्त्वों का संघात है। विद्युदणुओं तथा अणुओं का घन है। यौन-विचार धीरे-धीरे नष्ट हो जायेगा।

शुद्ध विवेक

मन में दो प्रकार की शक्तियाँ होती हैं- एक अनुकूल या सहायक और दूसरी प्रतिकूल या विरोधी। कामवासना विरोधी शक्ति है जो आपको नीचे की ओर घसीटती है। शुद्ध विवेक सहायक शक्ति है जो आपको ऊपर उठा कर देवत्व प्राप्त कराता है। इसलिए निर्मल आनन्द और परब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करने के लिए शुद्ध विचार का विकास करें। कामवासना अपने-आप नष्ट हो जायेगी।

सात्त्विक भोजन

लघु, सात्त्विक आहार यथा दूध, फल इत्यादि का भोजन करें। इस प्रकार कामवासना का संयम किया जा सकता है। बुद्धिमान् पुरुषों का कहना है कि आहार की शुद्धि से मन की शुद्धि होती है।

उपवास

उपवास करने से जननेन्द्रिय में दुर्बलता आती है जिससे काम की उत्तेजना नष्ट होती है। कामी युवक और युवतियों को यथावकाश उपवास करते रहना चाहिए। यह बड़ा लाभदायक सिद्ध होगा।

प्राणायाम

प्राणायाम द्वारा मन स्थूल पदार्थों से सूक्ष्म की ओर जाता है। इसलिए प्राणायाम काम के उद्वेग को भली प्रकार रोकता है। जब कभी कोई दुर्विचार आपके मन को बेचैन करे, तुरन्त पद्मासन या सिद्धासन में बैठ जायें और प्राणायाम का अभ्यास करें। दुर्विचार आपको तुरन्त ही छोड़ देगा।

सत्संग और स्वाध्याय

स्वच्छन्दतावादी उपन्यास न पढ़ें। यौन विषयों पर बातचीत न करें। ऐसे मनुष्यों का संग न करें जो रत्यात्मकता का आनन्द अधिक लूटते हैं। ऐसे बाहरी पदार्थों से जो काम-विषय की वासनाओं को उकसाते हैं, अपना मन और नेत्र दूर रखने का यथासम्भव प्रयत्न करें। साधु और संन्यासियों का सत्संग करें। गीता, उपनिषद्, योगवासिष्ठ आदि उत्कृष्ट पुस्तकें पढ़ें। मन्त्र जप और प्राणायाम का अभ्यास करें।

मन को सदा व्यस्त रखें

मन को पूर्ण रूप से कार्य में लगाये रखें। इस प्रकार आप मानसिक और शारीरिक ब्रह्मचर्य में स्थित हो सकते हैं। मैं आपको कार्यक्रम बताता हूँ : रात को १० बजे से सबेरे ४ बजे तक छह घण्टे सोने का समय रखें। ४ बजे से ७ बजे तक और सायंकाल ७ बजे से १० बजे तक ध्यान के लिए छह घण्टे नियत कर लें। इसके अतिरिक्त स्वाध्याय छह घण्टे, दरिद्र और रोगियों की निष्काम सेवा चार घण्टे तथा व्यायाम, सैर इत्यादि दो घण्टे प्रतिदिन किया करें। ये कार्य आपके मन को सदा काम में लगाये रखेंगे।

ब्रह्मचर्य के लाभ

मन, प्राण और वीर्य तीनों एक ही श्रृंखला की कड़िया हैं। ये जीवात्मा-रूपी महल के तीन स्तम्भ हैं। एक भी स्तम्भ के टूट जाने से महल टूट जायेगा। यदि बारह वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर लें तो बिना किसी प्रयास के आप स्वतः ही निर्विकल्प समाधि प्राप्त कर सकते हैं। मन का संयम अपने-आप ही हो जायेगा। वीर्य में प्रबल शक्ति है। बारह वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य-पालन करने वाला व्यक्ति **"तत्त्वमसि"** तुम वही (ब्रह्म) हो-महावाक्य सुनते ही निर्विकल्प अवस्था प्राप्त कर लेता है। उसका मन अतीव शुद्ध, शक्तिशाली और एकाग्र हो जाता है। उसको बार-बार श्रवण और भनन के अभ्यास की आवश्यकता नहीं रहती।

रक्त की ४० बूँदों से वीर्य का एक बिन्दु बनता है। एक बार के मैथुन में कितनी शक्ति व्यय होती है, वह मानसिक परिश्रम के २४ घण्टे की शक्ति अथवा शारीरिक परिश्रम के तीन दिन की शक्ति के बराबर होती है। इससे आप समझ सकते हैं कि वीर्य कितना बहुमूल्य पदार्थ है। इस शक्ति का अपव्यय न कीजिए। इसका संरक्षण कीजिए। आपको आश्चर्यकारक शक्ति और सामर्थ्य प्राप्त होगी। इसे यदि उपयोग न किया जाये तो यह ओज-शक्ति में रूपान्तरित हो जाती है और मस्तिष्क में संचित हो जाती है। पाश्चात्य विकित्सक इस महत्त्वपूर्ण बात को नहीं जानते। आपके बहुत से रोगों का कारण वीर्यक्षय ही है।

मन, कर्म और वचन से सच्चा ब्रह्मचारी अद्भुत विचार-शक्ति रखता है। वह संसार को हिला सकता है। यदि आप पूर्ण ब्रह्मचर्य का विकास कर लें तो विचार-शक्ति और धारणा-शक्ति भी संवर्धित हो जाती है। यदि मनुष्य बार-बार पाशविक वृत्तियों के अधीन होने से इनकार कर दे और पूर्ण ब्रह्मचारी रहे तो वीर्य-शक्ति की गति मस्तिष्क की ओर ऊपर को होने लगती है और ओज शक्ति बन कर संचित होती है। इससे मेधा-शक्ति अत्यन्त तीव्र हो जाती है। जो सावधानी से वीर्य की रक्षा करते हैं, उनकी स्मरण-शक्ति वृद्धावस्था में भी अच्छी रहती है। जिस ब्रह्मचारी की वीर्य-शक्ति ओज-

शक्ति में रूपान्तरित हो गयी है, उसे कामवासना फिर नहीं सतायेगी। ऐसा ब्रह्मचारी ऊध्र्वरेता कहा जाता है। हनुमान्, भीष्म, लक्ष्मण, स्वामी दयानन्द तथा स्वामी विवेकानन्द ऊर्ध्वरेता योगी थे।

क्रोध कैसे उत्पन्न होता है ?

क्रोध उस मनुष्य में उत्पन्न होता है जो अपने शत्रु का चिन्तन करता है। यदि आप सन्तापन को भूल भी गये हैं तो भी यह मन के भीतर सुप्तावस्था में छिपा रहता है। इसका प्रभाव कुछ काल तक बना रहता है। यदि आप इसी प्रकार के ईर्ष्या, द्वेष अथवा घृणा के विचार एक ही मनुष्य के बारे में बार-बार दोहराते रहें तो उनका प्रभाव अधिक समय तक रहता है। क्रोध-भाव को दोहराने से द्वेष की वृद्धि होती है। साधारण-सी दुर्भावना भी क्रोध को दोहराते रहने से तीव्र द्वेष में बदल जाती है।

जिन दिनों आपको प्रातः से सायं तक बहुत-सी कठिनाइयाँ, कष्ट तथा चिन्ताएँ घेरे रहती हैं तो छोटी-सी बात भी मन में बड़ी झुंझलाहट उत्पन्न कर देती है। थोड़ी-सी बात से भी मन की साम्यावस्था बिगड़ जाती है। एक भी कठोर शब्द आपको अधीर कर देता है। परन्तु जब आप दिन-भर शान्त रहते हैं तो बड़ी-से-बड़ी गाली और भारी-से-भारी आलोचना भी आप पर कोई प्रभाव नहीं करती।

क्रोध रहता तो है लिंग शरीर में; किन्तु जैसे मृत्तिका पात्र में रखा हुआ जल छिद्रों से उसके बाहर भी छलक आता है, वैसे ही क्रोध स्थूल शरीर में फैल जाता है।

क्रोध का दुष्प्रभाव

जैसे अग्नि से शीशा पिघल जाता है, अग्नि और सुहागे से सोना पिघल जाता है, ऐसे ही काम और क्रोध मन को तपा कर पिघला देते हैं। जब आप क्रुद्ध होते हैं तो मन में हलचल पैदा होती है। इसी भाँति मन के क्षुब्ध हो जाने से शरीर में भी क्षोभ हो जाता है जिससे समस्त स्नायु-मण्डल उद्विग्न-सा हो जाता है। उस समय आप शक्तिहीन हो जाते हैं।

क्रोध मस्तिष्क, स्नायु-तन्त्र और रुधिर को विकृत कर देता है। जब मन में क्रोध की लहर उत्पन्न होती है तो प्राण का कम्पन तीव्र हो जाता है, आप में क्षोभ तथा उत्तेजना आ जाती है, रक्त गरम हो जाता है तथा रक्त में बहुत से विषैले अवयव बन जाते हैं। जब रक्त में उत्तेजना आ जाती है तो उसका प्रभाव वीर्य पर भी पड़ता है।

एक समय एक स्त्री बड़े क्रोध में भरी थी। बच्चे ने उसका स्तन-पान किया और माता के रक्त में तीव्र विष हो जाने के कारण बच्चा तुरन्त ही मर गया। क्रोध का ऐसा सर्वनाशकारी परिणाम होता है। तीन मिनट के क्रोध से भी आपके स्नायु-तन्त्र में ऐसे दोष पैदा हो सकते हैं जिनकी क्षति पूरी करने में कई सप्ताह या महीने लग जायेंगे।

क्रोध बुद्धि को आच्छादित कर देता है। जब मन में बड़ी वेगवान् उथल-पुथल होती है तो एक पुस्तक के किसी परिच्छेद को आप साफ-साफ नहीं समझ सकते। आपकी विचार-शैली ठीक और निर्मल नहीं रह सकती। आप शान्त चित्त से एक पत्र भी नहीं लिख सकते। जैसे वायु में दीप-शिखा जब झिलमिलाती रहती है तो आप पदार्थों को साफ-साफ नहीं देख पाते। इसी प्रकार जब क्रोध के द्वारा बुद्धि उद्विग्न होती है तो बुद्धि में अव्यवस्था हो जाती है और आप विषयों को भली प्रकार देख और समझ नहीं सकते। बुद्धि सम्पूर्ण प्रकाश-रूप है।

जो मनुष्य क्रोध का दास है वह भले ही स्नान कर ले, चन्दन-लेपन कर ले, बाल सँवार ले, उज्ज्वल वस्त्र पहन ले, फिर भी क्रोध के वश में रहने के कारण वह भद्दा (कुरूप) ही है। मन में यदि क्रोध हो तो वह मुँह पर झलक आता

है। यदि आपको क्रोध आता है तो आप जीवन-संग्राम में हार जायेंगे। यदि आपका मन सहज ही उत्तेजनशील है तो आप अपने दैनिक कर्तव्य तथा व्यवसाय कुशलतापूर्वक नहीं कर सकेंगे।

क्रोध को कैसे वश में किया जाय

काम और क्रोध की वृत्तियों को नाश करने के तीन उपाय हैं: (१) आप उसको इच्छा-शक्ति के द्वारा भगा सकते हैं। निःसन्देह यह कठिन तथा श्रमसाध्य है। इससे आपकी शक्ति बहुत व्यय होती है। (२) प्रतिपक्ष-भावना का उपाय : विरोधी विचार अर्थात् पवित्रता और प्रेम के विचार बनायें। यह सुगम है। (३) ब्रह्म या सत्य में रहें। ब्रह्म में कोई वृत्ति नहीं है; ब्रह्म निर्विकार, निर्विकल्प और नित्य शुद्ध है। यह उपाय पूर्ण और बलवान् है। वृत्तियाँ बिलकुल नष्ट हो जाती हैं।

काम को जीत लें। फिर क्रोध को जीतना सुगम हो जायेगा, क्योंकि यह तो इसका एक अनुचर ही है।

क्रोध का संयम प्रेम के द्वारा करना चाहिए। क्रोध एक बड़ी शक्ति है जिसका व्यवहारी बुद्धि निग्रह नहीं कर सकती; परन्तु सात्त्विक बुद्धि या विवेक-विचार से ही इसका निग्रह किया जा सकता है।

किसी दिन आपका नौकर आपको नियमानुसार दूध देना भूल जाता है और आप क्रोध करने लग जाते हैं; तब अपने मन में प्रश्न करें: "मुझे दूध का दास क्यों हो जाना चाहिए?" तब स्वभावतः क्रोध की लहर दब जायेगी। यदि आप विचारपूर्ण और सावधान रहेंगे तो यह अन्य अवसरों पर भी नहीं उठेगी।

क्षमा, दया, धैर्य, सहनशीलता, विश्व-प्रेम, विनम्रता, विवेक, विचार आत्मभाव, उदासीनता, निरभिमानता तथा इसी प्रकार के अन्य सद्गुणों से क्रोध का शमन करना चाहिए। जो मनुष्य आपको हानि पहुँचाए, उसे क्षमा कर दें और उस पर अनुकम्पा करें। आक्षेप और कटाक्ष को आशीर्वाद, भूषण और अमृत समझें, मानें और सहन करें। भर्त्सना सहें। सेवा, दान तथा ब्रह्मभाव के द्वारा विश्व-प्रेम की वृद्धि करें। यदि ऐसा न हो तो आप किसी शान्त और पवित्र अवस्था का स्मरण करें जो एक बार मन में आने पर द्वेष को दबा देती है और चित्त की स्थिरता लाती है। आप जब क्रोध पर विजय प्राप्त कर लेंगे तो उद्दण्डता, अभिमान और ईर्ष्या स्वयं ही नष्ट हो जायेंगे। प्रार्थना और भक्ति से क्रोध को निर्मूल किया जा सकता है।

प्रतिपक्ष-भावना अर्थात् विरोधी विचार लाने का अभ्यास करें। जब आपको क्रोध आये तो मन में प्रेम के भाव और यदि आप खिन्न हों तो आनन्द और प्रसन्नता के भाव भर लें।

जब आपको अत्यन्त क्रोध आये तो उस स्थान को आधे घण्टे के लिए एकदम छोड़ दें और बहुत दूर टहलते हुए निकल जायें। 'ॐ शान्ति' का पावन मन्त्र १०८ बार उच्चारण करें। आपका क्रोध शान्त हो जायेगा। एक और सुगम उपाय है। जब आपको क्रोध आये तो १ से ३० मिनट तक गिनती गिनें। क्रोध शान्त हो जायेगा।

जब क्रोध प्रकट होने का प्रयत्न करता है तो मौन हो जायें। चुप रहें। कठोर वाणी या गन्दी बात न निकालें। अन्तःकरण से निकलने से पहले ही उसे कुचल देने का प्रयत्न करें। आपको बहुत सचेत रहना होगा। यह अकस्मात् ही निकलने की चेष्टा करता है। क्रोध के प्रकट होने से पूर्व मन में उद्वेग होता है। उद्वेग के स्थूल रूप; जैसे मुख का स्नायु-मण्डल सिकुड़ जाना, दाँतों का पीसना, आँखों का लाल हो जाना इत्यादि धारण करने से पूर्व ही आपको उसे मूल से उखाड़ फेंकना चाहिए। आपको मन को भी दण्ड देना होगा। जब कभी मन में उद्वेग प्रकट हो तब ही आपको एक दिन का उपवास करके आत्म-दण्ड और आत्म-निग्रह करना होगा।

यदि आप क्रोध को दबाने का सच्चा प्रयत्न करें तो द्वेष जाता रहेगा। क्रोध का भाव चले जाने के बाद भी थोड़ी अधीरता बची रहती है। इसको भी निकाल देना चाहिए। जो मनुष्य दैवी जीवन बिता रहा है, उसके लिए यह बड़ी त्रुटि है।

चिड़चिड़ापन मन की कमजोरी है। यदि आप जरा-सी बात से भी खीज उठते हैं तो सम्भव है कि आप बहुतों के साथ अन्याय कर बैठें। धैर्य, तितिक्षा, सहनशीलता, करुणा, प्रेम, ब्रह्म-भाव, नारायण-भाव आदि के अभ्यास से इसको दूर कर दें।

मन की निस्तब्धता ब्रह्म-प्राप्ति का सीधा उपाय है।

कोई मनुष्य अपने आचरण में शान्त होता है। वह अपना छोटा या बड़ा कर्तव्य सुचारु रूप से पूर्ण करता है। सब कोई उसकी शान्ति को देखते हैं। कोई दूसरा मनुष्य अपनी वाणी और व्यवहार में शान्त होता है। उसकी शान्ति को प्रत्येक व्यक्ति देखता है; क्योंकि वह स्वभाव से ही सबका मित्र, मधुरभाषी, अनुकूल, सरल मुख-मण्डल और अभिवादनशील होता है। आपको तीनों अवस्थाओं में शान्त रहना चाहिए। ऐसे मनुष्य में प्रेम का विकास कठिन नहीं होता है।

आपमें मन को सन्तुलित तथा अनुकूल रखने की दक्षता होनी चाहिए। नेत्र मूँद लें। उस दिव्य स्रोत में गहरा गोता लगायें। उसकी सत्ता को अनुभव करें। सदा उसका स्मरण रखें। उसकी महिमा का वर्णन करें। काम करते हुए भी उसी का नाम गायें। आपको असीम आत्म-शक्ति मिलेगी। लोगों से मिलने-जुलने से पहले प्रातःकाल में ध्यान करें। जो हजारों चीजें आपको नित्य के जीवन में उत्तेजना दे सकती हैं, उनसे ऊपर उठें। तभी आप शान्तिपूर्वक प्रतिदिन विस्मयजनक कार्य कर सकते हैं।

घृणा तथा उसके विकार

घृणा और द्वेष ये बहुत प्रबल भाव हैं। ये इतने गहरे जमे हुए हैं कि इनको निकाल देना बहुत कठिन है। घृणा और द्वेष-भाव जितने भयंकर हैं उतना भयंकर अभिमान का भाव नहीं है। जब कोई मनुष्य ऊँचे पद पर पहुँच जाता है और बहुत-सा रुपया अर्जित कर लेता है तो सब लोग उसका आदर और सम्मान करने लगते हैं। परिणाम स्वरूप वह अभिमानी हो जाता है। फिर जब वह पद से गिर जाता है और उतना सारा रुपया अर्जित नहीं कर सकता तो उसका अभिमान जाता रहता है। परन्तु घृणा और द्वेष इतने प्रबल भाव हैं कि इनको उखाड़ने के लिए सतत और दृढ़ प्रयत्न की आवश्यकता होती है।

पूर्वाग्रह, असहिष्णुता, धृष्टता, उद्धतपन, तिरस्कार, अवहेलना-ये सब घृणा के विकार हैं। जरा से सन्देह को भी दोहराते रहने से द्वेष पैदा हो जाता है जिससे घृणा और सहिष्णुता बढ़ती है। घृणा विद्वेष का मृदु रूप है। यदि बारम्बार घृणा को दोहराया जाये तो वह द्वेष में बदल जाता है। बारम्बार दोहराया गया द्वेष ईर्ष्या में बदल जाता है।

पक्षपात

पक्षपात अथवा द्वेष, पूर्वाग्रह और सहिष्णुता ये तीन अवांछनीय मनोवृत्तियाँ हैं। पक्षपात से मन कठोर हो जाता है। मन ठीक-ठीक विचार नहीं कर सकता। यह एक प्रकार का मानसिक फोड़ा है। यदि मुसलमानों के विरुद्ध आपको पक्षपात है तो कुरान में दिये हुए मुहम्मद साहब के उपदेशों को आप ठीक-ठीक नहीं समझ सकते; क्योंकि पक्षपात ने मन को कठोर बना दिया है, इसलिए कुरान के आध्यात्मिक उपदेशों को ग्रहण करने के लिए मन और मस्तिष्क एकरस हो कर स्पन्द नहीं करेंगे।

पक्षपात भौतिक शरीर पर खुले हुए फोड़े के समान है जिससे मनुष्य की इच्छा-शक्ति क्षीण होती रहती है। अपना मत निश्चय करने में उदार बनें। प्रत्येक दर्शन-शास्त्र और धार्मिक विचार को स्थान दें। किसी जाति-विशेष का धर्म उसके उद्विकास की अवस्था, जन-स्वभाव और सामर्थ्य के अनुपात के अनुकूल होता है। आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज, नवीन विचार-शैली-आन्दोलन, रहस्यवाद और अनेक प्रकार के मतमतान्तर अपनी-अपनी उपयुक्त सेवा करते हैं। पक्षपात तो केवल अविवेकपूर्ण अरुचि है। इसको प्रयत्न और सम्यक् विचार द्वारा दूर करना चाहिए।

असहिष्णुता

संकुचित विश्वास, धारणा और विचारों से उत्पन्न हुई संकीर्ण-हृदयता को असहिष्णुता कहते हैं। अपने मत स्थिर करने में आपको नितान्त अनासक्त और गम्भीर होना चाहिए। असहिष्णुता से आपका मन अत्यधिक क्षुब्ध हो जायेगा। आपका मत दूसरे के मत के सर्वथा विरुद्ध भले ही हो तो भी आपमें पूरी सहनशीलता होनी चाहिए। सहनशील मनुष्य का हृदय विशाल होता है। इससे स्थायी शान्ति मिलती है।

उद्दण्डता

उद्दण्डता उद्धत स्वभाव है। यह दूसरों के साथ घृणा का व्यवहार करने से प्रकट होने वाली अहंकारपूर्ण स्वयं-मानिता है। यह पाशविक उद्धतपन है। यह बड़ी निष्ठुर और अनादरपूर्ण प्रकृति है। सामाजिक व्यवहार के प्रतिष्ठित नियमों का उल्लंघन उद्दण्ड व्यवहार से होता है। उद्दण्ड मनुष्य के अन्दर दूसरों की भावनाओं के प्रति आदर नहीं होता। वह ऐसे शब्दों या कार्यों से, जिनसे दूसरों पर विजय या घृणा प्रकट होती है अन्य मनुष्यों पर व्यक्तिगत कटाक्ष करता रहता है।

घृणा का उन्मूलन कैसे करें

जब तक मन में द्वेष, पक्षपात, ईर्ष्या, क्रोध, कामादिक रहते हैं, तब तक समाधि नहीं हो सकती। इन दोषों को प्रेम, तितिक्षा, ब्रह्म-भावना, आत्म-दृष्टि, सत्संग, विचारादि से दूर करें। पृथ्वी में प्रेम सबसे बड़ी शक्ति है, करुणा सबसे उच्चतम साधना है। दूसरों को दुःख मत दें और दुःखियों का दुःख निवारण करें; यह करुणा है।

जो दूसरों से प्रेम करता है, वह स्वयं अपने से ही प्रेम करता है। जो किसी निर्धन व्यक्ति को विपत्ति के समय पाँच रुपये दान देता है, वह अपने-आपको ही देता है; क्योंकि संसार में उसके अपने अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु नहीं है। जो किसी को चोट पहुंचाता है, घृणा करता है और गाली देता है, वह स्वयं अपने को ही चोट पहुँचाता, घृणा करता और गाली देता है। वह अपनी कब्र खोदता है।

मन में जब कभी प्रतिशोध और घृणा के विचार उठें तो शरीर और वाणी का संयम करें। किसी से बुरे और कठोर शब्द मत कहें, किसी की निन्दा मत करें, किसी को कष्ट पहुँचाने का प्रयत्न मत करें। यदि कुछ महीनों तक आप यह अभ्यास करने में सफल हो गये तो प्रतिशोध लेने के विचार बाहर प्रकट होने का अवसर न पा कर आप ही नष्ट हो जायेंगे। शरीर और वाणी को वश में किये बिना प्रारम्भ से ही ऐसे भावों को वश में करना बहुत कठिन है।

सतत विचार और इनके भाव प्रेम, दया और करुणा के विकास द्वारा घृणा तथा ईर्ष्या-ये दोनों प्रबल कुवृत्तियाँ दूर की जा सकती हैं।

जब कभी घृणा प्रकट होती है तो प्रेम के मधुर परिणाम का विचार करें। धीरे-धीरे घृणा जाती रहेगी। प्रेम के अनेक फल हैं। वह मनुष्य सुख से सोता है, सुख से रहता है। बुरे स्वप्न नहीं देखता। वह समान रूप से प्रिय होता है। वह अवमानवीय जीवों को भी प्रिय होता है। देव उसकी रक्षा करते हैं। अग्नि, विष और तलवार उसके निकट नहीं जा सकते। वह शीघ्र ही मन को एकाग्र कर लेता है। उसका भाव शान्त रहता है। वह शान्तिपूर्वक मरता है और ब्रह्मलोक को जाता है।

किसी को शत्रु मत बनायें। किसी मनुष्य ने यदि आपका कोई अपराध कर भी दिया है, तो उसकी ओर शत्रुता का भाव मत रखें। जब आप अपने शत्रु की सोच रहे हैं, यदि अपने प्रति किये गये उसके अपराधों का स्मरण करें तो मन में घृणा उत्पन्न होगी। आपको उसके प्रति बारम्बार प्रेम का चिन्तन करके घृणा-भाव को निकालना होगा। बार-बार कल्पना करें कि वह आपका घनिष्ठ मित्र है और प्रयत्नपूर्वक उसके प्रति प्रेम की प्रबल धारा उठायें। अपने मन में प्रेममयी तथा अन्य भावनाएँ लायें जिससे प्रेम तथा कोमलता उत्पन्न होती है। 'भक्त-विजय' में लिखी हुई पवहारी बाबा की और 'गीत-गोविन्द' के रचयिता पण्डित जयदेव की कथा याद रखें जिसने उसके हाथ काट देने वाले शत्रु डाकू के लिए भगवान् से मोक्ष की हार्दिक प्रार्थना की थी।

जिस मनुष्य से द्वेष करते हैं, उसकी सेवा करें। जो आपके पास हो, उसमें उसको भी सहभागी बनायें। उसको कुछ चीज खाने को दें। उसकी टाँगें दबायें। सच्चे हृदय से प्रणाम करें। तुम्हारा द्वेष कम हो जायेगा। वह भी तुमसे प्रेम करने लगेगा। उपहार और मधुर शब्दों से उद्धत मनुष्य भी वश में हो जाते हैं। इनके द्वारा मनुष्य शिर झुकाते हैं।

यदि अनिच्छापूर्वक किसी दरिद्र को आप कम्बल दें तो यह दान नहीं है। यह स्वार्थयुक्त कर्म है। मन अवसर आने पर कम्बल लौटा लेने का रास्ता देखता रहेगा। जो-कुछ भी दें, स्वेच्छापूर्वक दें।

समदृष्टि की साधना

सबमें विराजमान प्रभु की सेवा करें। सबसे प्रेम करें। सबका आदर करें। विश्व-प्रेम की वृद्धि करें। आत्म-भावना तथा आत्म-दृष्टि रखें। सम-दृष्टि रखें। इससे सब प्रकार की घृणा दूर हो जायेगी। सम-दृष्टि की साधना बड़ी कठिन है; परन्तु निरन्तर और प्रबल प्रयत्न करते रहने से अन्ततः सफलता अवश्य ही मिलती है।

जो साधक भेद की रेखा को मिटाना चाहते हैं उन्हें तुरन्त ही एक अत्यन्त प्रिय मनुष्य के लिए, उसके पीछे एक उदासीन मनुष्य के लिए और फिर एक शत्रु के लिए प्रेम का विकास करना चाहिए। और, ऐसा करने में उनको हृदय के प्रत्येक विभाग को कोमल तथा स्नेहमय बनाना चाहिए; और तत्पश्चात् तत्काल ही ध्यान का अभ्यास भी करना चाहिए।

आपको चोर और ईमानदार मनुष्य में अन्तर जानना चाहिए; परन्तु चोर से प्रेम करना चाहिए। संसारी मनुष्य चोर से द्वेष करता है, उसे अपने से बाहर देखता है और सोचता है कि वह चोर से बिलकुल अलग है; किन्तु ज्ञानी चोर को अपनी ही आत्मा समझता है और उसे अपने ही अन्दर देखता है।

जब आप याद करेंगे कि आज का बर्बर अथवा दुष्ट भविष्य का सन्त है और उसमें सम्भावित रूप में सारे दिव्य गुण विद्यमान हैं तो आप प्रत्येक मनुष्य को प्रेम करने लगेंगे। शनैः-शनैः घृणा जाती रहेगी। केवल समय आने पर ही दुष्ट अथवा बर्बर अपना सात्त्विक विकास करेगा।

जो साधक प्रेम, दया, सहानुभूति और समता-इन चारों दिव्य गुणों के विकास से प्रारम्भ करना चाहता है, उसे सारी बाधाओं को अलग करके सबसे पहले ध्यान का अभ्यास करके लघु आहार करना चाहिए। फिर भोजन के पीछे के आलस्य को भगा कर एकान्त-स्थान में एक सुव्यवस्थित आसन पर सुखपूर्वक बैठ कर द्वेष के द्वोषों और सहिष्णुता तथा क्षमा के अनेकानेक लाभों पर विचार करना चाहिए। निःसन्देह इस अभ्यास से घृणा शनैः-शनैः दूर हो कर सहनशीलता बढ़ जायेगी। जिस मनुष्य का मन द्वेष से अभ्याक्रमित होता है और जो स्वयं द्वेष से पराजित होता है, वह प्राणियों की हत्या करता है। धैर्य सर्वोत्तम गुण है। क्षमा से बढ़ कर कुछ नहीं है। जो मनुष्य क्षमा में दृढ़ है, वह अवश्य ही दिव्य पुरुष है।

इस सापेक्ष जगत् में न तो कोई वस्तु सर्वथा निर्दोष है और न सर्वथा सदोष ही। निर्दोष तथा सदोष- ये दोनों भाव मन के बनाये हुए हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी दृष्टि के अनुसार ठीक होता है। प्रत्येक वस्तु में सच्चाई का अंश होता है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में उसका दृष्टिकोण ही निर्धारी तत्त्व होता है। जब ज्ञान से बुद्धि आलोकित होती है तो दृष्टिकोण विशाल और पूर्ण हो जाता है। जब बुद्धि अज्ञान से कलुषित हो जाती है तब दृष्टिकोण भी संकुचित, परिच्छिन्न और एकपक्षी होता है। विशाल दृष्टिकोण हृदय की उदारता का सूचक है। विशाल दृष्टिकोण का मनुष्य सन्देह, पक्षपात, पूर्वधारणा और अनेक प्रकार की असहिष्णुताओं से मुक्त होता है। विदेश यात्रा, अच्छे कुल में जन्म, सद्ग्रन्थों का स्वाध्याय, लोक-सेवा, विविध अनुभव, ध्यान आदि से विशाल दृष्टिकोण बनता है। विशाल दृष्टि वाला मनुष्य वस्तुओं को उनके पूर्ण रूप और उपयुक्त सम्बन्ध में देखता है। विशाल दृष्टि सामंजस्य और मैत्री बनाती है; संकुचित दृष्टि वैमनस्य और मतभेद बनाती है।

प्रत्याशा तथा धनलोलुपता

अतीत की स्मृति और भविष्य की प्रत्याशा करना- ये दोनों प्रकार की कुवृत्तियाँ हैं जो भले ही संसारी मनुष्य के लिए लाभदायक हों; परन्तु आध्यात्मिक साधना में हानिकर हैं। प्रत्याशा और परिग्रह मन में दो वृत्तियाँ होती हैं जो आपको भिखारियों का भी भिखारी बनाती हैं और आपकी इच्छा-शक्ति को नष्ट कर देती हैं। किसी वस्तु के लिए पहले से आशा मत बाँधें। प्रत्याशा मन को पुष्ट (मोटा) बनाती है और मन में अशान्ति पैदा करती है। किसी वस्तु की आशा मत करें। आशा मन में उपद्रव पैदा करती है। यदि आशा नहीं करेंगे तो निराश नहीं होना पड़ेगा। प्रत्येक सांसारिक बात को भुला दें। यदि विलासिता देने वाली कोई वस्तु मिलती भी है तो उसे तुरन्त ही छोड़ दें। इससे आप शक्तिवान् बनेंगे। केवल परमात्मा को ही याद रखें। इस संसार की अन्य प्रत्येक वस्तु स्वप्नवत् है। यह संसार एक दीर्घ स्वप्न है।

लोलुपता को सन्तोष, सत्यनिष्ठा, उदासीनता और दान के द्वारा नष्ट करें। आशाएँ मत बनायें। आपको कभी निराश नहीं होना पड़ेगा। सन्तोष मोक्ष-राज्य के चार प्रहरियों में से एक है। सन्तोषी मन सदा तृप्त रहता है। यदि आपको सन्तोष होगा तो दूसरे तीन प्रहरी अर्थात् शम, विचार तथा सत्संग भी आपको सहायता करेंगे। इन चारों की सहायता से आप जीवन के चरम लक्ष्य ब्रह्मज्ञान को प्राप्त कर सकते हैं।

मोह तथा उसका उपचार

माया का एक दृढ़ शस्त्र मोह है। मेरे मित्र! ऐसा न कहें कि कामना मोह से अधिक शक्तिशालिनी है। मोह कामना से कहीं अधिक शक्तिशाली तथा खतरनाक है। यह तीन काम करता है। यह ममत्व यथा मेरी पत्नी, मेरा पुत्र, मेरा घर इत्यादि का भाव उत्पन्न करता है। यह शरीर पत्नी, पुत्रादि के लिए अन्ध प्रेम तथा आसक्ति उत्पन्न करता है। यह संसार के नश्वर पदार्थों में नित्य-बुद्धि उत्पन्न करता है कि ये सदा ही स्थिर रहेंगे और देहात्म-बुद्धि बनाता है कि शरीर ही आत्मा है। यह मिथ्या पदार्थ को सत्य-सा भासता हुआ दिखाता है। मोह के कारण ही संसार सत्य प्रतीत होता है। मोह के भ्रामक प्रभाव के कारण ही देह को भूल से आत्मा मान लिया जाता है।

यद्यपि आप भलीभाँति जानते हैं कि स्त्री का शरीर मांस, हड्डी, त्वचा, बाल, रक्त, मूत्र और मल का बना हुआ है; फिर भी आप कामान्ध हो कर रूप को पकड़ते हैं। क्यों? राग, मोह, संस्कार, वासना और कल्पना के बल से। जब विचार और विवेक द्वारा वासना-क्षय हो जाता है तो आपको स्त्री की ओर आसक्ति नहीं रहती।

बाह्य त्याग (संन्यास) के द्वारा स्त्री, धन और सन्तान के अधिक मोह से छुटकारा पा लें। यदि बाहर परिवर्तन होगा तो भीतर भी अवश्य बदलेगा। बाहरी त्याग अत्यन्त आवश्यक है।

दीप्त प्रकाश, सौन्दर्य, बुद्धि, भाँति-भाँति के रंग और रोचक शब्दों से मन आकृष्ट होता है। इन तुच्छ वस्तुओं से भ्रम में मत पड़ें। अन्दर खोज करें कि इन सब वस्तुओं का अधिष्ठान अथवा पृष्ठभूमि क्या है? मन और इस प्रतीतिमात्र विषय-जगत् के पीछे एक सारतत्त्व है जो परिपूर्ण और आत्म निर्भर है। वह तत्त्व उपनिषदों का ब्रह्म है। वही तत्त्व, प्यारे पाठको ! आप हैं। "तत्त्वमसि" तुम वही हो।

अभिमान

दूसरों से अपने अच्छेपन और बड़ेपन का भाव अभिमान है। यह नौ प्रकार का होता है : (१) शारीरिक बलशाली होने से; (२) बुद्धिगत-बुद्धिमान् होने से; (३) नीतिगत-सदाचारी होने से; (४) योग-जनित-ऋद्धि, सिद्धि प्राप्त होने से; (५) आत्मिक-आध्यात्मिकता होने से; (६) कुलाभिभान-उत्तम कुल में जन्म होने से; (७) सम्पदाभिमान-धन, जनादिक होने से; (८) रूपाभिमान-सुन्दर रूप होने से; तथा (९) राजमदाभिमान राज्य-सम्पदा होने से। इन सब प्रकार के अभिमानों को पूर्णतया पराजित कर देना चाहिए।

विवेक द्वारा अभिमान से मुक्त हो जायें। प्रत्येक वस्तु अनित्य है। आप व्यर्थ ही अभिमान से क्यों फूले हुए हैं?

अभिमान का एक रूप मद है। इसके कारण मनुष्य अपने को बहुत बड़ा मान लेता है और इसलिए दूसरों से अपने लिए विशेष आदर-मान चाहता है।

व्यर्थ का दिखावा दर्प है। यह व्यर्थ का प्रदर्शन है। व्यक्ति के पास कुछ भी न हो तो भी वह फूल कर बड़ा बन जाता है। अभिमानी मनुष्य के पास कुछ तो होता है; परन्तु दर्प में कुछ होता ही नहीं। अभिमान और दर्प में यही अन्तर है। दर्प अतिरंजित अभिमान है।

यह व्यक्ति जो नहीं है वह होने का ढोंग है। यह स्वाँग भरना है। यह अपने असली स्वरूप को छिपाना है। गीता में जो सद्गुण अदम्भित्व बताया है उसका यह बिलकुल विपरीत है। दम्भी व्यक्ति दूसरों से धन, सम्मान, नाम या अन्य वस्तु प्राप्त करने के लिए वह जो नहीं है वह होने का बहाना करता है।

दम्भ, असत्य, धोखा, लोभ और तृष्णा बहुत निकट के सम्बन्धी हैं। लोभ से दम्भ उत्पन्न होता है। दम्भ से असत्य पैदा होता है। दम्भ और असत्य दोनों एक-साथ रहते हैं। तृष्णा (माता), लोभ (पिता) और असत्य पुत्र के बिना दम्भ क्षण-भर भी नहीं रह सकता। जब सांसारिक पदार्थों के लिए लालसा होती है तो पैसे का लोभ आता है। बिना पैसे के किसी भी चीज का उपभोग नहीं किया जा सकता। पैसे की आवश्यकता को पूरा करने के लिए मनुष्यों को मिथ्याचार करना पड़ता, झूठ बोलना पड़ता और दूसरों को धोखा देना पड़ता है। इन सबका कारण भोग-लालसा है। लोभ और घृणा के पुराने साथी कपटपूर्ण कूटनीति तथा असत्यता हैं।

आत्म-निर्भरता मन का एक विचित्र विकार है। यह मिथ्याभिमान, अहंकार और दम्भ का कार्य है। यह रजोगुणी वृत्ति है। इसे सम्यक् विचार और विनम्रता की प्रतिपक्ष-भावना द्वारा दूर करें।

असूया तथा उसके विकार

निरन्तर रहने वाले क्रोध का एक रूप असूया है। ईर्ष्या एक प्रकार की असूया है। निन्दा करना, दोषारोपण करना, नकल उतारना, उपहास करना, अनुचित छिद्रान्वेषण करना, निन्दा करना, नुकताचीनी करना, बदनाम करना, चुगलखोरी, पिशुनता, गप लड़ाना, अवगुण ढूँढ़ना, परिवाद-ये सब बातें सूक्ष्म अथवा स्थूल असूया, जो घृणा के अनेक प्रकारों में से एक है, से निकलने लगती हैं। इनसे मनुष्य की सम्यक् मानसिक संस्कृति के अभाव तथा उसकी तुच्छता का पता लगता है। इन बातों को दूर कर देना चाहिए।

कटाक्ष व्यंगात्मक निन्दा है। चिढ़ाना या छेड़ना हँसी के द्वारा सताना या क्षुब्ध करना है। ताना मारना नाक चढ़ाने-जैसी मुख-मुद्रा से तिरस्कार प्रदर्शित करना है। अप्रसन्नता व्यक्त करना क्रोध के समय भौंहें चढ़ाने-जैसा है। नकल उतारना उपहास में खिल्ली उड़ाना या हँसी में नकल करना है। उपहास किसी को हँसी का विषय बनाने की वाग्विदग्धता है। यह ठिठोली अथवा स्वाँग है। यह किसी को आमोद-प्रमोद का विषय बनाता है। उपहास एक चतुर अपमान है। जब आप और लोगों की संगति में रहें तो इनसे आपको बचना चाहिए; क्योंकि इन सबसे मित्रों में मनमुटाव हो जाता है। भावनाएँ उत्तेजित होती हैं और विद्वेष-भाव उत्पन्न होता है। मृदु शब्द और अकाट्य युक्ति से बात करनी चाहिए। यदि कठोर शब्द होंगे तो इससे शत्रुता हो जाती है। एक भी कठोर शब्द से वर्षों की मित्रता क्षण-मात्र में टूट जाती है। शब्द अथवा ध्वनि में बड़ी शक्ति होती है। यह शब्द-ब्रह्म है। यह शक्ति है।

न्यायपूर्ण समालोचना और निन्दा में बड़ा भेद है। न्यायपूर्ण समालोचना निन्दा नहीं है। यह अनुज्ञेय है। यह अनिवार्य भी है। आप इससे तभी बच सकते हैं जब आप अकेले सुदूर हिमालय की गुफा में बन्द हो जायें। यदि आपको मनुष्य से घृणा नहीं है, यदि आप उससे द्वेष नहीं करते, यदि आप अपने मित्र से बातचीत में उस मनुष्य के गुण और दोष बताते हैं कि 'अमुक व्यक्ति खरा है, प्रेम करने वाला, दयालु, नम्र तथा सत्यवादी है; परन्तु वह बड़ा चिड़चिड़ा और तेज स्वभाव का है।' तो यद्यपि आपने उस मनुष्य के दोष भी बताये; परन्तु यह निन्दा नहीं है। निन्दा करने में आप किसी मनुष्य को बदनाम करते हैं। आप केवल उसके दोष ही बताते हैं। आप उसकी कमजोरियों को बढ़ा कर कहते हैं। बिना पूछे ही अपनी इच्छा से प्रत्येक व्यक्ति से यह दोष प्रकट कर देते हैं। अपने हृदय के अन्दर आप उस पुरुष से द्वेष करते हैं। आप उसको बदनाम करना चाहते हैं।

यदि आप सदा दूसरों के दोष देखेंगे तो बार-बार उनका विचार करते-करते आप वास्तव में उन दोषों को आत्मसात् कर लेंगे। सदा मनुष्य की अच्छी बातें देखनी चाहिए। उसके दोषों को भुला दें। इससे घृणा दूर हो जायेगी और प्रेम की वृद्धि होगी।

छिद्रान्वेषण, नुकताचीनी तथा चुगलखोरी अवगुण हैं। अवगुण तथा दुर्बलताएँ, दो पृथक् विशेषताएँ हैं। क्रोध अवगुण है। चाय पीने की आदत दुर्बलता है। अधिक भावुक होना एक दुर्बलता है। अवगुण तथा दुर्बलताएँ दोनों को ही उनके विरोधी गुणों को प्रतिस्थापित कर दूर करना चाहिए।

ईर्ष्या को नष्ट करने के उपाय

ईष्या को नष्ट करने के तीन उपाय हैं :

(१) मिथ्या-दृष्टि (दोष-दृष्टि): "भोग, धन और विलास के रहित सारा संसार भ्रमपूर्ण है। मैं दूसरे से ईर्ष्या

करके क्या लाभ पाऊँगा ?" जब कोई इस प्रकार गम्भीरता से दिन में कई बार सोचता है तो ईर्ष्या की वृत्ति शनैः-शनैः मर जाती है। यह वृत्ति सारे क्लेशों की जड़ है। यह अत्यन्त दृढ़ता से बद्धमूल है।

(२) भ्रातृ-भाव : आप अपने घनिष्ठ मित्र और प्रिय भाई से ईर्ष्या नहीं करते। आपके मित्र और भाई के साथ एक ही बन गये हैं। अन्दर से आपको मालूम होता है कि जो-कुछ इनका है, वह आपका भी है। इसी प्रकार की भावना सबके साथ रखनी होगी। प्रत्येक व्यक्ति को अपने भाई या मित्र के समान प्रेम करना चाहिए। तभी आपकी ईर्ष्या-वृत्ति नहीं रहेगी।

(३) यह विकसित अवस्था है। मन में यह सूत्र बार-बार दोहरायें, 'मैं ही यह सब हूँ, मैं सर्वस्व हूँ।' अपने को सब कहीं अनुभव करें। भावना करें कि आपकी अपनी आत्मा के अतिरिक्त कहीं और कुछ है ही नहीं। इस आत्म-भाव को धारण करने से धीरे-धीरे ईर्ष्या दूर हो जायेगी। आपको सदा इस विचार को प्रश्रय देना चाहिए-"वासुदेवः सर्वमिति" (वासुदेव सब-कुछ है)। 'वासुदेव' का अर्थ है सर्वव्यापी। आपको अनन्त आनन्द मिलेगा जिसका वर्णन नहीं हो सकता। यह केवल अनुभव से ही जाना जा सकता है।

यदि आप किसी कुत्ते के सामने एक बड़ा दर्पण और एक रोटी रख दें, तो कुत्ता दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देख कर तत्काल भौंकता है। वह मूर्खतावश यह समझता है कि वहाँ दूसरा कुत्ता है। इसी प्रकार मनुष्य अपने ही मन-मुकुर में सारे मनुष्यों में अपना ही प्रतिबिम्ब देखता है; परन्तु कुत्ते के समान मूर्खता से समझता है कि वे उससे भिन्न हैं और घृणा तथा द्वेष से उनसे झगड़ा करता है।

भय-एक भीषण रोग

भय एक बड़ा मानव-अभिशाप है। यह एक गुण हीन अभावात्मक विचार है। यह आपका सबसे बुरा शत्रु है। उसके अनेक रूप हैं यथा रोग-भय, मृत्यु-भय, लोक-समालोचना का भय, धन-सम्पत्ति-विनाश का भय आदि। भय के कारण अनेक जीवनों पर पाला पड़ जाता है, लोग दुःखी हो जाते हैं और अपने प्रयत्न में असफल हो जाते हैं।

कुछ लोग वीरता से रणभूमि में गोले या गोलियों का सामना कर सकते हैं; परन्तु जन-समाज की आलोचना तथा लोकमत से भयभीत रहते हैं। कुछ लोग निर्भय हो कर वन में चीते का सामना कर सकते हैं; परन्तु वह शल्य चिकित्सक (सर्जन) की छुरी और अस्त्रों से डरते हैं। आपको सब प्रकार के भय से रहित होना चाहिए।

मन में कल्पना-शक्ति भय को तीव्र करती है। मोह तथा अविद्याजनित स्थूल भौतिक शरीर की ममता के कारण भय होता है। देहाध्यास (शरीर का मोह) सारे भयों का कारण है। जो योग या ज्ञान के द्वारा स्थूल शरीर (अन्नमय कोश) को फेंक सकता है, वह भय से मुक्त हो जाता है। जिसने भय को जीत लिया है, उसने सब-कुछ जीत लिया है। उसे मन पर प्रभुत्व प्राप्त हो गया है।

कुछ व्यक्ति जब अधिक मात्रा में रक्त देखते हैं तो अचेत हो जाते हैं। कोई-कोई डाक्टरी चीरा-फाड़ी की क्रिया को नहीं देख सकते हैं। वे अचेत हो जाते हैं। ये सब मानसिक दुर्बलताएँ हैं। कई मनुष्य ऐसे हैं कि यदि उनके निकट ही टट्टी या उल्टी की हुई पड़ी हो तो वे भोजन नहीं कर सकते। सभी मानसिक दुर्बलताओं को विचार द्वारा दूर • करना चाहिए।

शान्त मन का अर्थ है साहस। आप बिना किसी भय के आध्यात्मिक पथ की कठिनाइयों और परीक्षाओं का सामना कर सकते हैं। इसकी जड़ आत्मा की एकता पहचानने में है। दैवी सम्पदाओं में से एक 'अभय' है। सर्वदा सोचें कि आप आत्मा हैं। शनैः-शनैः आपमें अत्यधिक साहस की वृद्धि होगी। आप अमर आत्मा हैं- एक यही विचार सब

प्रकार के भयों को भली-भाँति नष्ट कर सकता है। भय के इस घातक रोग के लिए एक यही रामबाण औषधि है। यही विचार रखें कि आप अमृत अभय आत्मा हैं। शनैः-शनैः भय दूर हो जायेगा। सत्तात्मक सद्गुण 'साहस' का विकास करें। भय शनैः-शनैः अदृश्य हो जायेगा।

संशय

संशय मन को बड़ा कष्ट देने वाला है। इसका अपना ही मानसिक जगत् होता है। यह मनुष्य को बारम्बार दुःख देता है। सन्देहों का अन्त नहीं होता। यदि एक संशय दूर कर दिया जाये तो दूसरा इसकी जगह ले लेने को तैयार खड़ा रहता है। यह मन का धोखा है। संशय की ग्रन्थियों को ज्ञान की तलवार से काट दें। उसको जान लें जो सन्देह करता है। उसके अस्तित्व में किसी को संशय नहीं होता। यदि ब्रह्म-ज्ञान के द्वारा सारे संशय दूर हो जायें तो मन का नाश हो जायेगा।

चिन्ता और भय के विचार हमारे अन्दर भयानक शक्तियाँ हैं। ये जीवन-स्रोत को विषैला कर देते हैं और शरीर के शक्ति, बल, सामर्थ्य और मेल को नष्ट कर देंगे। जब कि प्रसन्नता, आनन्द और साहस के विचार इन शक्तियों की पुष्टि और वृद्धि करते हैं और मानसिक बल को भी बढ़ाते हैं। सदा प्रसन्न रहें, मुस्कराते रहें, हँसते रहें।

कुवृत्तियाँ ही आपकी वास्तविक शत्रु हैं - उन्हें नष्ट करें आपका सच्चा शत्रु कौन है? बुरी वृत्तियों के कारण अपना ही अन्तःकरण आपका शत्रु है। जो मन आसक्ति, भ्रम, घृणा, काम-लालसा, स्वार्थ और क्रोध से रहित है उसे ही निरन्तर ईश्वर की स्मृति रह सकती है। यदि दर्पण मैला हो तो आपको अपना मुख साफ-साफ नहीं दिख सकता। इसी प्रकार यदि काम-क्रोधादिक षड्विकारों के इकट्ठा हो जाने से मन-रूपी मुकुर मैला हो जाये तो मन में ब्रह्म की छाया नहीं दिखायी देती। जब यह पूर्णतः निर्मल कर दिया जाये और सात्त्विक बना दिया जाये तो यह ब्रह्म का प्रतिबिम्ब ग्रहण करने योग्य (योगयुक्त) बन जाता है।

आप कर्मयोग, भक्तियोग तथा राजयोग में से चाहे जिस योग-मार्ग का अभ्यास करें आपको राग, द्वेष, अहंकारादि रहित होना तथा इन्द्रिय-दमन करना चाहिए। चित्त-शुद्धि और यम-नियम का पालन सारे योगों में समान रूप से आवश्यक है। यदि मनुष्य में आत्म-संयम नहीं है और वह अत्यन्त स्वार्थी है तो वह कर्मयोग में क्या कर सकता है? यदि आप प्रत्येक वस्तु अपने ही लिए चाहते हैं तो आप दूसरे के लिए कोई पदार्थ कैसे त्याग सकते हैं। आप विश्व के साथ प्रेम, निःस्वार्थ सेवा और दान के द्वारा ही मिल सकते हैं। क

साधकों को इन उपर्युक्त सभी कुवृत्तियों को त्यागना चाहिए। ये कुवृत्तियाँ आसुरी सम्पद् कहलाती हैं। यदि आपका मन क्षुब्ध है तो चाहे आप नगर में रहें या हिमालय की गुफा में, आपके लिए एक ही बात है; क्योंकि जब आप अपने को सुदूर एकाकी गुफा में भी ले जायेंगे तो भी आप अपने विचार तो अपने साथ ही ले जायेंगे। मन वैसे ही बना रहेगा। शान्ति तो अन्दर से आती है। चिड़चिड़ापन, क्रोध, अधैर्य, प्रतिशोध, सन्देह, पूर्वाग्रह, मनोमालिन्य, द्वेष, असहिष्णुता, अशान्ति, उदासी, उत्तेजित भावना-इन सबको आध्यात्मिक साधना, सात्विक गुणों के विकास, ओंकार के ध्यान और सतत विचार द्वारा पूर्णतः दूर करना चाहिए। तभी शान्ति प्राप्त हो सकती है। करुणा, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, दया आदि दैवी सम्पद् की वृद्धि करने से आसुरी सम्पद् पर विजय प्राप्त होती है।

प्रतिपक्ष-भावना

यह प्रतिपक्ष-भावना का उपाय है। जब काम-वासना का विचार आये तो मन में पवित्रता का विचार प्रतिस्थापित करें; गीता और उपनिषद् पढ़ें, हारमोनियम पर भगवान् का भजन गायें, इससे अपवित्र विचार भाग जायेंगे।

जब घृणा आये तो प्रेम के विचार प्रतिस्थापित करें। जिससे घृणा करते हों, उसके सद्गुणों का विचार करें; उसके कृपापूर्ण कार्यों को बार-बार याद करें। उसे मिठाई, फल और दूध दें। उससे मधुर शब्द कहें। उसके साथ हँसें। उसके चरण दबायें। जब उसकी सेवा करें तो उसे भगवान् शंकर या नारायण का रूप समझें। घृणा जाती रहेगी। जब भय हो तो साहस के विचार मन में भरें। जब चिड़चिड़ापन आये तो धैर्य, सन्तोष और आत्म-संयम का ध्यान करें। बुरे विचार स्वयं क्षीण हो जायेंगे। यदि आपका मन उदास हो तो मन में आनन्द और हर्ष का विचार भर लें। यदि रोगी हों तो स्वास्थ्य, बल, शक्ति तथा तेजस्विता के विचारों से मन को भर लें। इसका अभ्यास कीजिए। इसी में आपके लिए बड़ा भण्डार भरा हुआ है।

प्रत्येक विचार या भावना या अभिवृत्ति शरीर के प्रत्येक कोशाणु में एक बलवान् स्पन्दन उत्पन्न करती है और उसका दृढ़ अंक छोड़ती है। यदि आपको उसके विपक्षी विचार बनाने की रीति मालूम हो, तभी आप शान्ति और शक्ति से पूर्ण आनन्दमय एकरस जीवन व्यतीत कर सकते हैं। प्रेम-भाव तुरन्त ही घृणा के विचार को निष्प्रभाव कर देता है। साहस का भाव तुरन्त ही भयपूर्ण विचार का प्रतिकार कर देता है।

विचार से ही संसार बनता है। इसी से व्यक्ति का अस्तित्व होता है। विचार कामना विकसित और वासनाओं को प्रदीप्त करता है। इसलिए इच्छा और वासनाओं का नाश करने वाला विरोधी विचार उनको पूर्ण करने के पूर्व-विचार को प्रभावहीन कर देता है। इसलिए जब कभी मनुष्य ऐसे विचार से प्रभावित हो तो इसका विरोधी विचार उसे कामनाओं और वासनाओं को नष्ट करने में सहायक होगा।

आप बुरे विचारों की कैसे उपेक्षा कर सकते हैं? केवल भुला देने से। उन्हें भूल कैसे सकते हैं? फिर उनमें निमग्न न होने से। मन को फिर उनमें निमग्न होने से कैसे रोक सकते हैं? किसी और अधिक रुचिकर पदार्थ का चिन्तन करने से। उपेक्षा करें, भुला दें और किसी अन्य रोचक वस्तु का ध्यान करें। यह बड़ी साधना है। गीता के उच्च विचारों को मन में स्थान दें और उपनिषद् तथा योगवासिष्ठ में सन्निविष्ट अभिजात तथा आत्मोत्थानकारी विचारों को स्मरण रखें। अन्दर ही आत्मपरक तर्क करें, सोचें। चिन्तन करें तथा निगमनात्मक तर्क करें। सारे संसारी विचार, शत्रुता, घृणा, प्रतिशोध, क्रोध, सम्भोग के विचार सब नष्ट हो जायेंगे।

जब शरीर के कोशाणुओं में दूषित विचार, चिन्ता, भय, घृणा, द्वेष और कामुक विचारों के कारण रोग, अनमेल या असामंजस्य होते हैं तो आप उन्नत, जीवनदायी, आत्मा को जाग्रत करने वाले, सात्त्विक दिव्य विचारों, ओंकार के उच्चारण के स्पन्दनों द्वारा, भगवान् के अनेक नामों के उच्चारण, कीर्तन, प्राणायाम, गीता और शास्त्रों का स्वाध्याय, ध्यान आदि के द्वारा इन रुग्ण तथा दूषित कोशाणुओं के विष को निष्प्रभाव कर सकते तथा उनमें शान्ति, मेल, स्वास्थ्य और नवीन शक्ति स्थापित कर सकते हैं। आप सदा यही विचार करें कि आप शुद्ध, सच्चिदानन्द, व्यापक आत्मा हैं। सारे दुर्गुण दूर हो कर सद्गुण आप-ही-आप प्रकट हो जायेंगे।

काम, क्रोध, द्वेषादि विभिन्न वृत्तियों को नाश करने के लिए प्रयत्न न करें। यदि आप एक ही वृत्ति अर्थात् अहंकार को नष्ट कर सकते हैं तो अन्य सारी वृत्तियाँ स्वयं ही नष्ट हो जायेंगी। अहंकार जीव-रूपी भव की आधारशिला है। यदि आधार-शिला को हटा लिया जाये तो यह सारा भवन गिर जायेगा। यही रहस्य है।

आप काम-क्रोधादि से क्यों डरते हैं? ये आपके सेवक हैं। आप सच्चिदानन्द आत्मा हैं। आत्मा की विशालता और महिमा को बारम्बार निश्चयपूर्वक कहें।

परिच्छेद- २९

सद्गुणों का संवर्धन

मैत्री, करुणा, दया, विश्व-प्रेम, क्षमा, धृति, तितिक्षा और सहनशीलता-ये मन के सात्विक गुण हैं। इनसे मनुष्यों में सुख और शान्ति फैलती है। इनकी वृद्धि विशेष रूप से करनी चाहिए।

प्रेम और दया मन को कोमल बनाते हैं। दया में यह लक्षण होता है कि वह दुःख-निवारण का उपाय निकालती है, किसी को कष्ट पाता हुआ देख नहीं सकती, किसी को चोट नहीं पहुँचाती और जो दुःख सन्तप्त हों, उनकी आवश्यकताओं को देखती रहती है। इसकी पूर्णता दुःख पहुँचाने की वृत्ति को दबा देने में है और इसकी असफलता शोक की उत्पत्ति में है।

आत्म-साक्षात्कार में सफलता प्राप्त करने के लिए धैर्य, दृढ़ता, उत्साह तथा निश्चय अपरिहार्य हैं। आध्यात्मिक साधकों को इन सद्गुणों को बड़ी ऊँची हद तक बढ़ा लेना चाहिए। जब आप ओंकार का ध्यान करते हैं और प्रात:कालीन ध्यान में अपने ब्रह्म होने का दावा करते हैं तो आपको अद्भुत शक्ति मिलती है। जिस साहस की आध्यात्मिक मार्ग में उन्नति के लिए आवश्यकता होती है, इससे वही साहस प्राप्त करने में सहायता मिलती है। तितिक्षा और धैर्य के द्वारा सन्मार्ग पर बहुत-सी कठिनाइयों को पार करना होता है। ये गुण साहस के ही रूप हैं। धैर्य तितिक्षा की मानसिक शक्ति को कहते हैं। यह संकट का सामना करने में दृढ़ता है। यह प्रतिरोध-शक्ति है।

धर्म के दश लक्षण

मनुस्मृति (६-९२) में धर्म के दश लक्षण बताये हैं:

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।

अर्थात् धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, बाह्य और आन्तरिक पवित्रता, इन्द्रिय-निग्रह, शास्त्रों का ज्ञान, आत्म-ज्ञान, सत्यता तथा क्रोध-रहित होना-ये धर्म के दश लक्षण हैं।

आपके विचार और शब्दों में समानता होनी चाहिए। इसे आर्जव या सरलता कहते हैं। इसका अभ्यास करें, आपको आश्चर्यजनक लाभ होगा। यदि बारह वर्षों तक सत्य का अभ्यास करें तो आपको वाक्सिद्धि मिल जायेगी। आप जो कुछ कहेंगे, वही होगा। बिन्ता दूर हो जायेगी। सत्य बोलने से आप बहुत से पाप कर्मों से बच जायेंगे।

धैर्य, अध्यवसाय, लगन, रुचि, श्रद्धा, उत्साह, उमंग और निश्चय साधना-काल में आवश्यक हैं। श्रद्धा और भक्ति-ये उदात्त वृत्तियाँ हैं, जो मनुष्य को बन्धन-मुक्त होने में सहायता देती हैं। इन सद्गुणों की वृद्धि करनी होती है। तभी सफलता हो सकती है। मार्ग में जो अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं, उन्हें देखें। आध्यात्मिक पथ दुर्गम है। गीता के अनुसार सहस्रों मनुष्यों में से कोई एक ही इस पथ पर चलता है। उनमें भी बहुत कम सफल होते हैं। कोई-कोई आधे मार्ग में ही साधना छोड़ देते हैं, क्योंकि उनके लिए लक्ष्य तक आगे चलना कठिन हो जाता है। धृति, धैर्य और उत्साह सहित धीर साधक ही सच्चिदानन्द-रूप लक्ष्य को पहुँचते हैं। ऐसी विरल उच्च आत्माएँ धन्य हैं!

परिच्छेद-३०

मन के निग्रह की विधि

"मनोजय एव महाजयः"*-मन पर विजय महत्तम विजय है। हिन्दी में कहावत है:* ***"मन जीता, जग जीता"*** *- यदि आपने मन को जीत लिया तो समस्त संसार को जीत लिया।*

हिन्दू-शास्त्रों में आपको शब्दों का अर्थ सदा दो प्रकार का मिलेगा-एक तो गुह्य अर्थ और दूसरा लोक-प्रचलित अर्थ। गुह्य अर्थ, आन्तरिक अर्थ को समझना बड़ा कठिन होता है। इसलिए गुरु की आवश्यकता होती है। हठयोग की पुस्तकों में लिखा है : "गंगा और यमुना के संगम में एक कुमारी विधवा बैठी है।" आप इसका क्या अर्थ निकालेंगे? इसे समझना कठिन है। बाल-विधवा सुषुम्ना नाड़ी है। गंगा पिंगला-नाड़ी है। यमुना इड़ा-नाड़ी है।

कठोपनिषद् में आपको एक शब्द मिलेगा जिसका अर्थ ईंट है; परन्तु यहाँ ईंट से देवता का तात्पर्य है।

रामायण का रहस्य

रामायण में भी रहस्य हैं। वह है मन का निग्रह। लंका के दशमुख रावण को मारने का अर्थ है मन की दश कुवृत्तियों; जैसे काम, क्रोध आदि; का नाश करना। सीता मन है। राम शुद्ध-ब्रह्म है। लंका से सीता को लौटा लाना अर्थात् राम (ब्रह्म) में मन को लगाना है और विषयों से मोड़ना है। अयोध्या में सीता राम से मिलती है अर्थात् सहस्रार चक्र में मन ब्रह्म में लीन हो जाता है। यह रामायण का आध्यात्मिक अथवा गूढ़ार्थ है।

मन पर प्रभुत्व ही मोक्ष का एकमात्र द्वार है

एक ओर प्रकृति है और दूसरी ओर आत्मा या ब्रह्म है। मन इन दोनों के बीच में सेतु है। पुल पार कर लें (मन का निग्रह कर लें); आप ब्रह्म-प्राप्ति कर लेंगे।

जिसने मन को जीत लिया, वही सच्चा विजयी और महाराजा है। जिसने इच्छाओं, बासनाओं और मन को वश में कर लिया, वह सर्वाधिक धनवान् है। यदि मन वश में है तो इसमें कुछ भेद नहीं होता कि आप राजप्रासाद में रहें या ऋषिकेश से पन्दरह मील दूर वसिष्ठगुहा-जैसी हिमालय की गुफा में रहें, सक्रिय व्यवहार करें या मौन बैठे रहें।

जो विक्षेप के संसर्ग से प्रभावित नहीं होता, ऐसे मन का मिलना विरल बात है। जैसे अमि से ताप अभिन्न है, वैसे ही मन को गिराने वाला विक्षेप भी मन से अभिन्न है। इस विक्षेप से रहित हो कर मन का अस्तित्व ही मिट जाता है। इसी विक्षेप-शक्ति को निरन्तर आत्मानुसन्धान के द्वारा नष्ट कर देना चाहिए।

संकल्प-विकल्प का कारण मन है। इसलिए आपको मन को अवश्य वश में करना चाहिए। आपको इसे बाँधना चाहिए।

मन के मोह को दूर कर लेने पर सच्ची मुक्ति मिलती है। जैसे क्षुब्ध समुद्र में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब दिखायी नहीं दे सकता, इसी प्रकार विक्षेप-युक्त मन पर पड़ी हुई आत्मा की छाया भी दिखायी नहीं दे सकती। आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने के लिए मनुष्य को निरन्तर मन के साथ इसकी शुद्धि और स्थिरता के लिए संघर्ष करते रहना चाहिए। केवल इच्छा-शक्ति से ही इसका विक्षेप रुक कर निग्रह हो सकता है। दृढ़ कामना, श्रद्धा और बलवती इच्छा-शक्ति-इन तीनों साधनों के द्वारा आप अपने प्रयास में प्रत्याशित सफलता प्राप्त कर सकते हैं। यदि मन सारे मलों और सांसारिक दूषणों से शुद्ध हो जाये तो यह अत्यन्त निश्चल हो जायेगा। इसकी सारी चंचलता बन्द हो जायेगी। परम निष्ठा प्राप्त होगी। तब सारा सांसारिक भ्रम अपने जन्म-मृत्यु-रूपी अनुचरों सहित नष्ट हो जायेगा। तब आपको परम धाम की प्राप्ति होगी।

इस विद्रोही मन के निग्रह के अतिरिक्त इस संसार में और कोई ऐसा जलपोत नहीं है जिसके द्वारा जन्म-मरण के सागर को पार किया जा सके। जिन्होंने वासनाओं से पूर्ण मन-रूपी सर्प का निग्रह कर लिया है, केवल वही मोक्ष प्राप्त करेंगे।

जो मोक्ष चाहने वाले हैं, जिन्होंने अजेय कामनाओं को नष्ट कर दिया है और जो अपने ही प्रयत्नों द्वारा मोक्ष तक का मार्ग तय करने की चेष्टा करते हैं, उनके लिए इस दुःखप्रद मन को त्याग देना ही उनका लोकोत्तर पथ है और तब उनको ज्ञान होता है जैसे उनके शिर से बड़ा भारी बोझ हट गया हो। अन्य कोई मार्ग सच्चा लाभकारी नहीं है।

यदि आपको मन के ऊपर पूर्ण वशित्व हो जाये और इन्द्रियों का दमन करके तथा अहंकार का नाश करके सच्चा ज्ञान प्राप्त हो जाये तो आप निस्सन्देह जन्म-मरण के दुःखों से छूट जायेंगे। 'मैं', 'तुम', 'वह' इत्यादि के भेद जाते रहेंगे। सारे दुःख, क्लेश, पीड़ा, शोक मन के नाश के साथ ही बन्द हो जायेंगे।

मन का निग्रह कौन कर सकता है?

कोई मनुष्य घास की एक पत्ती से एक-एक बूँद निकाल कर समुद्र को खाली करने में लगा हुआ हो, जितने धैर्य और अथक लगन की उसको आवश्यकता होती है, ठीक उतने ही धैर्य और लगन से मन का निग्रह किया जा सकता है।

एक पक्षी ने समुद्र के किनारे अण्डे दिये। लहरें आयीं और अण्डों को बहा कर ले गयीं। पक्षी को बड़ा क्रोध आया। वह अपनी चोंच से समुद्र को खाली कर देना चाहता था। उसने समुद्र को खाली करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी। पक्षियों के राजा को उस पर दया आयी और वह उसकी सहायता के लिए आया। शान्ति की स्थापना करने वाले नारद ऋषि भी वहाँ आये और उन्होंने पक्षी को कुछ उपदेश दिया। जब सागर के राजा ने यह सब देखा तो वह बड़ा भयभीत हो गया। वह पक्षी के अण्डे वापस ले आया और क्षमा-प्रार्थना तथा प्रणाम करके पक्षी को उसके अण्डे लौटा दिये। जो साधक मन के निग्रह का प्रयत्न कर रहे हैं, उन्हें भी ऐसा ही मूर्खतापूर्ण धैर्य और अथक लगन होनी चाहिए जैसी उस पक्षी में थी जो अपनी चोंच से समुद्र को खाली कर देने का प्रयत्न कर रहा था।

आपमें मन को साधने की दक्षता अथवा अभिवृत्ति होनी चाहिए। शेर या चीते को साधना मन को साधने से कहीं सुगम है। पहले अपने मन को साध लें। तब आप दूसरों के मन को सुगमता से साध लेंगे।

मन ही बन्धन तथा मोक्ष का कारण है

"मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः" -मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष के लिए मन ही कारण होता है। मन के दो स्वरूप होते हैं: एक विवेकशील, दूसरा कल्पनाशील। अपने विवेकशील रूप से यह बन्धन-रहित हो कर मोक्ष प्राप्त करता है और कल्पनाशील रूप से यह संसार के साथ बंध जाता है।

मन ही मनुष्य को इस संसार से बाँधे रखता है। जहाँ मन कार्य नहीं करता, वहाँ बन्धन भी नहीं होता। अविवेक और अज्ञान के द्वारा मन कल्पना करता है कि आत्मा इस देह में बँधा हुआ है और इसलिए यह आत्मा को बद्ध मानता है। यह अपने को जीवात्मा से अभिन्न मानता है और स्वयं 'मैं' बन जाता है तथा सोचता है कि 'मैं बन्धन में हैं।' अहंकार-युक्त मन ही बन्धन का कारण है। निरहंकारी मन मोक्ष का कारण है।

मन के द्वारा मन को नष्ट करें

ज्ञानी ऋषियों के द्वारा बतायी हुई मन के रोग दूर करने के लिए, सर्वश्रेष्ठ अचूक औषधि मन के ही द्वारा प्राप्त हो सकती है। बुद्धिमान् पुरुष मैले वस्त्र को मिट्टी से ही साफ करता है। घातक अग्नि-अस्त्र का प्रतिघात वरुणास्त्र से होता है। सर्पदंश का विष दूसरे विष के इंजेक्शन से ही दूर होता है। यही बात जीव के लिए भी सत्य है। विवेक की वृद्धि करके एकाग्र मन के द्वारा इस विजातीय मन के भ्रमजाल का नाश कर दें जैसे लोहे से लोहा काटा जाता है।

मन को शुद्ध करें

आपको मन के दूषित विकास और इसे अनुचित मार्ग में जाने से बचाना चाहिए। मन विनोदशील बच्चे के समान है। मन की अत्यावश्यक शक्तियों को सत्य के प्राकट्य के लिए उत्तम मार्गों की ओर झुकाना चाहिए। मन को सत्त्व से भरना चाहिए। इसे निरन्तर सत्य या ईश्वर के चिन्तन की शिक्षा देनी चाहिए।

योग-मार्ग में यह आवश्यक है कि हम मानसिक और आध्यात्मिक साधना-क्रम को पूरा करें। उपनिषद् भी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए तीव्र तप-पालन पर जोर देते हैं। तप पापों का नाश करता है, इन्द्रियों को दुर्बल करता है, चित्त को शुद्ध करता है और मन को एकाग्र कर देता है।

तप से मानसिक मौन मिलेगा तथा मन की बेचैनी दूर होगी। यह मन की बेचैनी ज्ञान में महान् बाधक होती है। ब्रह्मचर्य का जीवन-जिसमें गृहस्थी की कोई आसक्ति आपके मन में उद्वेग नहीं करेगी, आपको आध्यात्मिक साधना में पूर्ण अवधान देने योग्य बनायेगा। यदि आप सत्य और ब्रह्मचर्य का अभ्यास करें तो आप निर्भय हो जायेंगे। अन्त में आप ब्रह्म-प्राप्ति भी कर लेंगे। एक बात को जोंक की भाँति दृढ़ता से पकड़ लें। श्रद्धा का होना आवश्यक है।

शुद्ध किया हुआ संखिया (विष) जब ठीक मात्रा में दिया जाये तो लाभदायक होता है। यह अनेक रोगों को दूर करता है। रक्त को शुद्ध करके उत्तम बनाता है। जब अशुद्ध होता है और ठीक-ठीक मात्रा में नहीं दिया जाता तो इसके अनेक कुपरिणाम होते हैं। इसी प्रकार मन को जब निर्विषय और शुद्ध कर दिया जाये तो यह मोक्ष तक पहुँचा देता है। जब यह अशुद्ध और विषयासक्त होता है तो बन्धन का कारण होता है।

जिनके हृदय पवित्र हैं, वे धन्य हैं; क्योंकि उनको भगवान् का दर्शन हो जायेगा। हृदय पवित्र होना चाहिए। आँख की दृष्टि भी पवित्र होनी चाहिए। आँख में एक रसना होती है। कामुक नेत्र भिन्न-भिन्न प्रकार के सौन्दर्य को अपनी पसन्द के लिए चखना चाहता है। नेत्र का काम (लालसा) उतना ही भयानक है जितना मांस का। प्रकृति का सौन्दर्य भगवान् से ही प्रकट होता है। आँख को ठीक प्रकार साध लें, इसे सब कहीं आत्मा का दर्शन करने दें।

योग-मार्ग आपको उपदेश देता है कि किस प्रकार आप मन को शुद्ध करके दर्पण के समान निर्मल बना सकते हैं और काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, ईर्ष्या आदि मलों से छूट सकते हैं। दान, जप, तप, व्रत, तीर्थयात्रा, सेवा, दया, स्वाध्याय, अग्निहोत्र, यज्ञादि सारे सत्कर्मों का उद्देश्य मन की शुद्धि है।

राजयोग के यम के अभ्यास का सार ईसामसीह के 'पर्वतीय उपदेश' (Sermon on the Mount) में है। इन उपदेशों को चरितार्थ करना कठिन है; परन्तु यदि इनको अभ्यास में लाया जाये तो मन का निग्रह सुगम हो जाता है। उस उपदेश को संक्षेप में नीचे दिया जाता है :

(१) “भीरु पुरुष धन्य हैं; क्योंकि स्वर्ग का राज्य उनका ही है।"

(२) "जो शोक करते हैं, वे धन्य हैं; क्योंकि उन्हें सान्त्वना मिलेगी।"

(३) “विनीत पुरुष धन्य हैं; क्योंकि उनको पृथ्वी उत्तराधिकार में मिलेगी।"

(४) "जो धर्म के पीछे भूखे और प्यासे रहते हैं, वे धन्य हैं; क्योंकि वे पूर्ण हो जायेंगे।"

(५) "दयावान् पुरुष धन्य हैं; क्योंकि उनको दया मिलेगी।"

(६) "जिनका हृदय शुद्ध है, वे पुरुष धन्य हैं; क्योंकि वे परमात्मा का दर्शन करेंगे।"

(७) "शान्ति कराने वाले धन्य हैं; क्योंकि वे ईश्वर के बच्चे कहलायेंगे।"

(८) "जिन पुरुषों पर धर्म के लिए अत्याचार होता है, वे धन्य हैं; क्योंकि उनको स्वर्ग का राज्य मिलेगा।"

(९) "तुम लोग धन्य होंगे जब लोग तुमको तंग करेंगे, तुम पर अत्याचार करेंगे और मेरे लिए तुम पर सब प्रकार के झूठे दोष लगायेंगे। आनन्द मनायें और अत्यन्त प्रसन्न हो जायें; क्योंकि स्वर्ग में बड़ा इनाम मिलेगा। उन्होंने तुमसे पहले होने वाले पैगम्बरों पर भी इसी प्रकार अत्याचार किये थे।"

(१०) "लेकिन मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम बुराई का प्रतिरोध न करो; किन्तु जो कोई तुम्हारे दायें गाल पर मारे उसके आगे बायाँ गाल भी कर दो।"

(११) "और यदि कोई मनुष्य तुम्हारे विरुद्ध अभियोग चलाये या तुम्हारा कोट उत्तार कर ले जाये तो उसको अपना चोगा भी दे दो।"

(१२) "अपने शत्रुओं को अपने समान ही प्रेम करो। जो तुम्हें गाली दें, उनको आशीर्वाद दो; जो तुमसे द्वेष करते हैं उनका भला करो और जो तुमको हानि पहुंचाते हैं और अत्याचार करते हैं उनके लिए प्रार्थना करो।"

नित्यप्रति काम पर जाने से पहले प्रातःकाल सावधानी से भगवान् मसीह के इस पवित्र उपदेश को पढ़ें और दिन में एक या दो बार इस उपदेश का स्मरण कर लें। कुछ समय में आप अपनी भावनाओं और मुद्राओं का संयम करने के योग्य हो जायेंगे और दोषों को निकाल कर सद्गुणों की वृद्धि कर सकेंगे। आपको असीम आनन्द और इच्छा-शक्ति प्राप्त होगी।

आध्यात्मिक मार्ग बड़ा ही ऊबड़-खाबड़, कँटीला और ढालू है। श्रुति ने बताया है, **"क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्ग पथस्तत्कवयो वदन्ति।"** वह मार्ग छुरे की धार के समान तेज है और अगम्य है। ज्ञानी लोग बताते हैं कि उस पर चलना कठिन है। धैर्य और तत्परता से काँटों को उखाड़ना चाहिए। कुछ काँटे आन्तरिक हैं और कुछ बाहरी। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि आन्तरिक काँटे हैं। बाहरी काँटों में से कुसंगति का काँटा सबसे बुरा है। इसलिए कुसंगति से दृढ़ता के साथ बचते रहें।

भलाई करें तथा आत्मनिरीक्षण करें

सदा धार्मिक कार्य करें। मन पर दृष्टि रखें और देखें कि यह क्या कर रहा है। ये ही दोनों मार्ग मन के निग्रह के लिए पर्याप्त हैं।

सत्संग, जप आदि के द्वारा अपने आध्यात्मिक संस्कारों को जगायें, उनकी रक्षा करें, विकास करें और पोषण करें। सत्संग मन के निग्रह तथा मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

आत्मनिरीक्षण करें। सदा आन्तरिक जीवन रखें। मन के एक भाग और हाथों को स्वाभाविक कार्य करने दें। नट की लड़की जब अपने खेल दिखाती है तो बाजे के साथ-साथ नाचते हुए भी उसका ध्यान शिर पर रखे हुए पानी के घड़े पर लगा रहता है। इसी प्रकार धार्मिक मनुष्य भी सांसारिक व्यवहार करता हुआ भी अपनी दृष्टि भगवान् के आनन्दपूर्ण चरणों में लगाये रखता है। यह कर्मयोग और ज्ञानयोग का मिश्रण कहलाता है। इससे सर्वांगीण विकास होता है। यही साम्यावस्था है। यह सांश्लेषिक योग है। कुछ वेदान्तियों का एक एकांगी विकास होता है। वह अच्छा नहीं है।

कीर्तन करें

सर्प को संगीत बड़ा प्रिय होता है। यदि आप मधुर स्वर से पन्नगवरालि तान को गायें तो वह आपके सामने आ जायेगा। मन भी सर्प के समान है। इसको भी मधुर संगीत-ध्वनियाँ बहुत पसन्द होती हैं। मधुर स्वरों से इसे बड़ी सुगमता से फँसाया जा सकता है।

कानों को बन्द करके हृदय से निकलने वाली मधुर अनाहत ध्वनि पर इसे लगायें। इस रीति से इसका निग्रह बड़ी सुगमता से किया जा सकता है। यह लययोग है। पिंगला गणिका ने अपना मन तोते की 'राम-राम' - ध्वनि पर लगा दिया था और भाव-समाधि प्राप्त कर ली थी। बंगाल के एक प्रसिद्ध भक्त रामप्रसाद ने संगीत के द्वारा मन का निग्रह किया था। अशान्त मन को शान्त करने में वाद्य का बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। अमेरिका के चिकित्सक अनेक रोगों को, विशेषतया स्नायु-सम्बन्धी रोगों को दूर करने के लिए वाद्य का प्रयोग करते हैं। वाद्य मन को भी उन्नत करता है।

नवधा-भक्ति में कीर्तन भी एक प्रकार है। इससे भाव-समाधि हो जाती है। यह सारे भारतवर्ष में प्रचलित है। यह ईसाइयों के स्तुति-भजन-गायन के समान है। बंगाल के रामप्रसाद ने कीर्तन के द्वारा ईश्वर-साक्षात्कार किया था। उनके भजन बंगला में बहुत प्रसिद्ध हैं। इस कलियुग में परमात्मा को प्राप्त करने का सुगम उपाय कीर्तन है। निरन्तर भगवान् हरि का नाम गाते रहें। उनके गुणों का गान करते रहें। आपको उनका दर्शन हो जायेगा। जो अच्छा गाना जानते हैं, उन्हें एकान्त में जा कर शुद्ध भाव से मुक्त हृदय से गाना चाहिए। समय पा कर उन्हें भाव-समाधि हो जायेगी। इसमें कुछ सन्देह नहीं है।

सदा परमात्मा का चिन्तन करें

बराबर परमात्मा का विचार करते रहें। आप बड़ी सुगमता से मन को जीत सकेंगे। यदि आप एक बार भी मन में भगवान् विष्णु या शंकर का ध्यान करते हैं तो सात्त्विक पदार्थ थोड़ा-सा बढ़ता है। यदि आप करोड़ बार ध्यान करें तो मन में बहुत-सा सत्त्व बढ़ जायेगा। ईश्वर का निरन्तर ध्यान मन को क्षीण करके वासनाओं और संकल्पों का नाश कर देता है।

अपने हृदय-कमल में जब आप भगवान् कृष्ण का ध्यान करते हैं, तो भगवान् की मूर्ति पर आपका ध्यान स्थिर हो जाता है और ध्यान स्थिर होते ही आध्यात्मिक प्रवाह बलने लगता है। जब ध्यान लग जाता है तो प्रवाह स्थिर रूप से चलने लगता है और जब ध्यान अति-गम्भीर हो जाता है तो समाधि लग जाती है। भगवान् के साथ आपका तादालय हो जाता है। सारे संकल्प-विकल्प बन्द हो जाते हैं। पूर्ण चित्त-वृत्ति-निरोध हो जाता है।

प्राणायाम-साधना

मन का संयम करने के लिए दो बातों की आवश्यकता है : प्राणनिरोध और संग-त्याग अर्थात् संसारी पदार्थों में आसक्ति अथवा राग न होना। पश्चादुक्त से तात्पर्य न केवल संसार से वरन् सांसारिक पदार्थों की कामना अथवा उनके प्रति आकर्षण से सम्बन्ध-विच्छेद भी है।

प्राणायाम से मन का वेग रुक जाता है और विचार-क्रिया कम हो जाती है। यह मन के मल, रजोगुण और तमोगुण को दूर करता है।

मन के नियन्त्रण के लिए कुम्भक अपरिहार्य है। नित्य कुम्भक का अभ्यास करना होगा। पूरक, कुम्भक और रेचक का नियमित तथा तालबद्ध रूप से अभ्यास करें। तब मन एकाग्र हो जायेगा। विधिपूर्वक अभ्यास का पालन, नियन्त्रित आहार तथा उचित आहार-सम्बन्धी नियम (हलका, पौष्टिक, सात्त्विक भोजन) करने से कुम्भक का काल बढ़ जायेगा। यह हठयोग-मार्ग है। कुम्भक का अभ्यास पूर्णयोगी गुरु के पथप्रदर्शन में करना चाहिए।

शम और दम का अभ्यास

शम और दम के अभ्यास से मन की उपरति आती है। वासनाओं के उम्मूलन से उत्पन्न मन की शान्ति शम है। विवेक द्वारा वासना-त्याग शम-षट् सम्पत्तियों में से एक-का अभ्यास है। यदि मन में कोई इच्छा पैदा हो तो उसके वश में न हो जायें। यह शम का अभ्यास हो जायेगा। शम साधना द्वारा मन को हृदय में टिकाये रखना है। मन को बाहर आ कर पदार्थ नहीं बनाने देना दम है। बाह्य क्रियाओं और इन्द्रियों का निग्रह दम का अभ्यास कहलाता है।

यदि आप आम खाने की इच्छा का त्याग कर दें तो यह शम है और यदि आम मोल लेने के लिए अपने पाँव को बाजार तक न जाने दें, यदि आप आँखों को आम न देखने दें और यदि जिह्वा को उन्हें न चखने दें तो यह दम है।

मिठाई खाने की इच्छा उत्पन्न होती है। आप पैरों को मिठाई मोल लेने के लिए बाजार न जाने दें, जिह्वा को मिठाई न खाने दें तथा आँखों को मिठाई देखने भी न दें। इस प्रकार का इन्द्रिय-निग्रह दम कहलाता है।

जब आप वासना-त्याग के द्वारा मन में मिठाई-सम्बन्धी कोई विचार ही नहीं उठने देते तो यह शम कहलाता है। विचार, ब्रह्म-चिन्तन, जप, ध्यान, प्राणायाम आदि के द्वारा वासनाओं का त्याग किया जा सकता है।

शम आन्तरिक निग्रह है। दम इन्द्रियों का निग्रह है। यद्यपि शम के अभ्यास में दम का अभ्यास भी अन्तर्गत है; क्योंकि मन की सहायता बिना इन्द्रियों की गति और क्रिया नहीं होगी, तो भी दम का अभ्यास आवश्यक है। दम का

अभ्यास शम के साथ ही होना चाहिए। अकेला शम ही पर्याप्त नहीं होता। कामना-रूपी शत्रु पर आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार का आक्रमण होना चाहिए। तभी आप मन को सुगमता से वश में कर सकते हैं। तभी मन का निग्रह पूर्ण रूप से होता है।

वैराग्य विकसित करें

जो वैराग्य का अभ्यास करते हैं, सच्चे अर्थों में वे ही मन को साध सकते हैं। वस्तुओं के लिए कोई इच्छा न करें। इनसे बचें। वैराग्य मन को दुर्बल बना देता है। यह मन का बड़ा भारी शोधक है। जब मन-रूपी चोर वैराग्य, त्याग, संन्यास शब्दों को सुनता है तो काँपने लगता है। इनका नाम सुनने से उसको सांघातिक प्रहार लगता है।

मन के सारे सुख-केन्द्र नष्ट कर दें। स्वादु वस्तुओं का बार-बार भोजन, ज्यादा गप-शप करना, सैर करना, गाना सुनना और स्त्रियों की संगति में रहना जैसे मन के सारे सुख-केन्द्रों को धीरे-धीरे सावधानी से नष्ट कर डालें। आत्मज्ञान-सम्बन्धी पुस्तकों का स्वाध्याय, ध्यान और मनुष्य-जाति की सेवा-केवल इन तीन सात्त्विक सुख-केन्द्रों को बनाये रखें। जब ध्यान में उन्नति हो जाये तो सेवा और स्वाध्याय को भी कुछ काल के लिए छोड़ दें। जब निर्विकल्प अवस्था में पहुँच जायें तो गीता का ज्ञान-यज्ञ प्रारम्भ करें अर्थात् दिव्य ज्ञान का उपदेश करें। इसी का प्रचार करें और इसके लिए ही कार्य करें।

मन की रुचि जिस वस्तु में विशेष हो, उसे ही त्यागना चाहिए। मन जिस पदार्थ पर निरन्तर विचार करता है, जिसके विषय में प्रायः चिन्तन करता है, उसका परित्याग करना चाहिए। यदि आप बैंगन या सेब अधिक पसन्द करते हैं तो पहले उनको ही छोड़ दें। आपको बहुत शान्ति, इच्छा-शक्ति और मन का निग्रह प्राप्त होगा।

मान लें कि आपको चाय, आम, अंगूर और मिठाइयाँ बहुत पसन्द हैं। इन वस्तुओं को और इनके लिए कामनाओं को भी त्याग देने को महत्त्व दें। कुछ महीने पीछे इन वस्तुओं की तृष्णा अथवा वासना क्षीण हो जायेगी और धीरे-धीरे नष्ट हो जायेगी। आपको नित्य तीन-चार घण्टे प्रार्थना, जप और ईश्वर के ध्यान में लगाने चाहिए। जो उपर्युक्त पदार्थ आपको बहुत ही आकर्षक लगते थे, अब वे अत्यन्त हेय मालूम होते हैं। अब वे आपके भावों के बिलकुल उलटे भाव प्रस्तुत करते हैं। उनसे आपको तीव्र वेदना होती है। यह सच्चे वैराग्य और मनोनाश का द्योतक है।

यदि सारे सुन्दर दिखने वाले पदार्थ आँख का काँटा बन जायें और उनके प्रति पूर्व के भावों के विरोधी भाव पैदा होने लगें, तब जान लें कि मन का नाश हो गया। जब मन बदल जाता है तो जो पदार्थ पहले आनन्द देते थे, वे दुःख देने लगते हैं। मनोनाश का यही चिह्न है।

जो बातें आपको शीघ्र अशान्त बना दिया करती थीं, वे अब आपको स्पर्श तक नहीं करतीं। जिन अवसरों पर आप खीज उठा करते थे, उनसे अब ऐसा नहीं होता। आपको बल, सहन-शक्ति, प्रतिरोध की क्षमता और विघ्नों को सुलझाने की सामर्थ्य मिल गयी है। दूसरों के कुछ कठोर शब्द जो आपको बेचैन कर दिया करते थे, अब आपको दुःख नहीं पहुँचाते और यदि आप खीज भी जायें और क्रोध के चिह्न प्रकट भी करें तो अब आप शीघ्र ही प्रकृतिस्थ हो जाते हैं। ये सब बातें मनोबल और इच्छा-शक्ति प्राप्ति के चिह्न हैं। ध्यान के अभ्यास से ये सब लाभकारी फल प्राप्त होते हैं।

जैसे शुद्ध श्वेत वस्त्र पर गुलाबी रंग अच्छा फैलता है, इसी प्रकार जब मन शान्त हो, सारे भोगों की ओर से उदासीन हो, सारी इन्द्रियाँ अन्तर्मुखी हो जायें और मन के अज्ञान का नाश हो गया हो, तभी सद्गुरु के उपदेश-वाक्य शिष्य के मन में प्रवेश करके प्रभाव दिखायेंगे।

सन्तोष रखें

मन सुख-स्नेही, आरामतलब और अलमस्त है। आपको इस स्वभाव को रोकना चाहिए। मन में आराम और सुख की इच्छा जमी होती है। साधकों को बहुत ही सावधान और सचेत रहना चाहिए। अपनी इच्छाओं की पूर्ति का प्रयत्न न करें। यह भी मन को जीतने का उपाय है। जिन वस्तुओं का आपने त्याग किया है, उनको फिर से ग्रहण कभी न करें। जब आप किसी वस्तु को त्यागते हैं तो कुछ दिनों के लिए उस वस्तु की इच्छा तीव्र तथा बलवती हो जाती है। यह आपके मन को उद्विग्न करती है। चुप रहें। दृढ़ बने रहें। यह दुर्बल होती जाती है और अन्त में मर जाती है। जब कभी मन-रूपी सर्प उन पदार्थों की ओर वापस जाने को फुंकार मारे जिन्हें वह पहले त्याग चुका है, तो आप विवेक का डण्डा सँभालें। यह फण नीचा कर लेगा और शान्त हो जायेगा।

आपको मन के साथ कृपालु अथवा सदय नहीं होना चाहिए। यदि आप अपनी आवश्यकताओं को एक भी वस्तु से बढ़ा देंगे तो फिर पदार्थों की संख्या में वृद्धि होने लगेगी। एक-एक करके विलासिता आने लगेगी। यदि आप इसे आज एक प्रकार की विलास-सामग्री देंगे तो कल यह दो चाहेगा। इस प्रकार प्रतिदिन विलासिता बढ़ेगी। यह अधिक लाड़-दुलार में बिगड़े हुए बच्चे के समान हो जायेगा। बच्चे को डाँटना बन्द कर दें तो वह बिगड़ जाता है-यही कहावत मन के लिए भी लागू होती है। इसकी प्रत्येक गम्भीर भूल के लिए आपको उपवास आदि के द्वारा इसे दण्ड देना चाहिए। इन्द्रियों को यथा-स्थान वश में रखें। उन्हें एक इंच भी न हिलने दें। जब भी कोई इन्द्रिय अपना शिर उठाने के लिए फुंकार करे, तभी विवेक का डण्डा उठा लें। इस अभ्यास से आपका मन एकाग्र हो जायेगा। जो मनुष्य पदार्थों की इच्छा किये बिना उनसे बचे रहते हैं, वे मन का निग्रह करने वाले कहे जा सकते हैं।

जो स्वेच्छा से प्राप्त हुई वस्तुओं से सन्तुष्ट नहीं रहते, वे केवल दुर्बल मन वाले होते हैं। सन्तोष अति-महान् गुण है। **'सन्तोषात् परं लाभम्'** -सन्तोष से आपको बहुत लाभ होगा। यह मोक्ष के विशाल साम्राज्य के चार प्रहरियों में से एक है। यदि आपमें सन्तोष है तो यही सत्संग, विचार और शान्ति प्राप्त करा देगा।

जब आप कल के लिए वस्तुओं का संग्रह नहीं रखना चाहते तो इसे 'असंग्रह-बुद्धि' कहते हैं। यह सच्चे संन्यासी की मनोदशा है। संन्यासी को कल का कोई विचार नहीं होता। इसके विपरीत गृहस्थी को संग्रह-बुद्धि हुआ करती है। हमें पक्षी की भाँति स्वतन्त्र होना चाहिए और संग्रह-बुद्धि नहीं रखनी चाहिए।

प्रत्येक वस्तु जिस रूप में प्राप्त हो, उसी रूप में ग्रहण करें

शिकायत करने के बदले जो भी वस्तु, जैसी मिले, उसे वैसा ही ग्रहण करें। इस उपाय से मनुष्य प्रत्येक अवसर को पकड़ता है। उसका विकास बड़ी सुगमता से होता है। उसे अधिक मनोबल और समत्व प्राप्त होता है, उसका चिड़चिड़ापन दूर हो जाता है तथा उसकी सहन-शक्ति और धैर्य बढ़ते हैं।

यदि आपको शोर के बीच रहना पड़ता है तो इसकी शिकायत न करें, अपितु इससे लाभ उठायें। मनुष्य बाहरी उपद्रवों को धारणा के अभ्यास के लिए, उपयोग कर सकता है। आपको मानसिक शक्ति का इतना विकास करना चाहिए कि आपके निकट चाहे कुछ भी होता रहे, आप निश्चल भाव से कार्य करते रहें। यह शक्ति अभ्यास के द्वारा आती है और फिर यह अनेक प्रकार से उपयोगी होती है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में काम करते रहने का अर्थ उन्नति है और यह बहुत ही मनोनिग्रह से होता है।

सत्संग की शरण लें

मन के स्वभाव और स्वरूप का भली प्रकार ज्ञान हुए बिना आप इसका संयम नहीं कर सकते। ऊँचा विचार मन को रोकता है और नीच विचार मन को उत्तेजित करता है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि धार्मिक मनुष्यों की संगति रखी जाये और नीच मनुष्यों की संगति से बचा जाये।

सात्त्विक पुरुषों का संग और अच्छा वातावरण मन को उन्नत करने में बहुत बड़ी भूमिका अदा करते हैं। मोक्ष-प्राप्ति में सत्संग बहुत सहायक होता है। अन्य कोई उपाय नहीं है। यह मन को पूर्णतया रूपान्तरित कर डालता है। यह मन की धारा तथा इसके राजसिक स्वभाव को बदल डालता है। यह मन के पुराने विषय-संस्कारों को हटा कर उसमें सात्त्विक संस्कार भर देता है। यह आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक तीनों प्रकार के तापों को दूर करके अन्तःकरण को शीतल बना देता है तथा मोह का नाश कर देता है। यदि आपको सत्संग मिल सके तो फिर किसी तीर्थ को जाने की आवश्यकता नहीं है। यही तीर्थों का तीर्थ है। जहाँ कहीं सत्संग होता है, पावन त्रिवेणी तो वहाँ पहले से ही होती है।

निरन्तर सत्संग द्वारा इस अज्ञान-रूप मन का नाश कर दें। सत्तात्मक सत्संग के अभाव में आत्मदर्शी पुरुषों की लिखी हुई पुस्तकों, जैसे श्री शंकराचार्य के ग्रन्थ, योगवासिष्ठ, श्री दत्तात्रेय की अवधूतगीता, उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, आत्मपुराण, सर्ववेदान्त-सिद्धान्त-सार-संग्रह, श्री शंकराचार्य की अपरोक्षानुभूति आदि-आदि सद्ग्रन्थों का सेवन करें।

प्रेरक पुस्तकों का स्वाध्याय आध्यात्मिक साधना में सहायक होता है; परन्तु अधिक स्वाध्याय से मस्तिष्क गँगॅदला हो जाता है। जब आप ध्यान से उठें तो थोड़े समय के लिए अवधूतगीता, योगवासिष्ठ, कठोपनिषद्, बृहदारण्यकोपनिषद् जैसे ग्रन्थ पढ़ें। इससे मन उन्नत होता है।

यदि आप संन्यासियों की संगति में रहें, योग और वेदान्त की पुस्तकें पढ़ें तो भगवद्-ज्ञान प्राप्त करने के लिए मानसिक संलग्नता उपजती है; परन्तु केवल इस मानसिक संलग्नता ही से आपको अधिक सहायता नहीं मिलेगी। तीव्र वैराग्य, उग्र मुमुक्षुत्व, आध्यात्मिक साधना के लिए शक्ति, तत्परता से निरन्तर अभ्यास और निदिध्यासन की आवश्यकता है। तब कहीं आत्म-साक्षात्कार सम्भव हो सकता है।

संकल्पों को नष्ट करें

यह मनुष्य और वह मनुष्य, तुम और मैं, यह वस्तु और वह वस्तु-इस प्रकार के भेद के विचार मन से ही सम्बन्ध रखते हैं। अभावना की तलवार से इस मन का अन्त कर दें। किले में से निकलते हुए सिपाहियों को एक-एक करके मार दें। अन्ततः आप किले पर अधिकार कर लेंगे। ऐसे ही ज्यों-ज्यों मन में विचार उठते जायें, एक-एक करके उनका नाश कर दें, आखिर में आप मन पर विजय प्राप्त कर लेंगे।

यदि आप सब प्रकार की कल्पना को क्षीण कर सकें तो जैसे प्रचण्ड झंझा से घने मेघ छिन्न-भिन्न हो जाते हैं वैसे ही मन अपने उद्गम स्थान, चित्त में लीन हो जायेगा। तब आप सब प्रकार के दुःख, चिन्ता और क्लेशों से मुक्त हो जायेंगे। तब आपको नित्य सुख और मोक्ष-धन प्राप्त होगा।

मन माया है। यदि मन विषय-पदार्थों की ओर अन्धाधुन्ध दौड़ता है तो माया उस मनुष्य पर दृढ़ अधिकार कर लेती है। माया मन के ही द्वारा अनर्थ करती है। यह नीच पशुबुद्धियुक्त मन आपको सब प्रकार के विषय-भोगों में नीचे की ओर घसीटता है और अनेक रीतियों से आपको भ्रम में डालता है। माया अपनी शक्ति से मन में लाखों संकल्प उठाती है। जीव इन संकल्पों का शिकार बन जाता है।

जिनको सत् और असत् में दृढ़ विवेक है, उनके पास नीच मन नहीं फटक सकता। जिन मनुष्यों में विवेक और दृढ़ निश्चय है, वे माया को जल्दी ही पहचान सकते हैं और आत्म-प्राप्ति कर सकते हैं। इन शक्तियों (विवेक और इच्छा) के द्वारा माया का संयम किया जा सकता है।

उन्नत और सात्त्विक मन के द्वारा आत्मा के शत्रु इस नीच मन को मार दें। जब कभी आपको पदार्थ धोखा दे कर दुःखी करें तो विवेक, विचार और शुद्ध बुद्धि से काम लें। यद्यपि एक बार बुद्धि इन्द्रियों के भ्रम को, जिसने मन को ढका हुआ था, दूर कर देती है;

परन्तु मन फिर उन्हीं बस्तुओं की ओर जो मरीचिका के समान भ्रामक हैं, लौट कर आता है। ज्ञान में स्थित होने तक बार-बार बुद्धि का उपयोग करें। निश्चय ही अविद्या बड़ी प्रबल होती है।

कामनाओं को त्यागें। वस्तुओं के संकल्पों को त्यागें। वैराग्य बढ़ायें। इस तुच्छ झूठे 'मैं' को त्याग दें। सारे संकल्प इस मैं के चारों ओर घूमते हैं और इसे आवृत कर लेते हैं। शरीर की ओर अधिक ध्यान मत दें। शरीर और उसकी आवश्यकताओं का विचार जितना हो सके, उतना कम करें।

कोई संकल्प न रखें। विक्षेप वाला मन स्वयं ही मर जायेगा। यह ब्रह्म में घुल (अरूप मनोनाश) जायेगा। तब आपको आत्मा का साक्षात्कार होगा। जब मन मर जाता है तो 'मैं', 'तुम', 'यह', 'वह', काल, देश, जीव और जगत्-ये सब लोप हो जाते हैं। अन्दर और बाहर का विचार भी नष्ट हो जाता है। केवल एक अखण्ड परिपूर्ण चिदाकाश का ही अनुभव रहता है। हृदय में ज्ञानोदय के द्वारा सारे संशय दूर हो जायेंगे।

अहं-वृत्ति को नष्ट करें

आपको न केवल संस्कारों का नाश करने की चेष्टा करनी चाहिए, अपितु मन का, अहं-वृत्ति का (जो देहाध्यास बनाती है) और व्यावहारिक बुद्धि का भी (जो जीव-भाव और संसार के अनेक भेद बनाती है) नाश करना चाहिए। तब आप स्वरूप (अर्थात् सहज, सच्चिदानन्द, निर्विकल्प) - अवस्था में स्थित हो जायेंगे। वही वास्तविक मौनावस्था या अद्वैत ब्रह्म-निष्ठा है। मन के निग्रह में ही बुद्धि का संयम और इस तुच्छ अहन्ता का विनाश भी सम्मिलित है।

प्रभु यीशु कहते हैं, "अपने को खाली करो और मैं तुमको भर दूँगा।" इसका अर्थ है कि अपने अहंकार का नाश करें। तुममें ईश्वरीय भाव भर जायेंगे। इसे खाली करने का तात्पर्य है, **"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"** अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध करना। यह रिक्त करने की क्रिया निःसन्देह बड़ी कठिन साधना है; परन्तु तीव्र प्रकार के निरन्तर अभ्यास से सफलता मिलेगी, इसमें कोई निःसन्देह नहीं है। यह केवल बड़ी तीव्र साधना से ही हो सकता है कि आप अनुपम अपौरुषेय के उच्चतर शिखर पर पहुँच जायें जहाँ से संसार की वर-प्राप्त आत्माएँ सुदूर दृश्यों का दर्शन करती हैं और उन्नत दिव्य जीवन का उपभोग करती हैं।

यदि मन को 'मैं' के सारे संकल्पों से हीन कर दिया जाये तो गुरु से दीक्षा प्राप्त करके आत्म-चिन्तन के द्वारा और वेदों के तत्त्व को जान कर मन को विविध दुःखों कीओर से मोड़ा जा सकता है और स्वानुभूतिमूलक आनन्दपूर्ण आत्मा पर आश्रित किया जा सकता है।

ब्रह्म-विचार का अभ्यास करें

मन के साथ संघर्ष मत करें। इससे शक्ति का अपव्यय होता है। इससे मनोबल पर अधिक जोर पड़ता तथा वह क्षीण होता है। मन के साथ संग्राम न करें। सत्य में रहें। ॐ में रहें। विचार, ब्रह्म-भावना और निदिध्यासन के द्वारा आत्मा

में रहें। सारी बाधाएँ, सारे विक्षोभकारी तत्त्व, सारे मनोविकार स्वयं नष्ट हो जायेंगे। विचार-विधि का प्रयोग करें, प्रतीत करें तथा उसकी उपयोगिता को समझें। मन का पूर्ण संयम तो केवल ब्रह्म-विचार द्वारा ही हो सकता है। प्राणायाम, जप और दूसरे साधन तो सहायक हैं।

असफलता से हतोत्साहित न हों

असफलता से निरुत्साह न हों। यथाशक्य अपना प्रयत्न करते चले जायें। अपनी भूलों और हारों पर अधिक विचार मत करें। केवल अपनी असफलता का कारण जानने के लिए अपनी भूलों को देखें और फिर प्रयत्न करने लगें। ऐसा करने से आप अपनी उन वृत्तियों को सुखा देंगे जिनके कारण आपसे भूल हुई थी; परन्तु उन पर अधिक सोचते रहने से उन्हें नया बल मिलता है। छोटी-मोटी असफलताओं के लिए अधिक कोलाहल मत करें। बैठे-बैठे उन पर विचार मत करते रहें।

कुछ लोगों का स्वभाव ऐसा होता है कि एक काम की चेष्टा करते हुए भी किसी और बात को विचारते रहते हैं। ऐसे मनुष्य अपने कार्य में सफल नहीं होते। मन का विचारात्मक अंग और क्रियात्मक अंग दोनों को साथ-साथ कार्य करना चाहिए। किसी एक वस्तु की ओर ध्यान देते हुए हमारे विचार दूसरी वस्तु की ओर नहीं जाने चाहिए। जब आप पढ़ रहे हों, तो पढ़ाई का ही विचार रखें। उस समय क्रिकेट मैच का विचार मत करें। जिस समय क्रिकेट मैच खेल रहे हों, उस समय पढ़ाई का ध्यान मत करें। असफलता का प्रायिक कारण यही होता है कि एक समय में एक से अधिक विषयों का विचार करने का प्रयास किया जाता है।

जब कभी आप नियम का पालन करते हैं तो उसे दृढ़ता से अक्षरश: पालन करें। यह मत कहें, "मैं यथासम्भव करूँगा।" 'यथासम्भव' शब्द मन को सदयता देता है। मन केवल अवसर की प्रतीक्षा करता रहता है और जब कभी प्रथम अवसर प्राप्त होता है, यह शीघ्र ही प्रलोभन के वश में आ जाता है। इसलिए दृढ़ बने रहना चाहिए।

मन की भ्रमणशीलता को रोकें

अधिकांश मनुष्य अपने मन को स्वेच्छाचारी और उद्दण्ड बना देते हैं। यह सदा परिवर्तनशील तथा चंचल है। यह एक वस्तु से दूसरी वस्तु पर कूदता रहता है। यह चपल है। यह अनेक प्रकार के पदार्थ चाहता है। एक ही प्रकार की वस्तुओं से इसे अरुचि हो • जाती है। यह माँ-बाप के दुलार में बिगड़े बालक या कुशिक्षित पशु की भाँति होता है। हममें से बहुत से मनुष्यों के मन वन्य वशुओं की पशुशाला के समान होते हैं, जिनमें प्रत्येक अपने-अपने स्वभाव में बरतता हुआ अपने मनोनीत पथ पर चलता है। बहुसंख्यक मनुष्य मन का निग्रह करना नहीं जानते।

मन की भ्रमणशीलता अनेक प्रकार से प्रकट होती है। मन की इस चंचल वृत्ति को रोकने के लिए आपको सदा सचेत रहना होगा। गृहस्थी का मन सिनेमा, थियेटर, सरकस आदि में भ्रमता है। साधु का मन काशी, वृन्दावन और नासिक में डोलता है। बहुत साधु साधना-काल में एक स्थान पर स्थिर हो कर नहीं रहते। विचार के द्वारा इसे स्थिर तथा शुद्ध करके मन की भ्रमणशीलता को नियन्त्रित करना चाहिए। ध्यानाभ्यास के दिनों में एक स्थान पर कम-से-कम पाँच वर्ष तक जम कर रहने का अभ्यास मन में डाल देना चाहिए। इसी तरह योग के एक मार्ग-कर्म, भक्ति अथवा वेदान्त-का आश्रय तथा एक ही आध्यात्मिक लक्ष्य और गुरु रखने का अभ्यास करना चाहिए। स्थान-स्थान पर भटकने बाला साधक सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता। जब आप एक पुस्तक को पढ़ने के लिए उठायें तो उसे समाप्त करने से पहले दूसरी पुस्तक नहीं लें। जब आप किसी काम में लगें तो उसे पूर्ण सावधानी से करके समाप्त कर दें, उसके बाद ही कोई दूसरा काम आरम्भ करें। एक समय में एक ही काम को भली प्रकार करना अच्छा है। यही योगियों की कार्य करने की रीति है।

बकरी-जैसा मन या वेश्या का-सा हृदय मत रखें। कुछ सेकेण्डों तक बकरी हरी घास के एक टुकड़े में चरती है और फिर तुरन्त ही दूर के दूसरे टुकड़े में कूद जाती है। इसी प्रकार अस्थिर मन एक साधना से दूसरी साधना, एक गुरु से दूसरे गुरु, भक्तियोग से वेदान्त, ऋषिकेश से वृन्दावन कूदता रहता है। साधक के लिए यह बड़ा हानिकारक है। एक ही गुरु, एक ही स्थान, एक प्रकार के योग, एक प्रकार की साधना में लगे रहें। स्थिर और दृढ़ बने रहें। तभी आपको सफलता मिलेगी। अपने मन को स्थिर और दृढ़निश्चयी बनायें।

मन को सधाएँ। उससे कहें- 'रे मन! स्थिर हो जा। एक ही विचार पर जम जा। ब्रह्म ही केवल सत्य है।" यदि मन चंचल हो, डाँवाडोल हो तो एकान्त में जा कर मुँह पर दो-तीन तमाचे लगायें। यह स्थिर हो जायेगा। आत्मदण्ड से मन का विक्षेप बहुत-कुछ रोका जा सकता है। जब कभी मन लक्ष्य से हट कर चलायमान हो, जब यह कुविचारों को प्रश्रय दे तो इसे भय दिखायें-मानो आप इसे चाबुक या बेंत से मारेंगे।

मन आपको पदार्थों द्वारा लुभाता और धोखा देता रहता है। दूरी से दृष्टि में लुभावनापन आ जाता है। जब तक आप भोग-पदार्थ को प्राप्त नहीं कर लेते, वह दूर से बड़ा आनन्ददायी प्रतीत होता है और जब आप उसे प्राप्त कर लेते हैं तो वह परेशानी और दुःख का कारण बन जाता है। इच्छा के साथ दुःख मिला हुआ रहता है। पदार्थ ऐसा धोखा देते हैं कि वह बुद्धिमान् मनुष्यों को भी भ्रम में डाल देते हैं। वही मनुष्य बुद्धिमान् है जो इन पदार्थों की भ्रामक प्रकृति को जाँच सके।

मन आपको सदा ही अनेक दृश्य देखने के लिए लुभाया करता है। आपको अपने लक्ष्य से हटाने के लिए मन सब निरर्थक चालें चला करता है। सदा विवेक से काम लें। मन से कहें-रे मूर्ख मन! क्या तुमने पहले अनेक स्थान और दृश्य नहीं देखे हैं। दृश्य देखने में क्या रखा है? अन्दर ही आत्मा में स्थित हो जा। वह स्वयं आप्तकाम है। वहाँ तुमको सब-कुछ दिखेगा। वह पूर्णकाम और पूर्णरूप है। बाहर क्या देखेगा? क्या वही आकाश, वही पृथ्वी, वही लालसा, वही भोजन, वही श्मशान, वही शौचालय तथा मूत्रालय सर्वत्र नहीं हैं।"

प्रारम्भ में मैं मन को बहुत ढील दिया करता था। यह मुझसे कहता था, "हमें प्रयाग के कुम्भ-स्नान के लिए जाने दो।" मैं कहता था, "मेरे प्यारे मित्र मन, तुम जा सकते हो।" जैसे ही मैं वापस आता, मैं पूछता, "कहो मन, अब तो तुम सन्तुष्ट हो ? तुमने वहाँ क्या आनन्द भोगा?" तब यह छिप जाता और लज्जा से शिर झुका लेता था। धीरे-धीरे इसने पुरानी आदतों को छोड़ दिया और यह मेरा सच्चा मित्र, पथ-प्रदर्शक और गुरु बन गया और परम-पद की प्राप्ति के मार्ग में मुझे अच्छी-अच्छी सलाह देने लगा।

गली के कुत्ते के समान मन को इधर-उधर मत फिरने दें। इसको सदा अपने वश में रखें। तभी आप सुखी रह सकते हैं। यह आपकी आज्ञा पूरी करने के लिए सदा उद्यत रहना चाहिए। यदि मन कहे, 'पूर्व को चलो', तो पश्चिम दिशा में चले जायें। यदि मन कहे, 'दक्षिण को चलो', तो उत्तर की ओर जायें। यदि मन कहता है, 'शीत ऋतु में चाय का एक गरम प्याला पियें', तो एक प्याला ठण्ढा पानी पी लें। मछली के समान मानसिक प्रवाह के विरुद्ध तैरें। आप मन को सुगमता से वश में कर लेंगे।

जो काम मन पसन्द नहीं करता, उसको करने की आज्ञा उसे (मन को) दी जाये तो वह विद्रोह करने लगता है। प्यार से बहला कर यदि समझाया जाये तो यह तुरन्त मान लेता है।

यदि मन को सारे विषय-पदार्थों के सुख-केन्द्रों से शून्य कर दिया जाये तो यह वैराग्य और त्याग को ग्रहण कर लेता है और स्वभावतः आत्मा की ओर चलता है। मन से प्रत्येक बस्तु का परित्याग कर दें और आत्मज्ञान-प्राप्ति के द्वारा मन को नष्ट कर दें। स्वयम्भू ब्रह्म-पद में स्थित हो जायें। निर्भीक शक्ति के द्वारा ही दुःख-रहित मोक्ष की निधि प्राप्त हो सकती है।

स्वभाव को बदलें

मन स्वभावों की गठरी है। ठीक अवसर आने पर बुरे स्वभाव, जो अपनी प्रकृति में छिपे रहते हैं, अवश्य ही मन के ऊपर आ जाते हैं। यदि आप अपने स्वभाव को बदल दें तो आप अपने चरित्र को भी बदल सकते हैं। कर्म से स्वभाव बनता है, स्वभाव से चरित्र बनता है और चरित्र से प्रारब्ध बनता है। स्वभाव सचेतन मन से उत्पन्न होता है; और जब बारम्बार दोहराये जाने से वह अवचेतन मन (अन्तःकरण) में प्रवेश कर जाता है तो मनुष्य की प्रकृति का अंग बन जाता है।

यद्यपि स्वभाव प्रकृति का अंग ही है, यह नये, स्वस्थ, अनुकूल तथा बलवान् स्वभाव से बदला जा सकता है। धैर्यपूर्ण प्रयत्न और लगन के द्वारा आप किसी भी स्वभाव को बदल सकते हैं। दिन में सोना, देर से उठना, ऊँचे स्वर से बात करना इत्यादि स्वभाव नये-नये स्वभाव बना कर बदले जा सकते हैं।

नये अभ्यास से आप अपनी लेखन-शैली को बदल सकते हैं। इस प्रकार नयी विचार-शैली के द्वारा आप अपने प्रारब्ध को भी बदल सकते हैं। कुएँ की ईंटों की मुंडेरी के सहारे रस्सी और डोल से जब पानी खींचते हैं तो ईंट में एक लीक पड़ जाती है और उस लीक के सहारे रस्सी बड़ी सुगमता से जाती है। इसी प्रकार एक ही रीति से बार-बार विचार करने से जो लीक मस्तिष्क में पड़ जाती है, उसके सहारे मन बड़ी सुगमता से जाता है। अभी आप सोचते हैं, 'मैं शरीर हूँ।' इस विचार को बदल कर सोचने लगें, 'मैं ब्रह्म हूँ।' कुछ काल बीतने पर आप ब्रह्म-भावना में स्थित हो जायेंगे।

आध्यात्मिक साधना, विचार, ध्यान, प्राणायाम, जप, शम और दम से साधक को एक नया ही मन मस्तिष्क में नये भावों, नयी स्नायु-धाराओं, नयी वीथियों तथा नयी लीकों सहित मिलता है। मन के विचरण तथा भ्रमण के लिए नयी स्नायु-धारा, नवीन मस्तिष्क कोशाणु आदि होते हैं। वह ऐसे कार्यों का कभी विचार नहीं करेगा जिनका परिणाम आत्म-प्रशंसा तथा आत्म-प्रतिष्ठा हो। वह संसार की भलाई के लिए ही विचार करता है। वह एकात्मता के भाव में सोचता है, अनुभव करता तथा कर्म करता है।

एक ही विचार के दास मत बन जायें। जब कभी आपको नये स्वस्थ विचार मिलें, पुराने विचारों को अवश्य त्याग देना चाहिए। बहुत संख्या में मनुष्य रूढ़ियों के दास हैं। उनमें मन के पुराने स्वभाव और विचारों को बदल देने की शक्ति नहीं होती। जब आप कोई नया और आश्चर्यजनक समाचार सुनते हैं तो आप चौंक पड़ते हैं। जब आप नयी वस्तु देखते हैं तो चौंक पड़ते हैं। यह स्वाभाविक है। नये विचारों के साथ तो विशेष रूप में ऐसा होता है। मन तो अपने पुराने मार्ग पर, पुरानी लीकों पर ही चलता है। मन किसी रमणीय या प्रीतिभाजन विचार के साथ आसक्त रहता है। कभी-कभी वह एक विचार से अनावश्यक ही गोंद के समान चिपक जाता है और उसे छोड़ता ही नहीं। कोई नया विचार ग्रहण करना मन के लिए बहुत कठिन हो जाता है। जब कभी आप मन के किसी पुराने विचार को दूर कर उसको नया स्वस्थ विचार देना चाहते हैं तो मन इसके विरुद्ध झगड़ा करता और प्रबल विद्रोह कर बैठता है। लीक के पास ही नया विचार रख दें तो धीरे-धीरे मन इसे ग्रहण कर लेता है। प्रारम्भ में यह इसको ग्रहण करने में प्रचण्ड विद्रोह करेगा। बाद में बहलाने तथा फुसलाने से यह उसको ग्रहण और आत्मसात् कर लेगा।

मन में स्वभाव और इच्छा, साधकों की पुरानी संसारी आदतें और नयी आध्यात्मिक आदतें, पुराने विषय-संस्कार और नये आध्यात्मिक संस्कार, शुभ वासना और अशुभ वासना, विवेक और पशुबुद्धियुक्त मन तथा इन्द्रियों का आन्तरिक युद्ध नित्य ही चलता रहता है। जब कभी आप बुरी आदत को छोड़ कर नयी आदत बनाने का प्रयत्न करेंगे तो आपकी इच्छा-शक्ति और स्वभाव में आन्तरिक झगड़ा उठ खड़ा होगा। यदि आप काम, क्रोधादि को भगाने का प्रयत्न करते हैं तो वे कहते हैं, "हे जीव! तुमने हमें अस्थि-मांस के इस मकान में दीर्घ काल तक रहने की आज्ञा दी है। अब तुम हमें क्यों निकालना चाहते हो? तुम्हारे उत्तेजना और वासना के समयों में हमने तुम्हारी बड़ी सहायता की है।

हमें यहाँ रहने का पूर्ण अधिकार है, हम डटे रहेंगे, हमें भगा देने के तुम्हारे प्रयत्नों का हम सामना करेंगे, हम तुम्हारे ध्यान में बाधा डालेंगे और बारम्बार प्रकट होंगे।" स्वभाव पुरानी आदत को लाने का यथाशक्य प्रयत्न करेगा। कभी झुकें नहीं। अन्त में इच्छा की विजय निश्चित है। यदि आप एक-दो बार असफल भी हो जायें तो कोई बात नहीं। फिर इच्छा-शक्ति से काम लें। इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि अन्त में शुद्ध और दृढ़ इच्छा-शक्ति ही सफल होगी। जब आपकी तर्क-बुद्धि बढ़ जाये, जब आप स्वाध्याय, सत्संग और ध्यान के द्वारा अधिक ज्ञानवान् और बुद्धिमान् हो जायें तो आपका मन हर समय नये स्वस्थ, बुद्धिसंगत विचारों को ग्रहण करने और पुराने दूषित विचारों को निकाल देने के लिए उद्यत रहना चाहिए। यही मन की ठीक-ठीक उन्नति है।

मन आपका उपकरण मात्र है, इसको भली प्रकार काम में लें

मन तो आपका उपकरण ही है। आपको इससे भली प्रकार काम लेना जानना बाहिए। जब मन में भिन्न-भिन्न भावनाएँ, मुद्रा और भाव उत्पन्न हों तो उनको अलग-अलग कर लें। उनकी प्रकृति का अध्ययन करें, उनका विच्छेदन तथा विश्लेषण करें। उनके साथ अपना तादात्म्य न करें। वास्तविक 'मैं' तो उनसे बिलकुल पृथक् है। यह मूक साक्षी है। अपनी अन्त:प्रेरणाओं, आवेगों और चित्तवृत्तियों पर प्रभुत्व प्राप्त करें और दास की अवस्था से उठ कर आध्यात्मिक राजा बन जायें जो कि उन पर शक्ति और अधिकार सहित शासन कर सके। वास्तव में आप नित्य स्थायी, सर्वव्यापक आत्मा है। अपने को मन के अन्याय से छुड़ा लें। इस मन ने आपको अब तक तंग किया है, आप पर शासन किया है और आपके इच्छानुसार आपका शोषण किया है। सिंह के समान साहस कर उठ बैठें। अपनी सच्ची आत्मा की महिमा का उद्घोष करें और मुक्त हो जायें।

इस शक्तिशाली, सूक्ष्म मन-रूपी यन्त्र के चतुर संचालक बन जायें। अपनी सारी मानसिक शक्तियों को अपने उत्तम लाभ के लिए उपयोग करें। जब आप इसको योग्यता से उपयोग करना जान लेंगे तो मन आपका अच्छा और सहर्ष उत्सुक सेवक बन जायेगा। अवचेतन मन से भी काम लें। सुषुप्ति में अथवा जाग्रतावस्था में इसे काम करने के लिए आज्ञा दें। यह पल-भर में सारे आँकड़े यथास्थान ठीक करके छाँट देगा।

यदि आप मन से काम लेने का रहस्य जान लें तो जिधर को आप चाहें उधर को ही इसे मोड़ सकते हैं। जिन वस्तुओं को आप इस समय पसन्द करते हैं, उनके लिए अरुचि और जिन्हें अत्यन्त नापसन्द करते हैं, उनके लिए रुचि पैदा कर सकते हैं।

मन जिस काम को करना नहीं चाहता, वही काम करें। मन जिस काम को करना चाहता हो, उसे नहीं करें। मन के निग्रह और इच्छा-शक्ति को बढ़ाने की यह एक विधि है।

सकारात्मक अभिवृत्ति रखें

मन में एक प्रकार की अभिवृत्ति रख कर अपने को सकारात्मक बनाने के द्वारा हानिकारक तथा अवांछनीय प्रभावों से बन्द कर लेने की शक्ति प्राप्त करने की चेष्टा करें। ऐसा करने से आप अन्तरात्मा की सारी उच्चतर प्रेरणाओं और बाह्य जगत् के उन्नत प्रभावों और शक्तियों के ग्रहणशील बन जायेंगे। यह आत्म-सुझाव दें, 'मैं अपने को नीचे की सारी वस्तुओं के लिए सकारात्मक बनाता हूँ और ऊपर भी सारी उन्नत शक्तियों के लिए उद्घाटित करता तथा ग्रहणशील बनाता हूँ।' कभी-कभी अभिज्ञतापूर्वक इस प्रकार का मनोभाव धारण करते रहने से ही वह स्वभाव बन जाता है। जीवन के दृष्ट तथा अदृष्ट अंगों से सारे अवनत तथा अवांछनीय प्रभाव बन्द हो जाते हैं और सारे उच्चतर प्रभावों का आह्वान होता है और जितनी मात्रा में इनका आह्वान होता है, उसी अनुपात से ये मन में प्रवेश करते हैं।

मन में शंका होती है। निश्चय भी होता है। ईश्वर के अस्तित्व के विषय में शंका होती है। यह संशय-भावना कहलाती है। एक और शंका होती है कि मैं ब्रह्मसाक्षात्कार कर सकता हूँ या नहीं। तब एक पुकार कहती है: "ईश्वर अथवा ब्रह्म सत्य है, वह हस्तामलक के समान सत्य है। वह प्रज्ञानघन, चिद्धन और आनन्दधन है। मैं उसे प्राप्त कर सकता हूँ।" हमने यह बात भली प्रकार समझ ली और ये विचार खूब पक्के हो गये हैं। कुछ विचार धुँधले और अदृढ़ होते हैं। वे आते हैं और चले जाते हैं। हमें विचारों को विकसित करना होगा और अन्तःकरण में उनके दृढ़ता से जम जाने तक उन्हें स्थापित करना होगा। विचारों को साफ करने से मन का भ्रम और मोह जाता रहेगा।

जब कभी मन में शंका होती हो, 'ईश्वर है या नहीं, मैं आत्म-साक्षात्कार में सफल होऊँगा या नहीं' तो इसको भली प्रकार लगायी हुई भावनाओं से दूर कर देना चाहिए। जैसे 'यह सच है, मैं अवश्य सफल होऊँगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।' मेरे शब्दकोश में ये शब्द नहीं हैं: 'नहीं कर सकता', 'असम्भव है', 'कठिन है।' संसार में सब-कुछ सम्भव है। जब आप दृढ़ निश्चय कर लें तो कोई काम कठिन नहीं है। दृढ़ निश्चय से प्रत्येक कार्य में सफलता अवश्य मिलती है।

सहायक शक्तियों की सामर्थ्य

आसुरी शक्तियों का विरोध करने के लिए आपके अन्दर सहायक शक्तियाँ भी होती हैं। यदि आप एक बार 'ॐ' या 'राम' के दश नाम उच्चारण करें या एक बार पाँच मिनट के लिए ध्यान करने बैठें तो चाहे आप अविद्या या माया के कारण आध्यात्मिकता के विषय में सब-कुछ भूल जायें तो भी इसका संस्कार आपको एक बार फिर बारम्बार मन्त्र का जप करने और कुछ काल तक फिर ध्यान में बैठने के लिए बाधित करेगा। काम-क्रोधादि विरोधी शक्तियाँ आपको गिराने का प्रयत्न करेंगी और आध्यात्मिक शक्तियाँ, सत्त्वगुण और शुभ वासनाओं की शक्तियाँ आपको उन्नत करके ईश्वर तक ले जाने की चेष्टा करेंगी। स्मरण रखें कि दूषित विचार परस्त्रीगमन का श्रीगणेश है। यदि पहले आपके मन में सप्ताह में तीन बार कुविचार आता था और अब महीने में एक बार ही आता है; यदि पहले सप्ताह में एक बार क्रोध आता था और अब महीने में एक बार आता है तो यह उन्नति का चिह्न है। यह बताता है कि आपकी इच्छा-शक्ति बढ़ गयी है। यह आपके बढ़े हुए आत्मबल का द्योतक है। प्रसन्न रहें। आध्यात्मिक उन्नति का दैनिक लेखा रखें।

सर्वदा आशावादी, आत्म-विश्वासी, साहसी और दृढ़निश्चयी तथा अपने लक्ष्य पर लगा हुआ मन पंचतत्त्वों में से अपनी कार्यसिद्धि के लिए उपयोगी और सहायक पदार्थ तथा शक्तियाँ ग्रहण कर लेता है।

मनोनिग्रह की कुछ मार्गदर्शक रूपरेखाएँ

मन की संरचना ही कुछ इस प्रकार की है कि वह सुख और दुःख की चरम सीमाओं पर जा पहुँचता है। साधना के द्वारा इसे समता में लाना चाहिए। यह प्रकृति से ही एकपक्षीय है। मानसिक संयम के द्वारा सर्वांगीण विकास प्राप्त करना चाहिए।

अपने अन्दर प्रबल तथा गम्भीर खोज करें। अपने मन और इन्द्रियों पर विश्वास न करें। वे आपके शत्रु हैं। कंचन और कामिनी आपके कट्टर शत्रु हैं। ये दोनों महान् बुराइयाँ हैं।

मन आसक्ति, तृष्णा, संस्कार और वासनाओं के बल से मनुष्य पर अपना साम्राज्य स्थापित करता है। यह अनेक प्रकार की चाल चलता है। यदि आप एक बार इसके व्यवहार को जान लें तो यह चोर की भाँति छिप जाता है। फिर यह आपको दुःख नहीं देता।

मनोनिग्रह के लिए आपको सात बातें करनी होती : (१) आपको सारी कामनाओं, वासनाओं और तृष्णाओं से रहित होना चाहिए। (२) आपको अपने आवेगों पर नियन्त्रण करना चाहिए, जिससे आपको क्रोध और अधीरता का अनुभव न हो। (३) आपको स्वयं मन का संयम करना चाहिए। आपको अपनी प्रकृति को नियन्त्रित करना चाहिए जिससे विचार सदा शान्त और उद्वेग-रहित हो। (४) मन के द्वारा आपको नाड़ियों का ऐसा संयम करना चाहिए कि वे जितनी हो सकें, उतनी ही कम उत्तेजित हों। (५) आपको अभिमान का त्याग कर देना चाहिए। अभिमान से मन को बल प्राप्त होता है। अभिमान मन का बीज है। जब आप निरभिमानी बन जाते हैं तो आलोचना, कटाक्ष और निन्दा आपको कैसे प्रभावित कर सकते हैं? (६) आपको सारी ममताओं का कठोरता से नाश कर देना चाहिए। (७) आपको सारी आशाओं और पूर्वाग्रहों का त्याग कर देना चाहिए।

निम्नांकित बातें आपको निश्चय ही मन की शान्ति प्राप्त करायेंगी : (१) दुर्जनों की संगति से बचें। (२) अकेले रहें। (३) अपनी माँगों को कम करें। (४) विवाद न करें। इससे विरोध-भाव बढ़ता है। यह शक्ति का कोरा अपव्यय है। (५) अपनी तुलना दूसरों से न करें। (६) जनता की आलोचना पर ध्यान न दें। (७) नाम और यश का विचार छोड़ दें।

महर्षि पतंजलि के मतानुसार मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा के द्वारा चित्तप्रसाद अथवा मन की शान्ति मिलती है।

अपने सात्त्विक मन के द्वारा आपको इस मन से बचना चाहिए जो पदार्थों की ओर दौड़ता है और ऊपर को उन्नति करते हुए मन में बिना किसी अवसाद के उस अविनाशी परम-पद की प्राप्ति के लिए तपस्या का धन इकट्ठा करना चाहिए। जैसे चक्रवर्ती सम्राट् पृथ्वी के सारे राजाओं को अपने वश में कर लेता है ऐसे ही इस विक्षेपयुक्त मन को अविचल मन के द्वारा संयत कर लेना चाहिए। तब यह अपने परम-पद को प्राप्त हो जायेगा।

परिच्छेद - ३१

धारणा

"तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः"

-मन के विक्षेप को हटाने के लिए एक पदार्थ पर धारणा का अभ्यास करना चाहिए।

(पातंजलयोगसूत्र : १-३२)

धारणा शान्ति की कुंजी है

सांसारिक सुखों से उपभोग की इच्छा तीव्र हो जाती है। इसलिए संसारी मनुष्यों का मन बहुत अशान्त रहता है। उन्हें तृप्ति और मानसिक शान्ति नहीं होती। आप मन के लिए चाहे कितना ही सुख-संचय कर लें; पर वह कभी भी तुष्ट नहीं हो सकता है। जो जितना ही सुख भोगता है, उसकी उतनी ही अधिक वासना बढ़ती है। इसलिए मनुष्य अपने ही मन के द्वारा दुःखी तथा बेचैन बने रहते हैं। वे अपने मन से ऊब जाते हैं। इस बेचैनी और कष्ट को दूर करने के लिए ही ऋषियों ने मन को सारे ऐन्द्रिक सुखों से हीन रखने को सर्वोत्तम माना था। जब मन एकाग्र अथवा समाप्त हो जाये तो यह दूसरे सुखों की खोज के लिए मनुष्य को परेशान नहीं कर सकता और सारे दुःख तथा चिन्ताएँ सदा के लिए दूर हो जाते हैं और मनुष्य को सच्ची शान्ति मिल जाती है।

मन में मूर्त रूप देने की शक्ति है जिसे बहिर्मुख-वृत्ति कहते हैं। संसारी मनुष्यों के मन की शक्तियाँ छिन्न-भिन्न रहती हैं और अनेक दिशाओं में मानसिक शक्तियाँ बँट जाती हैं। जिस प्रकार प्रकाश की किरणें बिखरी हुई होती हैं वैसे ही मन की शक्तियाँ बिखरी रहती हैं। ये अनेक पदार्थों की ओर खिंच जाती हैं। जब मन की रश्मियाँ विभिन्न पदार्थों पर बिखरी रहती हैं तो आपको दुःख होता है। जब अभ्यास द्वारा ये इकट्ठी तथा संकेन्द्रित रहती हैं तो मन एकाग्र हो जाता है और आपको अन्दर से आनन्द प्राप्त होता है।

जब छह वर्ष पश्चात् आप अपने प्रिय मित्र से मिलते हैं तो जो आनन्द आपको प्राप्त होता है वह व्यक्ति-विशेष से नहीं आता, अपितु आपके अन्दर से ही आता है। उस समय के लिए मन एकाग्र हो जाता है और अपने ही अन्दर से आपको आनन्द मिलता है।

जब आप कश्मीर में हों और गुलमर्ग, सोममर्ग, चश्माशाही, अनन्तनाग आदि स्थानों में सुन्दर दृश्य देखने में व्यस्त हो रहे हों, उस समय यदि आपके इकलौते पुत्र के असामयिक निधन का दुःखद समाचार तार द्वारा प्राप्त हो तो उसके वज्रपात-समान दुःख से आपका मन अकस्मात् विकल हो जायेगा। फिर वे दृश्य आपको रुचिकर नहीं होंगे। आपके लिए उनका आकर्षण जाता रहेगा। अवधान अनुपस्थित है। उसका स्थान विषाद ने ले लिया है। मन के धारणा और अवधान से ही आपको सैर-सपाटे में आनन्द मिलता है।

धारणा के लिए वैराग्य और अभ्यास, त्याग और तप के द्वारा धैर्य के साथ आपको मन की इन बिखरी हुई रश्मियों को समेटना होगा और फिर साहस और अथक शक्ति के साथ परमात्मा या ब्रह्म की ओर आगे बढ़ना होगा। सतत साधना द्वारा मन को मूर्त रूप देने से रोकना होगा तथा उसे उसके आद्य केन्द्र की ओर अग्रसारित करना होगा।

मन के स्वरूप के दृष्टान्त

मन की तुलना पारे से की जाती है; क्योंकि इसकी रश्मियाँ विभिन्न पदार्थों पर बिखरी रहती हैं। इसकी तुलना बन्दर से की जाती है; क्योंकि यह एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ पर कूदता रहता है। इसकी तुलना गतिमान् वायु से की जाती है; क्योंकि यह चंचल है। वासनामयी अविचारिता के कारण इसकी तुलना अति क्रुद्ध मस्त हाथी से की जाती है। जैसे पक्षी एक टहनी से दूसरी टहनी पर, एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर फुदकता फिरता है, वैसे ही मन एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ पर कूदता रहता है। इसलिए इसे 'बड़ा पक्षी' भी कहते हैं। राजयोग हमें अपने मन को एकाग्र करने और तदुपरान्त प्रकोष्ठों की छानबीन करने की विधि बतलाता है।

धारणा की विभिन्न श्रेणियाँ

क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध-ये पाँच योग-भूमिकाएँ हैं। क्षिप्त-अवस्था में मन की किरणें अनेक पदार्थों पर बिखरी होती हैं। मन अशान्त रहता है और एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ पर कूदता रहता है। मूढ़-अवस्था में मन में अज्ञान और विस्मृति रहती है। विक्षिप्त अवस्था में मन एकाग्र होने का प्रयत्न करता है। कभी एकाग्र हो जाता है और कभी बिखरा रहता है। धारणा का अभ्यास करने से मन एकाग्र होने की चेष्टा करता है। एकाग्र-अवस्था में पहुँचने पर यह एक स्थान पर स्थिर हो जाता है। मन में केवल एक ही विचार रहता है। निरुद्ध-अवस्था में मन बिलकुल वश में हो जाता है। मन के विकारों को बन्द करने के लिए धारणा का अभ्यास किया जाता है।

धारणा-शक्ति

मन से चालाकी के साथ काम लेने से आप इसको अपने वश में ला सकेंगे, इससे इच्छानुकूल काम ले सकेंगे और इसे अपने आज्ञानुसार सारी शक्तियाँ इकट्ठी करने को विवश कर सकेंगे। जिसने मन से चालाकी से काम लेना सीख लिया है, वह सारी प्रकृति को अपने वश में कर सकता है। मानव-मन की शक्ति असीम है। यह जितना अधिक एकाग्र हो जाता है एक विषय पर उतनी ही अधिक शक्ति लग जाती है।

एक वैज्ञानिक मनोनिवेश के कारण बहुत-सी वस्तुओं का आविष्कार करता है। धारणा के द्वारा वह स्थूल मन की परतें खोल कर इसके उन्नत प्रदेशों में प्रवेश कर जाता है और गम्भीरतर ज्ञान प्राप्त करता है। वह अपने मन की सारी शक्तियों को एक ही केन्द्र पर एकत्रित करता है और जिन पदार्थों का विश्लेषण कर रहा होता है उसी पर लगा देता है और इस प्रकार उनके रहस्य को जान लेता है।

धारणा मनुष्य का मुख्य कर्तव्य है

छान्दोग्य उपनिषद् (७-२०-१) के भाष्य में श्री शंकर ने लिखा है कि मनुष्य का धर्म यही है कि वह इन्द्रियों का निग्रह करके मन को एकाग्र करे। मनुष्य को उचित है कि जब तक सारे विचारों का पूर्णतया नाश न हो जाये तब तक लगातार अभ्यास करके मन को एक समय में एक ही सत्य पर स्थित करता रहे। ऐसे अविरत अभ्यास से मन की एकाग्रता होने लगेगी और सारे विचार-समूह नष्ट हो जायेंगे। धारणा और भोग-वासना का विरोध है, आनन्द का हलचल तथा चिन्ता से विरोध है, दीर्घकालीन विचार और असामंजस्य का विरोध है, प्रायोगिक विचार का आलस्य और निष्क्रियता से विरोध है, हर्ष और वैर का विरोध है।

आपको मनुष्य-जन्म इसलिए मिला है कि भिन्न-भिन्न पदार्थों पर बिखरी हुई मन की शक्तियों को समेट कर ईश्वर की ओर लगायें। यह आपका परम आवश्यक कर्तव्य है। अपने कुटुम्ब, सन्तान, धन, पद, मान, नाम तथा यश के मोह के कारण आप इस कर्तव्य को भूल जाते हैं।

मन की पवित्रता के उपरान्त उसे ईश्वर पर एकाग्र कर देने से आपको सच्चा आनन्द और ज्ञान प्राप्त होगा। आपका जन्म ही इसलिए हुआ है। राग और मोह के द्वारा आप बाहरी पदार्थों पर पहुँच जाते हैं।

मन को आत्मा पर एकाग्र करें। सर्वव्यापी, शुद्ध ज्ञान-स्वरूप, स्वयं-ज्योति ब्रह्म में मन को लगायें और वहाँ ही अपने को स्थित कर दें। तब आप ब्रह्मसंस्थ हो जायेंगे।

धारणा कैसे करें

मन की एकाग्रता (धारणा) का अभ्यास करें। इस अभ्यास में आपको मालूम होगा कि आपको स्वभावतः मन में विचार-मूर्तियाँ बनानी पड़ती हैं। आप इसका परिहार नहीं कर सकते हैं। मन को एक पदार्थ पर लगायें और यह जब-जब उस पदार्थ से दूर भागे, इसे बार-बार लौटायें और फिर से लक्ष्य पर लगायें। मन को सैकड़ों विचारों की मूर्तियाँ मत बनाने दें। अन्तर्मुख हो कर विचार करें और सचेत हो कर देखें। अकेले रहें, संगति से बचें और किसी से न मिलें। यह परमावश्यक है। निरर्थक विचारों, निरर्थक चिन्ताओं, निरर्थक भय और पूर्वाभासों में पड़ कर मन की शक्तियों का व्यर्थ अपव्यय न करें। निरन्तर अभ्यास से मन को आधे घण्टे तक एक ही विचार पर स्थिर बनायें। मन को अपने को एक आकार देने दें तथा निरन्तर और अविच्छिन्न अभ्यास द्वारा लगातार घण्टों तक उस आकार को बनाये रखने का प्रयत्न करें।

धारणा क्या है ?

"देशबन्धश्चित्तस्य धारणा" - एक मूर्ति या पदार्थ में मन को स्थिरता के साथ बहुत समय तक लगाये रखना धारणा कहलाती है (योगसूत्र : ३-१)। किसी बाह्य पदार्थ, आन्तरिक चक्र या किसी विचार-विशेष पर मन को एकाग्र करने को धारणा कहते हैं।

आन्तरिक चक्रों पर धारणा

एक राजयोगी त्रिकुटी पर धारणा करता है जो कि जाग्रत अवस्था में मन का स्थान है। इस स्थान पर धारणा करने से आप सुगमता से मन को एकाग्र कर सकते हैं। इस चक्र पर एकाग्र हो कर ध्यान करने से मन बड़ी सुगमता से वश में हो जाता है। आज्ञा चक्र पर धारणा और ध्यान से बड़ी सुगमता से मन पर नियन्त्रण होता है। कुछ लोग त्रिकुटी पर धारणा करके एक ही दिन के अभ्यास से ज्योति देखने लगते हैं। जो विराट् का ध्यान करना चाहता है और संसार की सहायता करना चाहता है, उसे त्रिकुटी पर धारणा करनी चाहिए।

भक्त को हृदय पर धारणा करनी चाहिए, क्योंकि वह भावनाओं और अनुभूतियों का स्थान है। हृदय पर धारणा करने से बड़ा आनन्द मिलता है। जिसे आनन्द-प्राप्ति की इच्छा हो, उसे हृदय पर धारणा करनी चाहिए।

हठयोगी अपना मन सुषुम्ना नाड़ी पर स्थिर करता है और मूलाधार, मणिपूर या आज्ञा चक्र पर ध्यान लगाता है। कोई-कोई योगी नीचे के चक्रों को छोड़ कर आज्ञा चक्र पर ही ध्यान लगाते हैं। उनका यह सिद्धान्त है कि आज्ञा चक्र को वश में कर लेने से और सब चक्र स्वयमेव वश में हो जाते हैं। जब आप किसी चक्र पर धारणा करते हैं तो उस चक्र से मन के साथ सूत्र-जैसा सम्बन्ध हो जाता है। फिर सुषुम्ना के द्वारा योगी एक चक्र से दूसरे चक्र पर चढ़ता जाता

है। यह आरोह शनैः शनैः धैर्य के साथ प्रयत्न करने से होता है। सुषुम्ना-द्वार के साधारण से स्पन्दन से ही बहुत आनन्द मिलता है। आप मस्त हो जायेंगे और संसार को बिलकुल भूल जायेंगे। जब सुषुम्ना-द्वार थोड़ा-सा खुलता है तो कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्ना में प्रवेश करने का प्रयत्न करती है। उस समय बड़ा वैराग्य हो जाता है। मनुष्य अभय हो जाता है। अनेक दृश्य सामने आते हैं। अन्तज्योंति का दर्शन होता है। यह उन्मनी-अवस्था कहलाती है। भिन्न-भिन्न चक्रों को वश में करने तथा उनका परिचालन करने से आपको भिन्न-भिन्न सिद्धियाँ, नाना प्रकार का आनन्द और अनेक प्रकार का ज्ञान मिलेगा। मूलाधार चक्र को वश में कर लेने से पृथ्वी वश में हो जाती है। मणिपूर-चक्र को वश में कर लेने से अनि पर विजय मिलती है; अग्नि आपको नहीं जला सकती। पंचधारणा (पाँच प्रकार की धारणा) सिद्ध करने से आपको पाँचों तत्त्वों को जीत लेने में सहायता मिलेगी। इसको किसी पूर्ण योगी गुरु से सीखना चाहिए।

एक चेतावनी

यदि शिर में दर्द मालूम हो तो शरीर से बाहर धारणा का लक्ष्य बदल दें। यदि त्रिकुटी पर धारणा करने से दृष्टि जमाने से पीड़ा होने लगे तो इसे तुरन्त छोड़ कर हृदय में धारणा करने लगें। यदि आपको हृदय, त्रिकूट या मूर्धा में धारणा करने में शिरः पीड़ा प्रतीत हो तो आप किसी बाह्य वस्तु पर मन को लगा सकते हैं।

बाह्य पदार्थ पर धारणा

बाहरी पदार्थों पर मन को एकाग्र करना सुगम है; क्योंकि मन की स्वाभाविक वृत्ति बाहर की ओर रहती है। आप नीलाकाश, सूर्य की ज्योति, सर्वव्यापक वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, तारागणों में से किसी पर धारणा कर सकते हैं।

धारणा का प्रशिक्षण

प्रारम्भ में मन को एकाग्र बनाने के लिए भिन्न-भिन्न उपायों से प्रशिक्षित करें। कान बन्द कर हृदय के अनाहत-शब्द पर धारणा करें। सोऽहम् का उच्चारण करके श्वास पर धारणा करें। किसी स्थूल मूर्ति पर धारणा करें। नीलाकाश पर धारणा करें। सर्वव्यापी सूर्य के प्रकाश पर धारणा करें। शरीर के भिन्न-भिन्न चक्रों पर धारणा करें। सत्यम्, ज्ञानम्, अनन्तम्, एकम्, नित्यम् आदि भावों पर धारणा करें। अन्तः में एक ही वस्तु को दृढ़ता से पकड़ लें।

धारणा में सहायक

श्रद्धा

चाहे कोई विषय तर्क और मान्य प्रमाणों द्वारा सिद्ध हो जाये, फिर भी मनुष्यों के मन स्थूल बाह्य पदार्थों से भरे रहते हैं, इसलिए बिना पूर्ण श्रद्धा के सूक्ष्म सत्य-सिद्धान्तों को ठीक-ठीक समझ लेना सम्भव नहीं है। जब श्रद्धा होती है तो मन को ज्ञातव्य विषय में आसानी से केन्द्रित किया जा सकता है और तब जल्दी ही समझ में आ जाता है।

प्राणायाम

प्राणायाम, जप, विचार और भक्ति के द्वारा रजोगुण को, जो मन के सतोगुण को ढके हुए है, दूर कर दें। फिर मन धारणा के योग्य हो जायेगा। प्राणायाम सत्त्वगुण को ढकने वाले रजस् और तमस् के आवरण को दूर करता, नाड़ियों को शुद्ध करता तथा मन को दृढ़ और स्थिर करके धारणा के योग्य बना देता है। जैसे स्वर्ण की मैल उसे पिघलाने से निकल जाती है इसी प्रकार प्राणायाम द्वारा मन की मैल दूर हो जाती है। हठयोगी प्राणायाम के द्वारा प्राण-निरोध करके मन को एकाग्र करने का प्रयत्न करता है।

राजयोगी चित्त-वृत्ति-निरोध के द्वारा अर्थात् मन को अनेक पदार्थ-मूर्तियाँ न बनाने दे कर मन एकाग्र करने का प्रयत्न करता है। वह प्राणायाम की चिन्ता नहीं करता। परन्तु जब मन का निरोध हो जाता है तो स्वतः ही प्राण-निरोध अवश्यम्भावी होता है। हठयोग राजयोग की ही एक शाखा है।

अवधान

धारणा में अवधान बड़ा काम करता है। यह इच्छा की मूल भित्ति है। जब अन्तर्मुख होने के लिए इसको ठीक-ठीक चलाया जाये और निर्दिष्ट किया जाये तो यह मन का विश्लेषण कर देगी और बड़ी-बड़ी अद्भुत बातों को आपके लिए प्रकाशित कर देगी।

जितने जोर से कोई वस्तु मन से टकराती है, वह उस पदार्थ पर दिये हुए, अवधान की मात्रा के अनुकूल ही होता है। स्मृति की महती कला भी अवधान में सन्निहित है और अनवधानी मनुष्यों की स्मरण शक्ति क्षीण होती है। वृद्धावस्था में यह शक्ति क्षीण हो जाती है।

चेतना को केन्द्रित करना अवधान कहलाता है। यह सुसंस्कृत इच्छा-शक्ति का एक चिह्न है। यह दृढ़ मन के मनुष्यों में पायी जाती है और बड़ी अमूल्य शक्ति है। ब्रह्मचर्य इस शक्ति को अद्भुत रूप से बढ़ाता है। जिस योगी में यह शक्ति होती है, वह अप्रिय पदार्थ पर भी सुदीर्घ काल तक धारणा कर सकता है। निरन्तर अभ्यास द्वारा अवधान की वृद्धि की जा सकती है। संसार के सारे महान् पुरुष, जिन्होंने महत्त्व प्राप्त किया है, इसी शक्ति के कारण उन्नत बन सके हैं।

अवधान की शक्ति के द्वारा मन अपनी सारी क्रियाएँ करता है। अवधान ही इच्छा-शक्ति का मूलाधार है। इसलिए अवधान के बल को बढ़ायें।

अवधान दो प्रकार का होता है-आत्मपरक अर्थात् आन्तरिक विचार-सम्बन्धी और वस्तुपरक अर्थात् बाह्य पदार्थ-सम्बन्धी। आप जो कुछ भी काम कर रहे हैं उस समय उसी में अपना सारा अवधान लगा दें। जिस पदार्थ को मन चाहता है उस पर धारणा करना तो सुगम है। अप्रिय होने के कारण जिन कार्यों से आप पहले से बचते रहे हों उन पर अवधान का अभ्यास करें। अरुचिकर पदार्थों और विचारों में रुचि पैदा करें। उनको मन के सम्मुख रखें। धीरे-धीरे रुचि प्रकट होगी, अनेक मानसिक दुर्बलताएँ दूर हो जायेंगी तथा मन अधिक बलवान् हो जायेगा।

एकाग्र मन से धारणा का एक दृष्टान्त

एक कारीगर तीर बनाया करता था। एक समय वह अपने काम में बहुत ही व्यस्त था। उसकी दुकान के सामने से राजा की सवारी बड़ी भीड़-भाड़ के साथ निकल गयी; परन्तु वह काम में इतना तल्लीन था कि उसने उसे देखा तक नहीं। जब आप अपना मन परमात्मा में लगायें तो आपकी धारणा भी इसी प्रकार की होनी चाहिए। आपको केवल ईश्वर

का ही एक विचार होना चाहिए। एकाग्र मन से धारणा प्राप्त करने के लिए आपको बड़ा भारी प्रयत्न करना पड़ेगा। दत्तात्रेय ने उस तीर बनाने वाले को अपना गुरु माना था।

सामान्य भूल

डाक्टरी के कुछ विद्यार्थी चिकित्सा-महाविद्यालय में प्रवेश लेने के तुरन्त बाद ही उसे छोड़ देते हैं; क्योंकि उन्हें फोड़ों में से पीप धोना और मृतक शरीरों को चीरना घृणित प्रतीत होता है। यह उनकी भारी भूल है। प्रारम्भ में घृणा होती है; परन्तु रोग-विज्ञान-चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, रुग्ण-शरीर-रचना-विज्ञान, जीवाणु-विज्ञान का अध्ययन करने के उपरान्त अन्तिम वर्ष में पाठ्य-विषय बड़ा रुचिकर हो जाता है। बहुत से आध्यात्मिक साधक कुछ समय के पश्चात् धारणा का अभ्यास छोड़ देते हैं; क्योंकि यह अभ्यास उनको कठिन जान पड़ता है। चिकित्सा शास्त्र के विद्यार्थियों के समान ये भी भारी भूल करते हैं। अभ्यास के प्रारम्भ में जब आप देहाध्यास से ऊपर जाने की चेष्टा करते हैं तब यह अभ्यास अरुचिकर और क्लेशदायक जान पड़ता है। यह शारीरिक मल्लयुद्ध के समान होता है। भावनाएँ और संकल्प बहुत होते हैं। अभ्यास के तृतीय वर्ष में मन शान्त, शुद्ध तथा दृढ़ हो जायेगा। आपको अन्तिम आनन्द मिलेगा। ध्यान के अभ्यास द्वारा प्राप्त हुए आनन्द के सामने सारे संसार के आनन्द का समूह भी तुच्छ है। किसी अवस्था में भी अभ्यास न छोड़ें। प्रयत्न करते रहें और धृति, उत्साह और साहस रखें। अन्त में आप अपने प्रयत्न में सफल होंगे। कभी निराश न हों, गम्भीर अन्तर्निरीक्षण द्वारा उन बाधाओं को खोज निकालें जिनसे धारणा में विघ्न होता है और धैर्य-सहित प्रयत्न करके उनको एक-एक करके दूर कर दें। नये संकल्पों और वासनाओं को उठने न दें। विवेक, विचार और ध्यान के द्वारा उनको उठते ही कुचल डालें।

जब आप सदा प्रफुल्ल रहें और आपका मन साम्यावस्था में एकाग्र रहे, तो समझ लीजिए कि आप योग में आगे बढ़ रहे हैं और सत्त्व की वृद्धि हो रही है।

परिच्छेद-३२

ध्यान

भगवान् श्री शंकराचार्य जी ने कहा है: ***"अचिन्तैव परं ध्यानम्"*** *-किसी भी वस्तु का विचार न करना ही परम ध्यान है।* ***"ध्यानं निर्विषयं मनः"****-जब मन निर्विषय हो जाता है अर्थात् इन्द्रियों के विषय और भोगों की चिन्ता से मुक्त हो जाता है तब ध्यान लग जाता है। (पातंजलयोगसूत्र)*

ध्यान क्या है?

वेदान्त या ज्ञान-मार्ग में 'मनन' और 'निदिध्यासन' शब्दों का बाहुल्य से प्रयोग होता है। विजातीय-वृत्ति (सांसारिक विषयों के सभी विचारों) का तिरस्कार करके स्वजातीय-वृत्ति (ब्रह्म-विचार) का प्रवाह ले आना मनन कहलाता है। आत्मा के बार-बार स्मरण को निदिध्यासन कहते हैं। यह तीव्र और गम्भीर चिन्तन है। यह अनात्म-वृत्ति-विवादन-रहित आत्माकार-वृत्ति-स्थिति होती है। मन ब्रह्म में पूर्णतया स्थित हो जाता है। अब कोई भी संसारी विचार अनधिकार-रूप से प्रवेश नहीं करेगा। ध्यान तैलधारावत् चलता रहेगा।

भगवत्साक्षात्कार के लिए ध्यान की अपरिहार्यता

दीर्घ काल तक श्रम करने के बाद मन थक जाता है, इसलिए यह आत्मा नहीं हो सकता। आत्मा अनन्त शक्तियों का भण्डार है। मन तो केवल आत्मा का ही करण मात्र है। उसको भली-भाँति अनुशासित बना लेना चाहिए। जैसे विविध शारीरिक व्यायामों के द्वारा इस स्थूल शरीर को विकसित करते हैं उसी प्रकार मानसिक प्रशिक्षण, मानसिक संवर्धन अथवा मानसिक व्यायाम के द्वारा मन को प्रशिक्षित करना होता है। ध्यान और धारणा के अभ्यास में आपको मन को नाना प्रकार के उपायों से प्रशिक्षित करना होगा। तभी यह स्थूल मन सूक्ष्म बन सकेगा।

लोहे की एक शलाका जलती हुई भट्ठी में रखें। यह आग के समान लाल हो जायेगी। हटा लेंगे तो इसका लाल रंग जाता रहेगा। यदि आप इसे सदा लाल रखना चाहते हैं तो इसे हमेशा अग्नि में रखे रहें। इसी प्रकार यदि आप मन को ब्रह्म-ज्ञान से परिपूर्ण रखना चाहते हैं तो इसे निरन्तर और तीव्र ध्यान के द्वारा ब्रह्म-ज्ञान की अग्नि में रखना होगा। ब्रह्म-चेतना का अविरल प्रवाह सदा बहता रहने दें। तब आपको सहजावस्था प्राप्त होगी।

सदाचारी जीवन यापन करना ही ईश्वर-प्राप्ति के लिए पर्याप्त नहीं है। मन को एकाग्र करना भी अत्यन्त आवश्यक है। साधुवृत्त, सदाचारी जीवन तो केवल मन को धारणा और ध्यान के उपयुक्त साधन बनाता है। धारणा और ध्यान अन्त में आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कराते हैं।

परमात्मा इसी संसार में अन्तर्भूत है; आपके हृदय-कमल में विराजमान है। वह अन्यत्रवासी भूमिपति है। आपको उसे शुद्ध मन से धारणा और ध्यान के द्वारा ढूँढ़ना चाहिए। यह 'आँखमिचौनी' का सच्चा खेल है।

सारे दृश्य पदार्थ माया हैं। आत्मा के ध्यान या ज्ञान के द्वारा माया का तिरोधान हो जायेगा। माया से मुक्त होने के लिए मनुष्य को परिश्रम करना चाहिए। माया मन के द्वारा बड़ा अनिष्ट करती है। मन का नाश करने से माया का नाश होता है। माया को जीतने के लिए केवल निदिध्यासन ही एक उपाय है। भगवान् बुद्ध, राजा भर्तृहरि, दत्तात्रेय, गुजरात के अखौ इन सबने गम्भीर ध्यान के द्वारा ही मन और माया को जीत लिया था। शान्ति में प्रवेश करें। ध्यान करें। आत्म-साक्षात्कार के लिए एकान्तवास और तीव्र ध्यान ये दोनों परम आवश्यक हैं।

मन को शून्य बना लें। दुःख के कठोर आघात लगने का मन माध्यम है। विचारों को दबाना कठिन होता है और यदि एक बार विचार को दबा भी दिया जाये तो विचारों की दूसरी धारा आरम्भ हो जाती है जो मन को दबा लेती है। मन को किसी शान्त दृढ़ पदार्थ पर लगायें। आप मन को रोकने में सफल हो जायेंगे। जैसे ग्रीष्म ऋतु में मनुष्य सरोवर में बैठ कर अपना शरीर शीतल करता है वैसे ही अपने सारे विचारों को आत्मा में एकत्र कर लें। भगवान् हरि का बारम्बार ध्यान करें जो श्याम-वर्ण हैं, अमूल्य हार गले में धारण करते हैं और जिनकी भुजाओं, कानों और शिर पर अलंकार लगे हुए हैं।

ध्यान की पूर्वापेक्षाएँ

ध्यान के लिए आपको सम्यक् प्रशिक्षित उपकरण (मन) की आवश्यकता है। मन शान्त, स्वच्छ, शुद्ध, सूक्ष्म, तीव्र, स्थिर और एकाग्र होना चाहिए। ब्रह्म शुद्ध और सूक्ष्म है, इसलिए उसे प्राप्त करने के लिए शुद्ध और सूक्ष्म मन की आवश्यकता है।

अत्यन्त प्रशिक्षित मन ही, जिसने शरीर का पूर्ण निग्रह कर लिया है, जीवन-पर्यन्त ध्यान और विचार कर सकता है और एक क्षण के लिए भी अपने खोज तथा चिन्तन के लक्ष्य (ब्रह्म) को नहीं भुलाता और इसे ऐहिक प्रलोभनों से प्रच्छन्न नहीं होने देता। यदि आप ध्यान-योग का अभ्यास करना चाहते हैं, यदि आप मन की धारणाओं के द्वारा ईश्वर-प्राप्ति करना चाहते हैं तो आपको पाँच-छह वर्ष तक सारी भौतिक क्रियाओं को एकदम छोड़ देना होगा, सारी

आसक्तियों को निर्मम हो कर पूर्णतः तोड़ देना होगा। समाचार-पत्र पढ़ना और मित्रों तथा सम्बन्धियों से पत्र-व्यवहार बिलकुल त्यागना होगा; क्योंकि इनसे मन का विक्षेप होता है और सांसारिक भाव दृढ़ हो जाते हैं। पाँच-छह वर्ष का एकान्तवास अनिवार्य है।

ध्यान के लिए प्रत्येक वस्तु को सात्त्विक बनाना चाहिए। ध्यान का स्थान, भोजन, वस्त्र, संगति, बातचीत, सुनने के शब्द, विचार, प्रत्येक वस्तु सात्त्विक होनी चाहिए। तभी नवीन साधकों को साधना में अच्छी उन्नति प्राप्त हो सकती है।

आध्यात्मिक स्पन्दनों से पूर्ण एकान्त स्थान, शीतल, सात्त्विक और शीतोष्ण जलवायु वाले स्थान-जैसे उत्तरकाशी, ऋषिकेश, लक्ष्मणझूला, कनखल, बदरीनारायण-मन की एकाग्रता तथा ध्यान के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं; क्योंकि ध्यान-काल में मस्तिष्क गरम हो जाता है। गंगा जी या नर्मदा का तट, हिमालय का दृश्य, सुन्दर पुष्प-वाटिका, पवित्र देवस्थान-ये स्थल धारणा और ध्यान में मन को उन्नत करते हैं। इन स्थानों में जायें।

इसमें सन्देह नहीं कि सदा आदर्श अवस्था नहीं मिल सकती; यह जगत् सापेक्ष है। सब स्थानों में गुण और अवगुण साथ-साथ मिले हुए हैं। आपको ऐसी जगह पसन्द करनी चाहिए जिसमें अधिक-से-अधिक गुण और कम-से-कम अवगुण हों। जो-कुछ अच्छे-से-अच्छा कर सकते हों, वह आपको करना चाहिए। आपको थोड़ी कठिनाइयों को भी सहन करना चाहिए और उन पर प्रभुत्व प्राप्त करना चाहिए। अपने-आप अकेले रहें। बाधक कारणों से अपने-आपको अलग हटा लें।

अच्छा, सात्त्विक, पर्याप्त हलका और पुष्टिकारक भोजन होना चाहिए। जब मन सत्त्वगुण से परिपूर्ण हो तभी ध्यान हो सकता है। पेट दूँस कर न भरा हो। आहार और मन में बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। भारी भोजन हानिकर है। दिन में ११ बजे भोजन करें और आधा सेर दूध पिये। ध्यान का अभ्यास करने वालों को रात को हलका भोजन करना चाहिए।

साधना करने की शक्ति होनी चाहिए। तभी ध्यान स्थिरता तथा आनन्द से हो सकेगा। आसन शरीर को स्थिर करता है। बन्ध और मुद्राएँ देह को दृढ़ करती हैं। प्राणायाम शरीर को हलका करता है। नाड़ी-शुद्धि से मन की साम्यावस्था होती है। इन गुणों को प्राप्त करके आपको मन को ब्रह्म में लगाना होगा।

जब सुषुम्ना नाड़ी कार्य करती हो अर्थात् श्वास दोनों नासारन्ध्रों में बहता हो, तब ध्यान सुगमता और आनन्द से चलता है। सुषुम्ना के क्रियाशील होने से सत्वगुण की वृद्धि होती है। जिस समय सुषुम्ना चलने लगे तभी ध्यान के लिए बैठ जायें।

जब मन सारी चिन्ताओं से दूर होता है तभी आप ध्यान कर सकते हैं। एक शान्त कमरे में चले जायें जहाँ आपको किसी बाधा का भय नहीं हो जिससे कि आपका मन सुरक्षित और विश्रान्त रहे। किसी सुखासन पर बैठ जायें और जहाँ तक हो सके, बाहरी क्षुब्ध करने वाले प्रभावों से रहित हो जायें। नकारात्मक विचारों को भगा दें। सदा आस्थापूर्ण बने रहें। आस्था सदा अनास्था पर विजय पाती है। जब आप आस्थापूर्ण हों तो ध्यान बड़े सुचारु रूप से चलता है।

वशीकार, वैराग्य, ज्वलन्त मुमुक्षुत्व और दृढ़ विवेक होना चाहिए। साधना में मार्ग दिखाने के लिए अनुभवी गुरु होना चाहिए।

आपको प्रथम शुद्ध बुद्धि द्वारा ब्रह्म-तत्त्व की बौद्धिक समझ, बौद्धिक सम्प्रत्यय तथा व्यापक ज्ञान होना चाहिए।

बहुत से साधकों को ऊपर बतायी हुई अनुकूल परिस्थितियाँ नहीं प्राप्त होती हैं। यही कारण है कि वे कुछ उन्नति प्राप्त नहीं कर पाते।

ध्यान के सगुण तथा निर्गुण रूप

जब आँख खोल कर भगवान् कृष्ण की मूर्ति देखते हैं और ध्यान करते हैं तो यह साकार ध्यान कहलाता है। जब आँख मींच कर भगवान् कृष्ण की मूर्ति का ध्यान करते हैं तो भी यह साकार ध्यान ही है; परन्तु पहले से अधिक निर्गुण है। जब आप अनन्त प्रकाश का ध्यान करते हैं तो यह और भी निर्गुण ध्यान है। पहले दो प्रकार के ध्यान सगुण ध्यान कहलाते हैं और पिछले प्रकार का निर्गुण ध्यान है।

निर्गुण ध्यान में आरम्भ में भी मन को स्थिर करने के लिए एक रूप अवश्य होता है। कुछ समय पीछे यह आकार हट जाता है और ध्यान तथा ध्येय एक हो जाते हैं। ध्यान भी केवल मन से ही होता है। किसी पदार्थ के दर्शन या ब्रह्म को समझने के लिए मन की सहायता सर्वथा अभीष्ट है। जब आप कोई पुस्तक पूरे मनोनिवेशपूर्वक पढ़ते हैं तो मन उसके विचारों पर दृढ़ हो करें स्थिर हो जाता है। इसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म के ध्यान में भी मन एक ही विचार अर्थात् आत्मा पर स्थिर हो जाता है।

सगुण ध्यानाभ्यास

प्रारम्भिक साधकों के लिए ध्यान की एक विधि यह है। एकान्त कमरे में पयासन पर बैठ जायें। आँखें बन्द कर लें। सूर्य के प्रकाश, चन्द्रमा की ज्योत्सना, तारागणों की महिमा, आकाश के सौन्दर्य का ध्यान करें।

दूसरी विधि यह है। हिमालय का ध्यान करें। कल्पना करें कि उत्तरकाशी के निकट गंगोत्तरी के बरफीले प्रदेश से गंगा नदी निकलती है; ऋषिकेश, हरिद्वार, वाराणसी के पास से बहती हुई बंगाल की खाड़ी में, गंगासागर में जा गिरती है। हिमालय, गंगा और समुद्र-ये ही तीन विचार आपके मन में रहने चाहिए। पहले बरफीली गंगोत्तरी पर मन को ले जायें, फिर गंगा के साथ-साथ लायें और अन्त में समुद्र में ले जायें। फिर दोबारा बरफीली गंगोत्तरी तक ले जायें। इसी प्रकार १५ मिनट तक मन को घुमाते रहें।

कल्पना करें कि सुन्दर फूलों का एक अच्छा बगीचा है। एक ओर चमेली के फूल लगे हैं, दूसरी ओर सुन्दर बड़े-बड़े गुलाब लगे हैं। तीसरे कोने में जूही के पेड़ लगे हैं। चौथे कोने में चम्पक के फूल लगे हैं। अब इन चारों प्रकार के फूलों का ध्यान करें। पहले चमेली, फिर गुलाब, फिर जूही और फिर चम्पक पर मन को ले जायें। बार-बार मन को इसी प्रकार घुमाते रहें। १५ मिनट तक ऐसा करें। इस प्रकार स्थूल ध्यान मन को सूक्ष्म विचारों पर स्थिरता से ध्यान करने योग्य बना देता है।

समुद्र की विशालता और उसकी अनन्तता का ध्यान करें। समुद्र की तुलना अनन्त ब्रह्म से तथा तरंगों, फेन और बरफ के टुकड़ों की अनेक नाम और रूपों से करें। समुद्र से अपना सारूप्य बनायें। शान्त हो जायें और विस्तार करके विशाल बनें।

निर्गुण ध्यानाभ्यास

इन सब नाम-रूपों के पीछे एक जीवन्त विश्व-व्यापिनी शक्ति है। इस निराकार शक्ति का ध्यान करें। यह आदिम निराकार ध्यान बनायेगी और अन्त में अनन्त निर्गुण निराकार चेतना की प्राप्ति करायेगी।

"संसार नहीं है। शरीर और मन भी नहीं है। केवल एक ही चैतन्य है और वह चैतन्य मैं हूँ।" यह निर्गुण ध्यान कहलाता है।

पद्मासन पर बैठें। आँखें खोलें। निराकार वायु को स्थिरता से देखें। निर्गुण ध्यान का यह भी एक दूसरा रूप है। वायु पर धारणा करें। यह नाम-रूप-रहित ब्रह्म की प्राप्ति करा देगा।

कल्पना करें कि सारे विश्व के पीछे छिपी हुई एक परम, अनन्त, अखण्ड ज्योति है जो करोड़ों सूर्यों के तेज के समान है। उसका ध्यान करें। निर्गुण ध्यान का यह भी एक रूप है।

विस्तृत आकाश पर धारणा तथा ध्यान करें। यह भी निर्गुण निराकार ध्यान का एक रूप है। पूर्वोक्त धारणा के उपायों से मन परिच्छिन्न रूपों का चिन्तन छोड़ देगा। इसके अन्तर्विषय अर्थात् अनेक प्रकार के रूप क्षीण होने के कारण यह शनैः-शनैः शान्ति के समुद्र में विलीन होने लगेगा। यह अधिकाधिक सूक्ष्म भी होता जायेगा।

ॐ का ध्यान

ॐ का चित्र अपने सामने रखें और इस पर मन को एकाग्र करें। नेत्र खोल कर त्राटक भी करें (बिना पलक झपके तब तक देखते रहें जब तक कि आँसू जोर से न बहने लगें)। यह सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार का ध्यान है। अपने ध्यान के कमरे में ॐ का चित्र रखें। ब्रह्म के इस प्रतीक की आप पूजा भी कर सकते हैं। धूप-सुगन्धि जलायें। फल चढ़ायें। आजकल के शिक्षित जनों के लिए यह बहुत उपयुक्त है।

मन का ध्यान

व्यक्त रूप ब्रह्म ही मन है। क्रियाशील परमात्मा मन है; क्योंकि ब्रह्म को मन के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता, इसलिए ब्रह्म के समान मन का ही ध्यान लगाना उचित है। **"मनो ब्रह्मेत्युपासीतेत्यध्यात्मम्" -** 'मन ब्रह्म है', इस प्रकार उपासना करें। यह अध्यात्म-दृष्टि है (छान्दोग्य उपनिषद् ३-१८-१)। यह उपासना-वाक्य है।

ध्यान का कमरा

ध्यान के कमरे को परमात्मा का मन्दिर मानना चाहिए। उस कमरे में गन्दी बातें नहीं करनी चाहिए। द्वेष, लोभ आदि के दुष्ट विचार नहीं आने चाहिए। सदा पवित्र और श्रद्धापूर्ण मन-सहित उसमें प्रवेश करना चाहिए; क्योंकि जो कुछ हम करते हैं और जो-कुछ हम सोचते हैं, वे सब अपना अंक उस कमरे के आकाश में छोड़ देते हैं और यदि उनसे बचने के लिए सचेष्ट नहीं रहा जाये, तो वे साधक के मन पर अपना प्रभाव डाल कर उसको उलट कर चंचल कर देंगे और वह उपासना करने के अयोग्य हो जायेगा। बोले हुए शब्द, किये हुए कर्म और मन के विचार खो नहीं जाते; जहाँ वे किये जाते हैं, उस कमरे के आकाश के सूक्ष्म स्तरों में उनका प्रतिबिम्ब रहता है और वे सर्वथा मन पर अपना प्रभाव डालते हैं। उन पर अधिकार प्राप्त करने की यथासम्भव चेष्टा करनी चाहिए। ऐसा कुछ ही महीनों तक करना होगा। स्वभाव बदल जाने पर सब-कुछ स्वतः ही ठीक हो जायेगा।

ध्यान की विधि

एकान्त स्थान में पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन में बैठें। अपने को सारे मनोविकारों, भावनाओं और वृत्तियों से रहित कर लें। इन्द्रियों को अपने अधीन करें। मन को पदार्थों से खींच लें। अब मन शान्त, एकाग्र, शुद्ध और सूक्ष्म हो जायेगा। इस प्रशिक्षित उपकरण, प्रशिक्षित मन की सहायता से उस अद्वय अनन्त आत्मा का ध्यान करें। अन्य किसी वस्तु का विचार न करें। किसी संसारी विचार को मन में न घुसने दें। मन को किसी भी शारीरिक या मानसिक भोग का विचार न करने दें। जब यह ऐसे विचारों में मग्न हो तो इसे खूब ठोकें। तब यह परमात्मा की ओर जाने लगेगा। जिस प्रकार गंगा जी निरन्तर सागर की ओर प्रवाहित होती हैं, इसी प्रकार परमात्मा के विचार ईश्वर की ओर निरन्तर जाने चाहिए। जैसे एक पात्र से दूसरे पात्र में डालते समय तेल की धारा अटूट तथा अनवरत रहती है, जिस प्रकार घण्टों के बजने की एकरसमय ध्वनि निरन्तर कानों में आती रहती है, इसी प्रकार मन भी एक निरन्तर प्रवाह से परमात्मा की ओर जाना चाहिए। निरन्तर साधना के द्वारा सात्त्विक मन से दैवी-वृत्ति-प्रवाह या स्वजातीय-वृत्ति-प्रवाह ईश्वर की ओर चलता रहना चाहिए।

ध्यान प्रारम्भ करने के पूर्व ईश्वर या ब्रह्म का मानसिक रूप (साकार या निराकार) अवश्य बना लें। जब आप ध्यान का अभ्यास नया-नया प्रारम्भ करें तो आसन पर बैठते ही कुछ उन्नत बनाने वाले श्लोक या स्तोत्र दश मिनट तक उच्चारण करें। इससे मन उन्नत हो जायेगा। इससे मन को सांसारिक पदार्थों से सुगमता से हटाया जा सकता है। फिर इस प्रकार का विचार भी बन्द कर दें, फिर बारम्बार दृढ़ प्रयत्न द्वारा मन को एक ही विचार पर लगा दें। तब निष्ठा बन जायेगी।

निदिध्यासन में आपको स्वजातीय-वृत्ति-प्रवाह को बढ़ाना होगा। ब्रह्म के विचारों को बड़े भारी जल-प्रवाह के समान बहने दें। विजातीय वृत्तियों का तिरस्कार कर दें। विषय-पदार्थों के विचार छोड़ दें। विवेक और विचार के चाबुक से उन्हें भगा दें। प्रारम्भ में तो कठिन संघर्ष करना होता है। यह बड़ा ही क्लान्तिकर होता है; परन्तु बाद में आप जैसे-जैसे शक्तिवान् और पवित्र होते जायेंगे और ब्रह्म-चिन्तन में आगे बढ़ते जायेंगे, साधना सुगम होती जायेगी। एकत्व के जीवन में आपको आनन्द मिलेगा। आत्मा से आपको बल प्राप्त होगा। जब सारी विषय-वृत्तियाँ दुर्बल कर दी जाती हैं और मन एकाग्र हो जाता है, तब आन्तरिक शक्ति बढ़ती है।

जब आप अग्नि जलाते हैं तो पहले आप घास, फूस, कागज, लकड़ी के पतले टुकड़ों का ढेर करते हैं। अग्नि शीघ्र बुझ जाती है। फिर आप इसको बार-बार मुख से या फूंकनी से फूंक मार कर सुलगाते हैं। थोड़े समय में यह प्रचण्ड अधि बन जाती है। अब आप प्रयत्न करके भी इसे कठिनाई से बुझा सकते हैं। इसी प्रकार प्रारम्भ में नवीन साधक ध्यान से अपने पुराने ही रास्तों में गिर जाते हैं। उनको अपना मन बार-बार उन्नत करके लक्ष्य पर लगाना होगा। जब ध्यान गम्भीर और स्थिर हो जाता है तो वे ईश्वर में स्थिति प्राप्त कर लेते हैं। तब ध्यान सहज हो जाता है और स्वाभाविक बन जाता है। तीव्र वैराग्य तथा उग्र ध्यान की फूंकनी से काम लें और ध्यान की अग्नि को सुलगायें।

देखें कि ध्यान में आप कितनी देर तक संसारी विचारों को रोक सकते हैं। मन को बड़ी सतर्कता से देखें। यदि बीस मिनट तक रोक सकते हैं तो इस समय को तीस या चालीस मिनट तक बढ़ाने की चेष्टा करें। बारम्बार मन में ईश्वरीय विचार भरें।

एक ब्रह्मभाव को धीरे-धीरे निरन्तर बनाये रखें। निरन्तर परमात्मा का विचार करें। मन सदा परमात्मा की ओर जाना चाहिए। मन को भगवान् शिव या हरि के चरण-कमलों से कोमल कौशेय रज्जु द्वारा बाँध लें। विजातीय सांसारिक विचारों को धीरे-धीरे बाहर निकाल दें। बारम्बार **'अहं ब्रह्मास्मि'** या **'ॐ'** का मानसिक जप करते हुए ब्रह्माकार-वृत्ति बनाये रखें। इसके साथ-साथ अनन्त असीम का भाव, ज्योति के विशाल सागर का भाव, अखिल ज्ञान और आनन्द का भाव भी बनाये रखें। यदि मन इधर-उधर भागने लगे तो ऊँचे स्वर से साढ़े तीन मात्रा का दीर्घ प्रणव उच्चारण करें। इस प्रकार विक्षेप और अन्य सभी बाधाएँ दूर हो जायेंगी।

जो कमरा छह महीने तक बन्द रहा हो जब आप उसे बुहारने लगते हैं तो उसके कोने-कोने से अनेक प्रकार की धूलि उठती है। इसी प्रकार ध्यान में योग के दबाव से ईश्वर की कृपा से अनेक प्रकार के मल मन के ऊपर तैरने लगते हैं। उनको साहस करके उपयुक्त उपायों से और विरोधी सद्गुणों से धैर्य और प्रबल प्रयत्न द्वारा एक-एक करके निकाल दें। जब आप पुराने बुरे संस्कारों को दबाना चाहते हैं तो वे बदला लेते हैं। भय न करें। कुछ समय पश्चात् उनका बल जाता रहेगा। जैसे आप जंगली हाथी या शेर को सधाते हैं वैसे ही मन को भी साधना होगा। खोटे विचार मन में न रखें। वे मन के लिए आहार का काम देते हैं। मन को अन्तर्मुख कर लें। अच्छे सद्गुणमय उच्च विचार प्रतिस्थापित करें। उन्नत करने वाले लक्ष्य और आकांक्षाओं से मन को पोषण दें। पुराने दुष्ट संस्कार दुर्बल हो जायेंगे और अन्त में नष्ट हो जायेंगे। अब ब्रह्माकार-वृत्ति का उदय होगा। ब्रह्मज्ञान के साथ मिल कर इससे अविद्या का नाश होगा। इसी ब्रह्माकार-वृत्ति का प्रवाह तैलधारावत् चलने दें। इस अवस्था में सारा संसार केवल सच्चिदानन्द ही प्रतीत होगा। यह विचार भी नष्ट हो जायेगा। तब आप सहजानन्द-अवस्था अर्थात् अद्वैत-अवस्था-रूप समाधि में प्रवेश करेंगे।

कुछ लाभदायक संकेत

ध्यान के अभ्यास में आँखों और मस्तिष्क पर जोर न डालें। मन के साथ खींचतान न करें। ध्यान का अभ्यास करते हुए मन के साथ जबरदस्ती झगड़ा मत करें। ऐसा करना भारी भूल है। बहुत से नवीन साधक यह भारी भूल करते हैं। इसलिए वे अभ्यास करते-करते थक जाते हैं। उनके शिर में दर्द होने लगता है और ध्यान के बीच में बार-बार पेशाब करने को उठना पड़ता है; क्योंकि रीढ़ की हड्डी के मूत्र-सम्बन्धी मर्म में दबाव पड़ता है।

मन को वश में करने के लिए बलपूर्वक प्रयत्न न करें। इससे बलपूर्वक कुश्ती न लड़ें। ऐसा करना भूल है। थोड़ी देर के लिए इसे खुला छोड़ दें और इसे इधर-उधर भाग कर अपने प्रयत्न को समाप्त कर लेने दें। पहले तो यह मन अशिक्षित बन्दर के समान कूदेगा। धीरे-धीरे कम होता जायेगा। तब आप इसे अपने लक्ष्य पर या तो साकार मूर्ति पर या किसी निराकार भाव पर जमा सकते हैं।

ब्राह्ममुहूर्त में उठ जायें। पद्मासन, सिद्धासन, सुखासन या स्वस्तिकासन पर आराम से बैठें। शिर, गरदन और धड़ को एक रेखा में सीधा रखें। नसों, पुट्ठों और मस्तिष्क को ढीला छोड़ दें। पदार्थभूत मन को शान्त करें। आँखें बन्द कर लें। मन के साथ खींचातानी न करें। दिव्य विचारों को शनैः शनैः आने दें। स्थिरता से लक्ष्य का विचार करें। बीच में घुसने वाले अन्य विचारों को जान-बूझ कर जोर के साथ न भगा दें। उन्नत सात्त्विक विचार रखें। खोटे विचार स्वयं ही भाग जायेंगे।

यदि ध्यान के अभ्यास-काल में मन बाहर की ओर भागे तो चिन्ता न करें। इसे भागने दें। धीरे-धीरे इसे लक्ष्य पर ले आने की चेष्टा करें। बार-बार के अभ्यास से मन हृदय की ओर एकाग्र हो जायेगा और आत्मा में लीन हो जायेगा। प्रारम्भ में मन ८० बार बाहर को भाग सकता है, छह महीने में ७० बार, एक वर्ष में ५० बार, दो वर्ष में ३० बार, परन्तु ५ वर्ष में वह बिलकुल दृढ़ता से परमात्मा में लग जायेगा। फिर आपके चेष्टा करने पर भी यह वैसे ही बाहर नहीं भागेगा जैसे कि इधर-उधर फिरने वाला साँड़ जो पहले आस-पास के जमींदारों के बगीचों में घास खाने के लिए भागा-भागा फिरता था अब अपने स्थान पर ही ताजे चने और बिनीले आराम से खाता है।

यदि ध्यान में अधिक जोर पड़ता हो तो कुछ दिनों के लिए, घण्टों की संख्या कम कर दें। हलका ध्यान करें। जब आपको सामान्य शक्ति पुनः प्राप्त हो जाये तो फिर ध्यान-काल को बढ़ा दें। अपने साधना-काल में सहज बुद्धि से काम लें। मैं सदा इसी बात को दोहराता हूँ।

जो लोग लगातार चार-पाँच घण्टे तक ध्यान का अभ्यास करते हैं, उन्हें प्रारम्भ में दो आसन रखने चाहिए, या तो पद्म और वज्र या सिद्ध और बज्रासन। कभी-कभी टाँग के एक भाग में खून इकट्ठा हो जाता है और थोड़ी पीड़ा होती

है। दो घण्टे बाद पद्मासन या सिद्धासन को वज्रासन से बदल दें या टाँगों को सीधा फैला दें। दीवार या तकिये के सहारे झुक जायें; परन्तु मेरुदण्ड सीधा रखें। यह बड़ा सुखदायक आसन है। दो कुरसियाँ मिला लें। एक कुरसी पर बैठ जायें और दूसरी पर टाँगें फैला लें। यह भी एक उपाय है।

वास्तव में तो मानसिक आसन ही सच्चा आसन है। मन में पद्मासन या सिद्धासन करने का प्रयत्न करें। यदि मन इधर-उधर भागता रहेगा तो शरीर भी स्थिर नहीं रहेगा और आसन भी दृढ़ नहीं होगा। जब मन स्थिर अथवा ब्रह्म में स्थित होगा तो शरीर आप-ही-आप स्थिर हो जायेगा।

एक सर्वव्यापी भावना बनाये रखें। अन्तवान् शरीर को आभास मात्र समझ कर इसका निराकरण कर दें। सदा भावना को ही बनाये रखने का प्रयास करें। जो कोई भी वस्तु आपको उन्नत करे, मन को उन्नत करने के लिए उसी को ग्रहण करें और फिर ध्यान को दीर्घ काल तक जारी रखें।

आपको नित्य अपने वैराग्य, ध्यान और धृति, लगन, दया, प्रेम, क्षमा, पवित्रता आदि सद्‌गुण बढ़ाने चाहिए। वैराग्य और सद्गुणों से ध्यान में सहायता मिलती है। ध्यान सात्त्विक गुणों की वृद्धि करता है।

जैसे आप मौन के द्वारा शक्ति-संचय करते हैं वैसे ही निरर्थक क्रिया को बन्द करके मानसिक शक्ति का भी संग्रह करें। तब आपके पास ध्यान के अभ्यास के लिए पर्याप्त शक्ति-संग्रह हो जायेगा।

इन तीन शब्दों को याद रखें- (१) शुद्धिकरण, (२) केन्द्रीकरण, और (३) आत्मसात्करण। यह त्रिक है। इस त्रिक को याद रखें। काम-क्रोधादि मलों से मन को शुद्ध कर लें। इच्छा-रहित निःस्वार्थ बुद्धि से कर्म करें। इससे मन निर्मल हो जायेगा। उपासना, प्राणायाम, त्राटक और राजयोग के चित्त-वृत्ति-निरोध का अभ्यास करें। इससे मन को एकाग्र करने में सहायता मिलेगी। फिर निरन्तर गम्भीर ध्यान का अभ्यास करें। अन्त में मन मन हो जायेगा।

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ।।

"ओंकार धनुष है, मन तीर है और ब्रह्म लक्ष्य है। ब्रह्म को वही बींध सकता है जिसके विचार एकीकृत हैं, फिर वह ब्रह्म के साथ तन्मय अर्थात् उसी स्वभाव वाला हो जायेगा। जैसे तीर लक्ष्य को बींध कर लक्ष्य के साथ तन्मय हो जाता है" (मुण्डकोपनिषद् : २-२-४)।

पद्मासन या सिद्धासन में बैठ जायें। आँखें बन्द कर लें। दृष्टि को त्रिकुटी पर जमा लें। अब बल-सहित पाँच मिनट तक दीर्घ प्रणव का उच्चारण करें। यह मन का विक्षेप दूर कर देगा। अब धारणा प्रारम्भ हो जायेगी। अब ब्रह्म-भावना से ओंकार का मानसिक जप करें। जब कभी मन भागने लगे तो फिर ओंकार का वाचिक उच्चारण करें। जैसे मन निश्चल हो जाये फिर ओंकार का मानसिक जप करने लगें। यही क्रिया सगुण ध्यान के लिए भी की जा सकती है।

मन और पाँचों तत्त्वों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब नथुनों में अग्नि-तत्त्व चलता है तो मन में अधिक उद्वेग होता है और ध्यान में प्रत्यवाय पड़ता है। आकाश-तत्त्व चलने में ध्यान-क्रिया अनुकूल होती है। जिनको इन पाँचों तत्त्वों के चलने का ज्ञान है, वे शीघ्र ही ध्यान में उन्नति कर सकते हैं। जो ध्यान का अभ्यास करते हैं, उनके लिए स्वर-साधन या स्वरोदय का ज्ञान अनिवार्य है।

जैसे सिद्धहस्त तीर चलाने वाला पक्षी को तीर मारने में अपने पद-विन्यास, धनुष, डोरी और तीर पकड़ने के ढंग को भली प्रकार जानता है कि 'इस प्रकार खड़े हो कर, इस प्रकार धनुष ले कर, इस प्रकार डोरी खींच कर और ऐसे तीर पकड़ कर मैंने पक्षी को मारा।' और इसके उपरान्त फिर भी कभी इन अवस्थाओं को पूरी करने में नहीं चूकेगा

कि वह भी पक्षी को निशाना लगा सके। इसी प्रकार साधक को भी सारी अवस्थाओं को याद रखना चाहिए कि ऐसा भोजन करके, ऐसे पुरुष का अनुसरण करके, ऐसे मकान में, इस विधि से, ऐसे समय में मैंने इस ध्यान और समाधि को प्राप्त किया था।

जैसे चतुर रसोइया अपने स्वामी को भोजन खिलाने में याद रखता है कि उसके स्वामी को किस प्रकार का भोजन पसन्द है और फिर वही भोजन परोस कर लाभ उठाता है; उसी प्रकार साधक भी उन अवस्थाओं को याद रखता है कि जिनमें उसने ध्यान और समाधि प्राप्त किये थे और उन्हें पूरा करके बारम्बार परमानन्द प्राप्त करता है।

खुले नेत्रों से ध्यान

प्रारम्भ में नवीन होने के कारण दृढ़ता नहीं होती, इसलिए मन के विक्षेप को दूर करने के लिए नेत्र बन्द कर सकते हैं; परन्तु थोड़े समय उपरान्त आपको चलते हुए भी नेत्र खोल कर ध्यान लगाना चाहिए। शहर के शोरगुल में भी आपको मन की साम्यावस्था रखनी चाहिए। तभी आपमें पूर्णता आयेगी। आप ध्यान-काल में नेत्र क्यों बन्द करते हैं? आँखें खोल कर ध्यान करें। दृढ़तापूर्वक विचार करें कि संसार असत्य है, संसार है ही नहीं और केवल आत्मा ही है। यदि आँखें खुली रख कर भी आप आत्मा का ध्यान कर सकते हैं तो आप बलवान् पुरुष हो जायेंगे। आपको आसानी से कोई बाधा नहीं होगी।

ध्यान से लाभ

अग्नि दो प्रकार की होती है : सामान्य और विशेष। सामान्य अग्नि सारे वृक्षों और काष्ठ में छिपी रहती है। जलाने के लिए इसका कोई उपयोग नहीं है। विशेष अग्नि जो दियासलाई के घिसने अथवा काष्ठ के टुकड़ों को रगड़ने से निकलती है, भोजन बनाने तथा अन्य कार्यों में मनुष्य के लिए उपयोगी होती है। इसी प्रकार सामान्य चैतन्य है जो सब कहीं व्यापक है। विशेष चैतन्य भी होता है। सामान्य चैतन्य मनुष्यों की अविद्या का नाश नहीं कर सकता। आत्माकार-वृत्ति या अविच्छिन्न विशेष चैतन्य ही मूल अज्ञान को नष्ट कर देता है जिससे कि स्वरूप घिरा हुआ रहता है। यह विशेष चैतन्य तभी विकसित होता है जब मनुष्य शुद्ध हृदय से अनन्त-रूप आत्मा का ध्यान करता है।

ध्यान-काल में आप अपरिवर्तनशील प्रकाश के आत्मिक संसर्ग में रहते हैं। आपके सारे मल धुल जाते हैं। यह प्रकाश जिस आत्मा से सम्पर्क करता है, उसे शुद्ध कर देता है। अग्नि का शीशा जब सूर्य के प्रकाश में रखा जाता है तो उसके नीचे की घास जलने लगती है। इसी प्रकार यदि आपने अपना खुला हृदय भक्तिपूर्वक ईश्वरोन्मुख कर रखा है तो उसकी पवित्र और प्रेममय ज्योति इस आत्मा को प्रकाशित करके दिव्य प्रेम की अग्नि में आपके सारे दोषों को भस्म कर देगी। यह ज्योति अधिक शक्ति और सुख लाती है।

यह पावनकारी प्रक्रिया सत्य में अधिक गम्भीर अन्तर्दृष्टि प्रदान करती है। यह ध्यान करने वाली आत्मा पर भगवत्कृपा का कार्य करती है। इस अन्तर्वाहिनी क्रिया में एकदम वह मन की ज्योति उठती है जिसमें ईश्वर अपनी दिव्य निर्मल भावना की एक किरण भेजता है। यह ज्योति परम शक्तिशालिनी होती है।

यदि आप आधा घण्टे तक ध्यान कर सकें तो इसके बल से एक सप्ताह तक शान्ति और आत्मबल से आप जीवन-संग्राम में लग सकेंगे। ध्यान का ऐसा लाभकारी फल है। क्योंकि आपको अपने नित्य के जीवन में विभिन्न स्वभाव के मनों से काम पड़ता है; इसलिए ध्यान के अभ्यास से बल और शान्ति प्राप्त करें, फिर आपको कोई चिन्ता और दुःख नहीं होगा।

सारे आन्तरिक तथा बाह्य कर्म तभी किये जा सकते हैं जब मन इन्द्रियों के साथ संयुक्त हो। विचार ही सच्चा कर्म है। यदि आपने स्थिर अभ्यास द्वारा अपने मन को वश में कर लिया है, यदि आप अपनी भावनाओं और मुद्राओं को ठीक रख सकते हैं तो आप मूर्खतापूर्ण तथा अनैतिक कार्य नहीं करेंगे। भिन्न-भिन्न भावनाओं तथा चेष्टाओं को रोकने में ध्यान बहुत सहायता करेगा।

ध्यान एक बलकारक औषधि है। यह मानसिक और स्नायविक औषधि भी है। इसके पवित्र स्पन्द सारे शरीर में व्याप्त हो कर शरीर के रोगों को दूर करते हैं। जो ध्यान का अभ्यास करते हैं, वे डाक्टर का व्यय बचाते हैं। जो शक्तिशाली शान्तिदायक तरंगें ध्यान-काल में उठती हैं, वे मन, नाड़ियों, इन्द्रियों और शरीर के कोशाणुओं पर लाभकारी प्रभाव डालती हैं। दिव्य शक्ति भगवान् के चरणों से मुक्त स्रोत हो कर साधकों के शरीर में तैलधारावत् बहती है।

ध्यान के अभ्यास से मन, मस्तिष्क और नाड़ियों में अनेक परिवर्तन हो जाते हैं। नये-नये नाड़ी-प्रवाह, स्पन्द, नये पदार्थ, नयी लीकें, नये कोशाणु, नये प्रणाल बन जाते हैं। सम्पूर्ण मन और नाड़ी-जाल नया-सा बन जाता है। आपका हृदय और मन नया-सा हो जायेगा। नये इन्द्रिय-ज्ञान, भाव, विचारधारा और क्रियाएँ तथा संसार के लिए नया दृष्टिकोण (अर्थात् ईश्वर का स्वरूप) बन जायेंगे।

ध्यान की अग्नि पापों की सारी गन्दगी नष्ट कर देती है। तब एकदम दिव्य ज्ञान आ जाता है जो सीधा मुक्ति की ओर ले जाता है।

जब वासनाएँ दुर्बल हो जाती हैं और संकल्प क्षीण हो जाते हैं तभी सच्ची शान्ति और आनन्द प्रकट होते हैं। पाँच मिनट के लिए भी जब आप मन को श्रीकृष्ण, शिव या आत्मा पर स्थिर करते हैं, तो मन में सत्त्वगुण भर जाता है, वासनाएँ क्षीण हो जाती हैं और संकल्पों की स्फुरणा कम हो जाती है। इन पाँच मिनटों में आपको शान्ति और आनन्द प्रतीत होता है। आप ध्यान से प्राप्त इस आनन्द की तुलना नश्वर विषय-भोगों के आनन्द से कर सकते हैं। आपको प्रतीत होगा कि ध्यान द्वारा प्राप्त यह आनन्द विषय-सुख से लाखों गुणा उत्तम है। ध्यान करें और इस आनन्द का अनुभव करें, तब आपको इसका वास्तविक मूल्य ज्ञात होगा।

जब आप शान्त ध्यान में गहरे उतर जायेंगे तभी आपको दिव्य महिमा का पूर्ण आनन्द मिलेगा। जब तक आप ईश्वर की दिव्यता के सीमा क्षेत्र, बाह्य-प्रदेश और ड्योढ़ी तक रहते हैं तब तक आपको सर्वाधिक शान्ति और आनन्द नहीं मिलेगा।

योग के साधक विधिवत् ध्यान का अभ्यास करते हैं, उन्हें निम्न लाभ प्राप्त होते हैं-शान्ति, सन्तोष, अभय, आध्यात्मिक आनन्द-विशेष, संसारी कठिनाइयों में मन का उद्वेग न होगा, निश्चल स्थिति, प्रेरणा, अन्तर्ज्ञान, सात्त्विक गुण, अक्रोध, अहंकार और राग-द्वेष का अभाव।

धारणा, शुद्धि और ध्यान के द्वारा प्राकाम्य दिव्य दृष्टि, ज्ञान-चक्षु का विकास करें।

ध्यान द्वारा सद्गुणों के विकास की विधि

अपने स्वभाव का निरीक्षण करें। इसमें कोई त्रुटि पकड़ लें और इसका विरोधी गुण मालूम करें। आपके स्वभाव में चिड़चिड़ापन है। इसका विरोधी गुण धृति है। धृति पर ध्यान करके इस गुण की वृद्धि करने की चेष्टा करें। प्रतिदिन प्रातःकाल ठीक चार बजे किसी एकान्त कमरे में सिद्धासन या पद्मासन में आधे घण्टे बैठ जायें और धैर्य पर विचार करने लगें। इसका मूल्य, उद्वेग होने पर इसका अभ्यास आदि एक-एक बात प्रतिदिन ले कर दृढ़ता से विचार करें और

जब मन इधर-उधर भटकने लगे तभी इसे वापस लौटा लें। अपने को अत्यन्त पूर्ण धैर्यवान् समझें, धृति का आदर्श मानें और प्रतिज्ञा करें कि आज से मैं इसी धैर्य का अनुभव और प्रकटन करूँगा। यह धैर्य मेरा सच्चा स्वरूप है।

शायद कुछ दिनों तक कुछ भी अन्तर नहीं प्रतीत होगा। फिर भी आप चिड़चिड़ापन अनुभव करेंगे। नित्य प्रातःकाल दृढ़ता से अभ्यास करते चले जायें। ज्यों ही आप कोई चिढ़ावनी बात कहेंगे, आपके मन में स्वैच्छिक विचार आयेगा- 'मुझे धैर्य रखना चाहिए था।' फिर भी अभ्यास करते चले जायें। शीघ्र ही चिड़चिड़ेपन का बाहरी प्राकट्य रुक जायेगा। अभ्यास में लगे रहें, चिड़चिड़ापन दुर्बल होता चला जायेगा और एक दिन आप देखेंगे कि चिड़चिड़ापन बिलकुल जाता रहेगा और धैर्य आपका साधारण स्वभाव बन जायेगा। इसी प्रकार आप सहानुभूति, आत्म-संयम, पवित्रता, नम्रता, दया, सौजन्य, उदारता आदि अनेक गुणों को बढ़ा सकते हैं।

परिच्छेद-३३

ध्यान में अनुभव तथा बाधाएँ

ध्यान-काल में क्या घटित होता है

ध्यान में मस्तिष्क में नवीन प्रसीताएँ आकार लेती हैं तथा मन नवीन आध्यात्मिक प्रसीताओं के द्वारा ऊर्ध्व गति करता है। जब ध्यान में मन स्थिर हो जाता है तो देश-गोलक भी स्थिर हो जाते हैं। जिस योगी का मन शान्त हो जाता है उसकी दृष्टि भी स्थिर होती है। वह पलक नहीं झपकाता। आँखें चमकदार, लाल या बिलकुल सफेद होंगी। जब

आप अतीव गम्भीर शान्त ध्यान में प्रवेश कर जायेंगे तो नासिका-रन्ध्रों से श्वास नहीं आयेगा। पेडू और फेफड़ों में कभी-कभी मन्द गति होगी। सामान्य श्वास लेने में वायु में सोलह मात्रा बाहर आती है। जब मन एकाग्र हो जायेगा तो यह कम होती जायेगी। तब यह १५, १४, १३, १२, १०, ८ और इसी प्रकार कम होती जायेगी। किसी साधक के श्वास के स्वरूप से ही आप उसके ध्यान की गम्भीरता का अनुमान कर सकते हैं। श्वास को बड़े ध्यान से देखें।

मनुष्य विचार-आकृतियों के द्वारा अव्यक्त को ग्रहण करने का प्रयास करता है। जब मन शुद्ध हो जाता है तो श्रवण और ब्रह्म-चिन्तन से मन में एक अव्यक्त आकृति बन जाती है। यह अव्यक्त आकृति कुछ काल बीतने पर निदिध्यासन में विलीन हो जाती है। केवल **'अस्ति'** अथवा **'चिन्मात्र'** अवशेष रह जाता है।

निदिध्यासन अथवा सतत गम्भीर ध्यान में विचार बन्द हो जाता है। केवल एक ही विचार **'अहं ब्रह्मास्मि'** रहता है। जब यह विचार भी छूट जाता है तो निर्विकल्प समाधि या सहज अद्वैत-निष्ठा हो जाती है। जैसे नमक पानी में घुल जाता है, वैसे ही सात्त्विक मन अपने अधिष्ठान-रूप ब्रह्म में ध्यान-काल में मिल जाता है।

ध्यान में अनुभव

भिन्न-भिन्न मनुष्यों के भिन्न-भिन्न प्रकार के अनुभव होते हैं। सबके लिए एक ही सामान्य अनुभव नहीं हो सकता। यह प्रत्येक अनुभव मनुष्य के अपने स्वभाव, साधना-विधि, ध्यान के स्थान और अन्य बातों पर निर्भर करता है। कोई मधुर स्वर सुनते हैं, कोई प्रकाश देखते हैं, किन्हीं को आनन्द मिलता है और किसी-किसी को प्रकाश और आनन्द दोनों मिलते हैं। ध्यान-काल में अनुभव करेंगे कि आप अपने आसन से ऊपर उठ रहे हैं। कोई-कोई अपने को हवा में उड़ता हुआ भी अनुभव करते हैं।

ज्योति

दिव्य ज्योति खुले द्वारों से नहीं, अपितु संकीर्ण झिर्रियों में से आया करती है। जैसे चिक से अँधेरे कमरे में सूर्य की किरण आती है, इसी प्रकार साधक दिव्य किरण देखता है। यह बिजली कौंधने के समान होती है। इससे सारे शब्दों का स्वर बन्द हो जाता है। साधक आनन्द और दैवी विस्मय से आश्चर्यचकित रह जाता है। वह प्रेम और भय से वैसे ही काँपने लगता है जैसे भगवान् कृष्ण के विराट् विश्वरूप-दर्शन से अर्जुन काँपने लगा था। यह प्रकाश जो दिव्य मूर्ति को आवृत रखता है, इतना तीव्र होता है कि साधक चौंधियाँ जाता है और घबराने लगता है।

ध्यान-काल में नासारन्ध्र में बहने वाले तत्त्व के अनुकूल प्रकाश का वर्ण भी बदलता रहता है। अग्नि-तत्त्व हो तो रक्त-वर्ण का, आकाश-तत्त्व हो तो नीले वर्ण का, जल-तत्त्व में श्वेत-वर्ण का, पृथ्वी तत्त्व में पीत-वर्ण का और वायु-तत्त्व में कृष्ण-वर्ण का प्रकाश दिखायी देता है। आप इस तत्त्व को अनेक उपायों से बदल सकते हैं; परन्तु सर्वोत्तम उपाय विचार है। "जैसा विचार करेंगे, वैसे ही बन जायेंगे।" जब अग्नि-तत्त्व बहता हो तो इच्छापूर्वक जल-तत्त्व का चिन्तन करें। जल-तत्त्व शीघ्र बहने लगेगा।

प्रहर्ष

ध्यान-काल में आपको प्रहर्ष मिलेगा। यह पाँच प्रकार का होता है-हलका पुलक, क्षणिक प्रहर्ष, आप्लावी प्रहर्ष, वाही (ले जाने वाला) प्रहर्ष और सर्वव्यापी प्रहर्ष। हलके पुलक में केवल रोमांच होता है। क्षणिक प्रहर्ष में बिजली की चमक के समान पल-पल पर प्रहर्ष आता है। जैसे सागर-तट पर लहरें टकराती हैं इसी प्रकार आप्लावी प्रहर्ष शीघ्रता से

शरीर में आता है और टकराता है। वाही प्रहर्ष शक्तिमान् होता है और शरीर को भी हवा में उठा देता है। जब सर्वव्यापी प्रहर्ष आता है तो हवा से भरे फुटबाल के ब्लैडर (थैली) के समान सारा शरीर प्रहर्ष से भर जाता है।

शरीर-चेतना का अतिक्रमण

साधकों को जल्दी आध्यात्मिक अनुभव देखने की उत्सुकता होती है; परन्तु जब अनुभव मिलते हैं तो वे भयभीत हो जाते हैं। जब वे शरीर-चेतना से ऊपर उठ जाते हैं तो वे अत्यन्त भयभीत होते हैं। उन्हें आश्चर्य होता है कि वे शरीर में लौट कर आयेंगे या नहीं! उन्हें डर क्यों होना चाहिए? कोई बात नहीं, यदि उन्हें शरीर-चेतना प्राप्त हो या न हो। हमारे सारे प्रयत्न तो शरीर-चेतना से ऊपर उठने के लिए ही होते हैं। हम पर कुछ प्रतिबन्ध लगे हुए होते हैं। जब अचानक ही ये प्रतिबन्ध गिर जाते हैं तो हमें प्रतीत होता है कि खड़े होने के लिए कोई निश्चित आधार नहीं बचा है। यही कारण है कि जब हम शरीर-चेतना से ऊपर उठते हैं तो हमें डर लगता है। यह एक नवीन अनुभव होता है। साहस की आवश्यकता है। वीरता बड़ा आवश्यक गुण है। श्रुति कहती है : "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"बलहीन (भीरु) मनुष्य आत्म-साक्षात्कार प्राप्त नहीं कर सकता। मार्ग में सब प्रकार की शक्तियों का सामना करना पड़ता है। डाकू या अराजकतावादी सरलता से ईश्वर-प्राप्ति कर सकता है; क्योंकि वह निर्भय होता है। उसके लिए तो ठीक मार्ग में एक धक्के की आवश्यकता होती है। बड़े दुष्ट जगाई और मधाई किस प्रकार उत्तम साधु बन गये ? उन्होंने गौरांग महाप्रभु के शिष्य नित्यानन्द पर पत्थर फेंके थे। नित्यानन्द ने उन्हें केवल शुद्ध दिव्य प्रेम से जीत लिया। डाकू रत्नाकर वाल्मीकि ऋषि बन गया था।

आत्माओं के दर्शन

कभी-कभी आपको दुष्ट आत्माएँ दुःख देंगी। उनके भद्दे डरावने मुख और लम्बे दाँत होंगे। अपनी दृढ़ इच्छा-शक्ति से उन्हें भगा दें। आज्ञा दें, 'निकल जाओ।' वे चले जायेंगे। ये भूत हैं। ये साधकों की हानि नहीं करेंगे। यहाँ आपके साहस की कसौटी है। यदि आप डरपोक हैं तो आगे नहीं बढ़ सकते। उस आन्तरिक अव्यय स्रोत-रूप आत्मा से साहस और बल ग्रहण करें। आपको अच्छी आत्माएँ भी मिलेंगी। वे आपको आगे बढ़ने में सहायता देंगी।

इस प्रकार का एक दृश्य ध्यान-काल में बहुधा मिलता है। आप एक तीव्र प्रकाश आकस्मिक गति-सहित देखेंगे। आपको एक विस्मय-जनक शिर ज्वाला के समान वण बाला और बड़ा भयावना दिखता है। इसके तीन बड़े विशाल तथा चकाचौंध पैदा करने बाले मेघ के सदृश श्वेत पक्ष होते हैं। कभी-कभी वे फड़फड़ाते हैं और फिर शान्त हो जान हैं। शिर एक भी शब्द नहीं बोलता और बिलकुल शान्त रहता है और इसके फैले हुए पह फड़फड़ाते रहते हैं।

ध्यान में जो दृश्य आप देखते हैं, वह आपके अपने ही मूर्तिमान् विचार होते हैं और कुछ एक वास्तविक पदार्थों के दृश्य होते हैं।

एक-एक करके सारे परदे तोड़ दें

यदि आप तीव्र ध्यान के अन्दर आत्मा की झलक देखें, तीव्र प्रकाश देखें, ऋषि, मुनि, देवता, यक्षादिकों के दृश्य देखें तथा कोई और असाधारण आध्यात्मिक दृश्य देखें तो भय से पीछे न हटें और उनको भूत समझ कर साधना बन्द न कर दें। आगे बढ़ते रहें। परिश्रम से लगे रहें। एक-एक करके सारे परदे तोड़ दें।

यदि साधना में कुछ त्रुटि हो तो तुरन्त अनुभवी संन्यासियों, ईश्वर-प्राप्त आत्माओं से परामर्श ले कर भूल को दूर कर दें। यदि आपका स्वास्थ्य ठीक है, यदि आप प्रसन्न है और मन तथा शरीर से बलवान् हैं, यदि मन शान्त और

उद्वेग-रहित है, यदि ध्यान में आनन्द मिलता है, यदि इच्छा-शक्ति दृढ़, पवित्र तथा अबाध्य होती जाती है तो समझ लें कि आप ध्यान में उन्नति कर रहे हैं और सब चीज ठीक-ठीक चल रही है।

साहसपूर्वक आगे बढ़ते रहें। पीछे मुड़ कर न देखें। विशाल शून्य और अन्धकार को पार कर लें। मोह के संस्तर को भेद दें। सूक्ष्म अहंकार को विलीन कर दें। स्वरूप स्वयं प्रकाशित हो उठेगा। आपको तुरीय (आरूढ़) - अवस्था का अनुभव होगा।

ध्यान में बाधाएँ

ध्यान में बाधाएँ अन्दर से ही उठती हैं। आपकी परिस्थितियाँ भी आपके अन्दर ही हैं। आप स्वयं ही अपनी परिस्थितियाँ बनाते हैं। जिस अवस्था में भी हों, प्रसन्नचित्त रहने का प्रयत्न करें। शिकायत न करें। कष्ट सहन करें। आप प्रकृति पर विजय पा सकते हैं। ब्रह्म-ज्ञानी के लिए माया तुच्छ है।

निद्रा आना, कामनाएँ, मन की अस्त-व्यस्त दशा, मनोराज्य-ये बड़ी बाधाएँ हैं जो मन को ईश्वर अथवा ब्रह्म में लगाने में बाधक होती हैं। ध्यान की पाँच बाधाएँ हैं-इन्द्रियों की वासना, दुर्भावना, आलस्य, तन्द्रा, चिन्ता और घबराहट। इनको दूर करना चाहिए; क्योंकि जब तक इनको दूर नहीं किया जायेगा, ध्यान नहीं लगेगा। जो मन इन्द्रिय-वासना द्वारा अनेक वस्तुएँ चाहता है, वह एक पदार्थ पर एकाग्र नहीं होता। वह इन्द्रियों की वासना से दब कर विषयों को दूर करने के लिए ध्यान में उन्नति नहीं करता। जो मन किसी विषय के लिए दुर्भावना से पीड़ित है, वह तुरन्त ही ध्यान में नहीं लग सकता। जो मन आलस्य और तन्द्रा के वश में है, वह दूष्परिचालनीय हो जाता है। चिन्ता से दुःखी मन विश्राम नहीं करता; वरन् भागा-भागा फिरता है। घबराहट से पीड़ित मन ध्यान और समाधि-प्रदायक मार्ग पर नहीं जाता। ध्यान में बाधाएँ वस्तुतः अन्दर से ही उठती हैं, बाहर से नहीं। मन को सम्यक् प्रशिक्षण दें।

ध्यान की चार बाधाएँ हैं लय अर्थात् निद्रा, विक्षेप अर्थात् मन का डाँवाडोल (अस्थिर) रहना, कषाय अर्थात् विषय-भोगों की स्मृति, और रसास्वाद अर्थात् सबिकल्प समाधि से प्राप्त होने वाला आनन्द।

तन्द्रा तथा मनोराज्य

जब वैराग्य और उपरति के द्वारा मन-पदार्थों से हटा लिया जाये तो इसे निद्रा या मनोराज्य में न गिरने दें। जब महावाक्यानुसन्धान की विधि के अनुसार आप 'अहं ब्रह्मास्मि' या 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों के अर्थ पर निरन्तर चिन्तन करते हैं तो देखना, सुनना, स्पर्श करना, स्वाद लेना, सूँघना आदि सारे विषय रुक जाते हैं; परन्तु संस्कारों के प्राबल्य के कारण मनोराज्य चलता रहता है। यह हवा में महल बनाता रहता है। संस्कृत में इसका नाम महोरथ है। यह ध्यान का चिन्ताजनक बाधक है। विचार द्वारा इसे बन्द कर देना चाहिए। तन्द्रा और मनोराज्य के मिश्रण को भूल से साधक ध्यान और समाधि मान बैठते हैं। प्रतीत होता है कि मन धारणा में संलग्न है और विक्षेप से मुक्त है। यह गलती है। आलस्य तथा स्तब्धता (भय अथवा आश्चर्य से मन का स्तम्भित हो जाना, मानसिक उत्तेजना, मन की चंचलता और मन की उदासी) ध्यान में अन्य बाधक तत्त्व हैं।

मन को अच्छी तरह देखें। इसे एकाग्र बना कर स्वरूप में स्थित करें। विचारशील, सतर्क और सचेत रहें। यदि तन्द्रा लगे तो दश मिनट के लिए खड़े हो जायें और मुख तथा शिर पर ठण्डे जल के छींटे दें। इन दोनों बड़ी बाधाओं को विचार, प्राणायाम और लघु सात्विक आहार द्वारा दूर करें। प्राणायाम, शीर्षासन, सर्वांगासन, मयूरासन और लघु भोजन से तन्द्रा और आलस्य को दूर किया जाता है। बाधा के कारणों को मालूम करके उनको दूर करें। जिनको आपका मन पसन्द नहीं करता, उनकी संगति से बचें। बाद-विवाद न करें। दूसरे की बात न काटें। जो लोग अविवेकी और अपरिपक्व हैं, उन्हें तर्क से मनवाने की कोशिश न करें। कम बोलें, मौन रहें, अकेले रहें। इस भाँति आप सभी प्रकार की

उत्तेजनाओं से बच सकते हैं, निरन्तर सत्संग करें। बुद्धि को उन्नत करने वाले प्रान्य योगवासिष्ठ, उपनिषदों आदि का मननशील अध्ययन करते रहें। ब्रह्मभावना बनायें। अर्व और भाव-सहित ॐ का जप करें। उदासी के सारे विचार दूर हो जायेंगे।

यदि आप सचेत रहें और दीर्घ काल के प्रयत्न तथा अथक जाग्रत स्वरूप-चिन्तन के द्वारा तन्द्रा तथा मनोराज्य-इन दोनों बाधाओं पर अधिकार प्राप्त कर लें तो थोड़े ही समय में स्थिर ब्रह्माकार-वृत्ति तथा ब्रह्म-ज्ञान का उदय होगा, अज्ञान दूर हो जायेगा, आप सहज परमानन्द-अवस्था में स्थित हो जायेंगे तथा ज्ञानाग्नि में सारे संचित कर्म भस्म हो जायेंगे।

ध्यान में स्वप्न

कुछ साधकों को अनेक प्रकार के अद्भुत स्वप्न दुःख देते हैं। कभी-कभी ध्यान और स्वप्न का मिश्रण हो जाता है। स्वप्नों को उपस्थिति से ज्ञात होता है कि अभी तक आप गम्भीर ध्यान में भली प्रकार स्थित नहीं हुए हैं, मन के विक्षेप को दूर नहीं किया है और निरन्तर तीव्र साधना नहीं की है। क्योंकि स्वप्न की क्रिया बड़ी विचित्र होती है और समझायी नहीं जा सकती, इसलिए जब तक कारण-शरीर के सारे संस्कारों को निकाल कर विचारों का निग्रह नहीं कर लेते तब तक स्वप्नों का संयम करना बड़ा कठिन है। जैसे-जैसे पवित्रता, विवेक और धारणा बढ़ती जायेगी, वैसे-वैसे स्वप्न कम होते जायेंगे।

उदासी

नवीन साधकों में पूर्व-संस्कारों के वश या सूक्ष्म लोक के प्राणियों, दुष्ट आत्माओं, कुसंगति, बादल के दिन, अपच और कोष्ठबद्धता के कारण बहुधा उदासी आ जाती है। इसको जल्दी आनन्दमय विचारों, द्रुतगामी सैर, गायन, हँसी, प्रार्थना, प्राणायाम आदि उपायों द्वारा हटा देना चाहिए।

विक्षेप

सुगन्धि, कोमल शय्या, उपन्यास पढ़ना, नाटक, चलचित्र देखना, अश्लील गीत, नृत्य, पुष्प, स्त्रियों की संगति और राजसिक भोजन-ये सब विषय-वासनाओं को उत्तेजित करते और मन में विक्षोभ उत्पन्न करते हैं। अधिक नमक, मिर्च और मिठाइयाँ प्यास को भड़काती हैं और ध्यान में विघ्न डालती हैं। अधिक बातचीत, अधिक घूमने और लोगों से मिलने-जुलने से भी ध्यान में विघ्न पड़ता है।

मन की विवेक-शून्य नैसर्गिक वृत्तियाँ ध्यान को विचलित कर देती हैं। इन सबको बुद्धि और दृढ़ इच्छा द्वारा संयत करना चाहिए। सम्भोग-वासना और महत्त्वाकांक्षा-ये दोनों ध्यान में वास्तविक बड़ी बाधाएँ हैं। ये सदा छापामार युद्ध करती रहती हैं और साधक पर बार-बार आक्रमण करती हैं। कुछ काल के लिए तो ये बड़ी दुर्बल हो गयी-सी मालूम पड़ती हैं। बहुधा फिर जीवन प्राप्त कर लेती हैं। बड़े प्रयत्न, विचार, विवेक और **'शिवोऽहं'-**भावना के द्वारा इनको निकाल देना चाहिए।

शब्द से मन गति पाता है। शब्द ही मन को विचार में लीन करता है। शब्द ध्यान में मन को अशान्त कर देता है। सार्थक शब्द से अधिक क्षोभ होता है और निरर्थक शब्द से कम। जो शब्द निरन्तर होता रहे-जैसे नदी के प्रवाह का शब्द-उससे इतना क्षोभ नहीं होता जितना की आकस्मिक तीव्र और कभी-कभी होने वाले शब्द से होता है। जब मन किसी शब्द का अभ्यस्त हो जाता है तो उससे क्षोभ नहीं होता घड़ी की टिक्-टिक् बन्द हो जाने पर ही आपका ध्यान उधर को खिंचता है।

तूष्णीम्भूत-अवस्था

तृष्णीम्भूत-अवस्था मन की वह शान्त दशा है जिसमें कुछ थोड़े समय के लिए पदार्थों की ओर आकर्षण या विकर्षण नहीं होता। यह जाग्रत अवस्था में होती है। यह मन की उदासीन दशा है। यह भी ध्यान में बाधक हैं। इससे बचना चाहिए। अविवेकी साधक भूल से ही इसको समाधि मान बैठते हैं।

कषाय

कषाय का अर्थ रंग है। राग, द्वेष और मोह-ये मन के कषाय हैं। विषय-भोग का जो सूक्ष्म प्रभाव मन के ऊपर रह जाता है और समय पा कर फलीभूत होता है तथा मन को समाधि से दूर हटा देता है, वह कषाय कहलाता है। वह ध्यान में बहुत बड़ी बाधा है। यह साधक को समाधि-निष्ठा में प्रवेश नहीं करने देता। यह छिपी हुई वासना है जो भोगों की सूक्ष्म स्मृति को उत्पन्न कर देती है। संस्कारों से वासना पैदा होती है। संस्कार कारण है और वासना कार्य है। यह एक प्रकार का मल है। इस असाध्य रोग कषाय को दूर करने के लिए सतत विचारयुक्त ब्रह्म-भावना ही परमौषधि है।

सात्त्विक वृत्तियाँ

ध्यान-काल में, जब आपका मन सात्त्विक होता है, आपको प्रेरणा मिलती है। मन सुन्दर कविताएँ रचता है और जीवन की समस्याओं को सुलझाता है। इन सात्त्विक वृत्तियों को भी मिटा दें। यह सब मानसिक शक्ति को भी क्षीण करते हैं। आत्मा की ओर अधिकाधिक ऊँचे जायें।

सविकल्प समाधि

सविकल्प समाधि का आनन्द भी बाधक है; क्योंकि यह आपको निर्विकल्प-अवस्था में प्रवेश करने से रोकता है। इससे मिथ्या तुष्टि मिलती है और आगे के लिए साधन रुक जाता है।

इन चारों बाधाओं से मन मुक्त होना चाहिए। तब आप शुद्ध, अद्वैत, निर्विकल्प-अवस्था में प्रवेश कर सकेंगे। विचार और ब्रह्म-भावना की सहायता से ही यह उच्चतम अवस्था प्राप्त हो सकती है।

ध्यान और कार्य

जो मनुष्य ध्यान करता है, वह काम नहीं कर सकता। जो काम करता है, वह ध्यान नहीं कर सकता। यह सन्तुलन नहीं है। यह समता नहीं है। ध्यान तथा कर्म-दोनों ही सुसन्तुलित होने चाहिए। यदि आप ईश्वरी आज्ञा मानने को तैयार हैं तो जो-कुछ भी काम दिया जाये, चाहे वह कितना ही भारी काम क्यों न हो, उसे करने के लिए आपको तैयार रहना चाहिए और मौका पड़ने पर अगले ही दिन उसे ग्रहण करने के समय की भाँति ही शान्तिपूर्वक अपना कोई उत्तरदायित्व अनुभव किये ही छोड़ देने के भी योग्य होना चाहिए। संसार में आपको बड़ी शक्ति के साथ काम करने योग्य होना चाहिए और जब कार्य समाप्त हो जाये तो शान्तियुक्त मन से दीर्घ काल तक गुहा में एकान्त-वास करने की भी योग्यता होनी चाहिए। यही सन्तुलन है, यही सच्ची सामर्थ्य और शक्ति कहलाती है। तभी आप गुणातीत समझे जा

सकेंगे। गीता में भगवान् ने कहा है : "जो मनुष्य सत्त्व, रजस् और तमोगुण के प्रवृत्त होने पर उनसे द्वेष नहीं करता और उनके चले जाने पर उनकी इच्छा नहीं करता, वह गुणातीत कहलाता है" (गीता-१४-२२)।

जब आप आध्यात्मिक साधन में आगे बढ़ जायेंगे तो आपके लिए ध्यान और कार्यालय का काम एक-साथ करना बहुत कठिन हो जायेगा; क्योंकि मन पर दोगुना दबाव पड़ेगा। जो ध्यान का अभ्यास करते हैं, उन्हें ज्ञान होगा कि वे ध्यानाभ्यास न करने वाले लोगों से अधिक संवेदनशील हैं और इसी कारण उनके स्थूल शरीर पर बड़ा दबाव रहता है। मन ध्यान-काल में किन्हीं और संस्कारों के साथ किसी दूसरे ही मार्ग में काम करता है और फिर भिन्न-भिन्न प्रकार की अनुकूल क्रियाओं के लिए अपने को समंजित करने में इसे बड़ी कठिनाई प्रतीत होती है। जैसे ही यह ध्यान से नीचे उतरता है तो अँधेरे में टटोलने लगता है। यह सम्भ्रान्त तथा किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। ध्यानावस्था में प्राण अत्यन्त सूक्ष्म हो कर अन्दर की ओर निश्चित मार्ग में चलता है, उसको ही संसारी क्रियाओं के काल में स्थूल बन कर अन्य मार्ग में जाना पड़ता है। जब सायंकाल आप फिर ध्यान के लिए बैठते हैं तो दिन में नये इकट्ठे किये हुए संस्कारों को मिटाने तथा मन को शान्त एवं एकाग्र करने के लिए आपको बड़ा कठिन संघर्ष करना पड़ता है। यह संघर्ष कभी-कभी सर-दर्द का कारण बनता है।

इसलिए उन्नत गृहस्थी योग-साधकों को उचित है कि जब वह ध्यान में उन्नति प्राप्त कर लें तो और भी आगे बढ़ने के लिए सारे सांसारिक कार्यों को बन्द कर दें। यदि उनकी लगन सच्ची है तो वे स्वयं ही बन्द करने के लिए बाध्य हो जायेंगे। उन्नत साधकों के लिए कार्य ध्यान में बाधक होता है। इसी कारण भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में बताया है : "भोग-प्राप्ति की इच्छा वाले मुनि के लिए कर्म उसका साधन होता है और जब वही मुनि योग में आरूढ़ हो जाता है तो शम या शान्ति उसका साधन बन जाती है।" उस अवस्था में तेजाब और खार, अग्नि और जल, प्रकाश और अन्धकार की भाँति ध्यान और कर्म का मेल नहीं हो सकता।

ध्यान में असफलता के कारण

कोई-कोई पन्द्रह वर्ष तक ध्यान का अभ्यास करते हैं और फिर भी कुछ उन्नति नहीं कर पाते। क्यों? यह उनके उत्साह, वैराग्य, मुमुक्षुत्व और निरन्तर तीव्र साधन के अभाव के कारण है। साधकों की हमेशा यह शिकायत हुआ करती है, "मैं पिछले १२ वर्षों से ध्यान का अभ्यास कर रहा हूँ। मैं कुछ उन्नति नहीं कर पाया। मुझे साक्षात्कार नहीं हुआ।" यह क्यों होता है? इसका कारण क्या है? उन्होंने अपनी हृदय-गुहा के अन्तरतम भाग में गम्भीर ध्यान में प्रवेश नहीं किया है। उन्होंने ईश्वरीय विचारों को सम्यक् प्रकार से आत्मसात् नहीं किया है और मन को सन्तृप्त नहीं किया है। उन्होंने नियमित तथा व्यवस्थित रूप से साधना नहीं की है। उन्होंने इन्द्रियों का पूर्ण संयम नहीं किया है। उन्होंने मन की बहिर्गामी किरणों को एकत्र नहीं किया है। उन्होंने यह आत्मनिश्चय नहीं किया है कि मैं इसी क्षण साक्षात्कार प्राप्त कर लूँगा। उन्होंने अपना पूर्ण या शत-प्रति-शत मन ईश्वर में नहीं लगाया है। उन्होंने ईश्वरीय चेतना का बढ़ता हुआ प्रवाह तैलधारावत् जारी नहीं रखा है।

आपको ध्यानपूर्वक देखना होगा कि क्या आप कई वर्षों की आध्यात्मिक साधना के पश्चात् भी आध्यात्मिक मार्ग में एक ही स्थान पर स्थिर हैं अथवा आप उन्नति कर रहे है। कभी-कभी यदि आप सचेत नहीं रहते, वैराग्य मन्द पड़ जाता है या ध्यान में सुस्त हो जाते हैं, तो आप नीचे की ओर भी जा सकते हैं। प्रतिक्रिया आरम्भ हो जाती है।

जैसे कोई मनुष्य मूर्खतावश दो खरगोशों के पीछे भागे तो दोनों में से एक को भी नहीं पकड़ सकता, इसी तरह जो साधक दो विरोधी विचारों के पीछे भागता है, वह उन दोनों में से एक में भी सफल नहीं होता। यदि वह दश मिनट तक दिव्य विचार रखे और अगले दश मिनट तक उसके विरोधी सांसारिक विचार रखे तो उसे किसी बात में भी सफलता नहीं होगी और न ही दैवी ज्ञान प्राप्त होगा। आपको चाहिए कि अपना पूर्ण बल लगा कर एकाग्र मन से एक ही

खरगोश का पीछा करें। आप उसे अवश्य ही पकड़ लेंगे। आपको सदा केवल दिव्य विचार ही रखने चाहिए। तब आप निश्चय ही शीघ्र भगवत्साक्षात्कार कर लेंगे।

जब आप ध्यान का अभ्यास प्रारम्भ करें तो तुरन्त ही इसके फल की आशा करने में जल्दी न करें। एक युवती ने सन्तान प्राप्त करने की इच्छा से पीपल के वृक्ष की १०८ परिक्रमा की और तुरन्त ही यह देखने के लिए कि पेट में बच्चा आया या नहीं, वह अपने पेट पर हाथ फेरने लगी। यह निरी मूर्खता है। उसे कई महीने तक ठहरना होगा। यदि आत्मज्ञान के प्रतिपादक ग्रन्थों के पाठक, जिन्हें उन ग्रन्थों में आनन्द मिलता है, शीघ्र ही फल-प्राप्ति के लिए अधीर नहीं हो उठते; वरन् उन उपदेशों पर नियत समय पर क्रमबद्ध मनन करते हैं तो उनका मन धीरे-धीरे परिपक्व हो जाता है और अन्त में अनन्त आत्मा को प्राप्त कर लेते हैं। वे आत्म-साक्षात्कार प्राप्त कर लेते हैं।

प्रारम्भ में मन का साम्यभाव प्राप्त करने के लिए आपको प्रयास करना पड़ेगा। बाद में आपको स्वाभाविक ही मानसिक साम्यावस्था प्राप्त हो जायेगी। यही बात ध्यान के विषय में भी है। कुछ वर्षों तक अभ्यास करने से ध्यान स्वाभाविक हो जाता है।

आत्म-साक्षात्कार की शर्तें

जैसे आप पानी को नमक अथवा चीनी से सन्तृप्त करते हैं, उसी प्रकार आपको अपने मन को ईश्वर या ब्रह्म के विचार, दिव्य महिमा, दिव्य स्थिति, आत्मोद्बोधक उन्नत विचारों से सन्तृप्त करना होगा। तभी आप दिव्य ज्ञान में सदा स्थित रह सकेंगे। मन को ब्रह्म-विचार से सन्तृप्त करने से पूर्व आपको दिव्य विचारों को आत्मसात् करना होगा। प्रथम आत्मसात्करण तत्पश्चात् सन्तृप्तिकरण। तब बिना एक क्षण की देर किये हुए साक्षात्कार प्राप्त होता है। 'आत्मसात्करण, सन्तृप्तिकरण और साक्षात्कारकरण' -इस त्रिक को सदा स्मरण रखें।

अपने को मन के नीच विचारों से तथा अनेक निरर्थक संकल्पों से मुक्त कर लें। जैसे आप गँदले पानी को पावक पदार्थ डाल कर निर्मल कर लेते हैं, इसी प्रकार वासनाओं और मिथ्या संकल्पों से पूर्ण इस गँदले मन को भी ब्रह्म-चिन्तन के द्वारा पवित्र करना होगा। यदि मन बराबर विषय-भोगों में लगा रहता है तो संसार की सत्यता का भाव निश्चय ही बढ़ता है। यदि मन निरन्तर आत्म-चिन्तन करता है तो संसार स्वप्नवत् प्रतीत होता है। निरन्तर अथक आत्म-विचार करें। 'निरन्तर' शब्द पर ध्यान दें। यह आवश्यक है। तभी सच्चा प्रकाश प्राप्त होगा। तभी आत्मज्ञान का उदय होगा। चिदाकाश में ज्ञान-सूर्य का प्रकाश होगा।

गीता में आपको **'अनन्यचेताः', 'मच्चित्ताः', 'नित्ययुक्ताः', 'मन्मनाः' 'एकाग्रमनः', 'सर्वभावः'** इन शब्दों का प्रयोग बारम्बार मिलता है। इनका अर्थ यह है कि आपको अपना पूर्ण, शत-प्रति-शत मन भगवान् को देना होगा। तभी आत्म-साक्षात्कार प्राप्त होगा। यदि एक भी किरण बाहर को भागेगी तो दिव्य चेतना (ईश्वरीय ज्ञान) प्राप्त करना सम्भव नहीं है।

मन की क्रियाएँ ही वास्तविक कर्म हैं। मन को बन्धन-मुक्त कर देने से ही सच्ची मुक्ति मिलती है। जिन्होंने अपने को मन के विक्षेप से मुक्त कर लिया है, वे परम निष्ठा प्राप्त कर लेते हैं। यदि मन के सारे मल दूर हो जायें तो यह शान्त हो जायेगा और (जन्म-मरण-सहित) संसार का सारा मोह शीघ्र ही नष्ट हो जायेगा।

अहंभाव के कारण ही मन की सत्ता है। अहंभाव मन में केवल एक विचार है। अहंभाव और मन अभिन्न हैं। यदि अहंभाव का लोप हो जाये तो मन का भी लोप हो जायेगा। यदि मन का लोप हो जाये तो अहंभाव भी जाता रहेगा। तत्त्व-ज्ञान के द्वारा मन का नाश कर दें। 'अहं ब्रह्मास्मि' भावना से अहंभाव का नाश करें। निरन्तर तीव्र निदिध्यासन करते

रहें। जब मन का लोप हो जाता है और विचार भी बन्द हो जाते हैं तो नाम और रूप की भी सत्ता नहीं रह जाती, तब लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

परिच्छेद - ३४

समाधि

समाधि का अभिलक्षण

जब मन ध्येय पदार्थ में पूर्णतः लीन हो जाता है तो उसे समाधि कहते हैं। समाधि में मन ध्येय के साथ एकरूप हो जाता है, फिर न ध्यान रहता है और न ध्याता। ध्याता और ध्यान, विचारक और विचार की वस्तु तथा पुजारी और पूज्य एक हो जाते हैं। समाधि में त्रिपुटी का लय हो जाता है, मन को अपनी चेतना नहीं रहती और वह ध्यान की वस्तु से तद्रूप हो जाता है। ध्याता अपना व्यक्तित्व ईश्वर-रूपी सागर में विसर्जित कर देता है और ईश्वर का निमित्त मात्र बनने तक वहीं निमग्न तथा विस्मृत पड़ा रहता है। जब उसका मुख खुलता है तो वह बिना प्रयत्न के केवल ईश्वरीय प्रेरणा से ईश्वर के शब्द बोलता है और जब उसका हाथ उठता है तो ईश्वर उसके द्वारा आश्चर्यमयी घटना रचता है।

समाधि में चक्षु और कान भी काम नहीं करते तथा शारीरिक अथवा मानसिक चेतना नहीं रहती; केवल आध्यात्मिक चेतना रहती है, सत्ता मात्र रहती है। वही आपका सच्चा स्वरूप है। जब सरोवर का जल सूख जाता है तो जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब भी समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार जब मन ब्रह्म में लीन हो जाता है, मन-रूपी सरोवर सूख जाता है तो चैतन्य का प्रतिबिम्ब जीवात्मा भी समाप्त हो जाता है और केवल सत्ता मात्र अवशेष रह जाती है।

तुरीय वह आध्यात्मिक अवस्था है जहाँ मन की क्रिया नहीं रहती, जहाँ मन ब्रह्म में लीन हो जाता है। यह 'चतुर्थ आयाम' है, जहाँ अनन्त ब्रह्मानन्द है। यह अकर्मण्यता, विस्मृति या विनाश की स्थिति नहीं है। यह पूर्ण चेतनावस्था है जो अकथनीय है, सबका चरम लक्ष्य मोक्ष अथवा मुक्ति है।

सामान्यतः जब आप स्वप्न-रहित प्रगाढ़ निद्रा में होते हैं तो दो में से एक बात होती है या तो आप देखे हुए स्वप्न को याद नहीं रख सकते या आप बिलकुल अचेत निद्रा में पड़ गये-जो मृत्यु के समान है। परन्तु एक ओर सुषुप्ति की भी सम्भावना होती है जिसमें आप पूर्ण नीरवता, अमृतत्व तथा अपनी सत्ता के सभी भागों की शान्ति में प्रवेश कर जाते हैं और आपकी चेतना सच्चिदानन्द में प्रवेश कर जाती है। आप इसको निद्रा नहीं कह सकते; क्योंकि इसमें पूर्ण 'चेतना' रहती है। इस अवस्था में आप कुछ मिनट या घण्टों या दिन तक रह सकते हैं; परन्तु ये कुछ मिनट ही आपको इतनी विश्रान्ति दे देते हैं जितनी कि घण्टों की सामान्य निद्रा से नहीं प्राप्त हो सकती। यह अवस्था अकस्मात् ही प्राप्त नहीं होती। इसके लिए दीर्घ काल तक अभ्यास की आवश्यकता है।

समाधि शिला के समान जड़ दशा नहीं है, जैसा कि अनेक लोग समझते हैं। आत्ममय जीवन विनाश नहीं है। जब तक जीव संसारी भौतिक बन्धनों से घिरा रहता है तब तक ऐसी शक्तियाँ पूर्ण रूप में विकसित नहीं होतीं और जब वह इन भौतिक सत्ता के बन्धनों से परे हो जाता है तो उसका विश्व-जीवन गम्भीर और आत्मा समृद्ध हो जाती है, उसके आन्तरिक जीवन में वृद्धि होती है तथा उसका विश्व-जीवन और अति-विश्व-जीवन भी विशाल हो जाता है।

समाधि के विविध भेद

राजयोगी को चित्त-वृत्ति-निरोध द्वारा समाधि, भक्त को भगवत्प्रेम द्वारा भाव-समाधि तथा वेदान्ती को मिथ्यात्व-बुद्धि और अन्वय की रीति से अस्ति-भाति- प्रिय (सच्चिदानन्द) के चिन्तन द्वारा भेद-समाधि हो जाती है।

केवल राजयोगी वृत्तियों के नाश, निरोध-समाधि की चेष्टा करता है- **"योगश्चित्तवृत्ति निरोधः"** (पातंजल योगसूत्र : १-२) । वेदान्ती पदार्थों के सन्मुख आने पर उनमें सदा आत्म-भाव अथवा ब्रह्म-भाव रखता है। इसलिए वह वृत्तियों के नाश के लिए चेष्टा नहीं करता। उसके लिए प्रत्याहार नहीं है और न बहिर्मुख वृत्ति होती है। वह नाम-रूप का निराकरण करके अस्ति-भाति-प्रिय को ग्रहण करता है (भेद-समाधि)। भक्त सारे पदार्थों में नारायण या कृष्ण को ही देखता है। वेदान्ती की भाँति वह भी वृत्तियों का विरोध न करके अपनी मनोवृत्ति को बदल देता है। मन ही सारे भेद और पार्थक्य पैदा करता है। यदि आप अपना दृष्टिकोण और अपनी मनोवृत्ति को बदल दें तो संसार निरतिशय आनन्द ही है। आपको पृथ्वी पर ही स्वर्ग मिलेगा।

आप राजयोगी या भक्तियोगी या ज्ञानयोगी को केवल उसका शरीर हिला कर या शंख बजा कर उसकी समाधि से सामान्य विषयनिष्ठ चेतना में ला सकते हैं। रानी चुडाला ने अपने पति राजा शिखिध्वज को उसका शरीर हिला कर ही समाधि से सामान्य चेतना में उतारा था। भगवान् हरि ने शंख-ध्वनि द्वारा भक्त प्रह्लाद को समाधि से उतारा था।

हठयोग द्वारा समाधि

हठयोग का साधक सारे शरीर से प्राण को खींच कर शिर के ऊपरी भाग सहस्रार चक्र में ले जाता है। तब वह समाधि में प्रवेश करता है। इसलिए केवल उसका शरीर हिला कर उसे सामान्य विषयगत चेतना में लाना बहुत कठिन है। हठयोगी समाधि में कई वर्षों तक पृथ्वी के नीचे दबे रहते हैं। वे खेचरी मुद्रा द्वारा अपनी लम्बी जिह्वा से तालु के अन्दर पश्च नासारन्ध्र को बन्द कर देते हैं।

छाती में प्राण-वायु और गुदा में अपान वायु चलती है। जालन्धर, मूल और उड्डियान-बन्ध की यौगिक क्रिया द्वारा ये दोनों वायु मिल जाती हैं और मेरुदण्ड की सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश करती हैं। प्राण अपने साथ-साथ मन को भी ब्रह्म-नाड़ी के रूप में जानी जाने वाली सुषुम्ना नाड़ी के अन्दर खींच लेता है। प्राण को सुषुम्ना नाड़ी में चढ़ाते समय मूलाधार चक्र में ब्रह्म-ग्रन्थि को, मणिपूर चक्र में विष्णु-ग्रन्थि को और आज्ञा चक्र में रुद्र-ग्रन्थि को बड़े प्रयत्न के साथ काट देना चाहिए। ये ग्रन्थियाँ कुण्डलिनी के उत्थान में बाधक हैं। भस्त्रिका प्राणायाम इन ग्रन्थियों का भेदन करता है। जब मूलाधार चक्र सर्पिणी के रूप में साढ़े तीन बल खाये तथा मुख नीचे किये हुए सोती हुई कुल-कुण्डलिनी शक्ति आध्यात्मिक साधना द्वारा जाग्रत होती है तो वह ऊपर सहस्रार चक्र को चढ़ती है और मन तथा प्राण को भी अपने साथ ले जाती है। जब योगी का मन सुषुम्ना के अन्दर रहता है तो उसकी भौतिक चेतना बन्द हो जाती है और उसको संसारी विषय का ज्ञान नहीं रहता। वह संसार के लिए मृतप्राय हो जाता है और चिदाकाश में ही दृश्य देखता तथा गमन करता है। समाधि प्रारम्भ हो जाती है।

राजयोग द्वारा समाधि

गम्भीर ध्यान से समाधि अथवा परमात्मा के साथ तादात्म्य हो जाता है। यदि आप अपने मन को किसी एक वस्तु पर अथवा मूर्ति पर दश सेकेण्ड तक स्थिरता से एकाग्र कर सकें तो यह धारणा होती है। ऐसी दश धारणाओं को ध्यान कहते हैं। दश ध्यान से समाधि बनती है। मन आत्मा या ईश्वर से परिपूर्ण हो जाता है। वह अपनी चेतना खो कर ध्येय के साथ तच्चित्त, तन्मय अथवा तदाकार हो जाता है। जिस प्रकार नमक का बना हुआ खिलौना पानी में घुल जाता है उसी प्रकार मन निर्विकल्प समाधि में ब्रह्म में लीन हो जाता है। रहस्यमय ज्ञान की एक झलक मात्र से सारी पदार्थमय सत्ता का अन्त हो जाता है और संसार का विचार या स्मरण या इस संसार में जीव की सत्ता का संकीर्ण विचार आत्मा को बिलकुल छोड़ देता है।

यह नहीं कहा जा सकता कि पूर्ण योगियों में कब प्रत्याहार समाप्त हो कर धारणा प्रारम्भ होती है, कब धारणा समाप्त हो कर ध्यान लग जाता है और कब ध्यान समाप्त हो कर समाधि लग जाती है। जिस क्षण वे आसन पर बैठते हैं, ये सब क्रियाएँ बिजली के वेग की तरह क्षण-भर में एक-साथ ही हो जाती हैं और वे अपनी सचेतन इच्छा से समाधि में प्रवेश कर जाते हैं। नये साधकों में पहले प्रत्याहार होता है, तत्पश्चात् धारणा प्रारम्भ होती है और तदुपरान्त धीरे-धीरे ध्यान आरम्भ होता है। उनका मन समाधि के प्रकट होने से पहले ही असन्तुष्ट तथा क्लान्त हो कर गिर जाता है। लघु तथा पौष्टिक भोजन के साथ व्यवधान-रहित तीव्र साधना द्वारा समाधि प्राप्त करने में प्रत्याशित सफलता मिलती है।

यौगिक समाधि तथा वेदान्तिक समाधि

योगी और वेदान्त की निर्विकल्प अवस्थाओं में अन्तर होता है। योगी की दशा का सम्बन्ध मन और वेदान्ती की आत्मा या ब्रह्म से होता है। योगी की समाधि में ध्येय (ध्यान का विषय) बना रहता है, जब कि वेदान्ती की समाधि में केवल अस्ति शेष रहता है।

सविकल्प समाधि तथा निर्विकल्प समाधि

विषय-रूप संसार के मकान की निचली मंजिल विषयी जीवन है। पहली मंजिल सविकल्प समाधि की प्रतीक है, दूसरी मंजिल निर्विकल्प समाधि के तुल्य है और तीसरी मंजिल जीवन्मुक्त सहजावस्था की द्योतक है। सविकल्प समाधि की तुलना चलती हुई बैलगाड़ी से की जा सकती है। जब गाड़ी रुक जाये तो निर्विकल्प समाधि समझनी चाहिए और बैलों को खोल दिया जाये तो सहजावस्था हो गयी। जब योगी ध्यान और समाधि की चरमावस्था को प्राप्त हो जाता है, जिसकी अग्नि से उसके अवशिष्ट कर्म निःसन्देह भस्म हो जाते हैं तो उसे सद्योमुक्ति (जीवन्मुक्ति) मिल जाती है।

सविकल्प समाधि में ध्याता (ध्यान करने वाला), ध्यान और ध्येय (जिसका ध्यान किया जाये) यह त्रिपुटी रहती है; पर निर्विकल्प समाधि में यह त्रिपुटी नहीं रहती। निर्विकल्प का अर्थ है विकार तथा कल्पना-रहित। सविकल्प समाधि में मन ब्रह्म में पूर्णतया लीन हो जाता है। इसमें जो आनन्द प्राप्त होता है, उसे रसास्वाद कहते हैं। यह भी आध्यात्मिक अग्रगति में एक प्रतिबन्ध अथवा विघ्न होता है। यह आपको उसी स्थान पर रोक देता है। यह आपको मोक्ष नहीं दे सकता। आपको और भी अग्रसर होना चाहिए और उच्चतम निर्विकल्प समाधि प्राप्त करनी चाहिए जिसमें आपकी मुक्ति हो।

भक्तियोग-साधना के लाभ

इस युग में अधिकांश लोगों के लिए हठयोग और राजयोग का अभ्यास अनुकूल न होने पर भी प्रत्यक्षतः ठोस तथा आशु । फलप्रद होने की आशा के कारण इनके प्रति लोगों के मन में सदा ही अतीव सम्मोहक आकर्षण रहा है। बहुत से मनुष्यों का शरीर-गठन अच्छा और डील-डौल हृष्ट-पुष्ट नहीं होता। वे दुर्बल व्यक्ति होते हैं। आज के युग में बच्चे ही बच्चे उत्पन्न करते हैं। बालिकाएँ माता बनती हैं। इसलिए भक्तियोग सुगम और सुरक्षित मार्ग है। भगवन्नाम का जप कोई भी कर सकता है। कोई भी व्यक्ति प्रभु का गुणानुवाद कर सकता है। जैसे बिना माता के पुत्र नहीं हो सकता, उसी प्रकार अनन्य भक्ति के बिना ज्ञान नहीं हो सकता। जब भक्ति परिपूर्ण और परिपक्व हो जाती है तो साधक के अधिक प्रयत्न किये बिना ही ब्रह्म-ज्ञान का उदय स्वतः ही हो जाता है।

मन्त्र में बड़ी शक्ति होती है। यह मन को शुद्ध करता, उसमें वैराग्य उत्पन्न करता तथा वृत्ति को अन्तर्मुखी बनाता है। प्रत्येक मन्त्र का एक मन्त्रकार ऋषि, उसका अधिष्ठाता देवता, बीज (मूल-मन्त्र), शक्ति तथा मन्त्र-चैतन्य को छिपाने वाला कीलक होता है। निरन्तर तथा दीर्घ काल तक एकाग्र मन से भाव-सहित मन्त्रोच्चार करने से मन्त्र-चैतन्य जाग्रत हो जाता है और साधक को मन्त्र-सिद्धि प्राप्त होती है। सभी मन्त्रों में आध्यात्मिक प्रवाह हुआ करता है। मन्त्र भक्त के अपने लक्ष्य अथवा अन्तिम चक्र में प्रवेश तक उसकी आत्मा को एक चक्र से दूसरे चक तक ले जाता है। ध्रुव को नारद ऋषि के बताये हुए द्वादशाक्षर-मन्त्र 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' के जप से भगवान् हरि के दर्शन हुए थे। प्रह्लाद को 'नारायण-मन्त्र' के जप से महाविष्णु के दर्शन हुए थे। वाल्मीकि को 'मरा-मरा', जो जप करने से राम-नाम बन जाता है, जपने से ही ईश्वर-दर्शन हो गये थे। पण्ढरपुर के भगवान् श्रीकृष्ण की प्रसिद्ध मूर्ति का नाम 'विट्ठल विट्ठल' पुकारते रहने से महाराष्ट्रीय सन्त तुकाराम श्रीकृष्ण में लीन हो गये थे।

चिन्तन-पूरण-एकीकरण

ध्यान-काल में जो तीन क्रियाएँ मन में होती रहती हैं, उन्हें देखिए। वे हैं: चिन्तन, पूरण और एकीकरण। यह दूसरी त्रिपुटी है। इनके तत्त्वार्थ को याद रख कर साधना-काल में मन से इनको दोहराते रहने से बड़ी सहायता मिलती है।

आत्मा पर विचार करें। आत्मा से अपने मन को पूर्ण कर लें। फिर भ्रमर-कीट-न्याय के अनुसार मन ब्रह्म के साथ एकाकार हो जाता है। जैसा आप विचार करते हैं वैसा ही आप बनते हैं। विचार करते रहें कि 'आप ब्रह्म हैं' तो आप ब्रह्म ही बन जायेंगे।

जब मन का विषयों से प्रत्याहार कर गम्भीर चिन्तन आरम्भ किया जाता है तो विषयपरक चेतना बन्द हो जाती है तथा सवितर्क समाधि प्रारम्भ हो जाती है। यौक्तिकीकरण, विश्लेषण और संश्लेषण (पूर्वापर विचार-प्रणाली), अनुसन्धान तथा निरपेक्ष विवेचन होने लगता है। यह सवितर्क समाधि है। अब कुविचार नहीं प्रवेश कर सकते। मन सात्त्विक हो जाता है।

चित्त-शुद्धि के साथ दार्शनिक ग्रन्थों का गम्भीर परिशीलन समाधि का ही एक रूप है। इसमें मन सांसारिक विचारों से मुक्त हो जाता है।

जब आपका ध्यान गम्भीर हो जाता है तो आप केवल कारण-शरीर के द्वारा क्रिया करते हैं। कारण-शरीर की चेतना आपकी सामान्य चेतना बन जाती है। योगियों के सामान्य कारण-शरीर की चेतना होती है। श्री गौरांग, तुकाराम, तुलसीदास आदि के समान भक्तों ने अपने को कारण शरीर से मिला दिया था और उनकी सामान्य कारण-शरीर-चेतना थी। कारण-शरीर-चेतना का भक्त इस मांसमय शरीर में रहते हुए ब्रह्मलोक का अधिभोक्ता हो जाता है। वह ब्रह्म अथवा हिरण्यगर्भ के साथ मिल जाता है। उसे दिव्य ऐश्वर्य प्राप्त होता है, तो भी उसका पतला वायवीय शरीर होता है। वह अपना व्यक्तित्व रखता है। जैसे जलावर्त सम्पूर्ण जल-राशि में मिला हुआ भी होता है और उसकी पृथक् सत्ता भी होती है। यही अवस्था उस भक्त की होती है जो अपने कारण-शरीर से ईश्वर में जीवन यापन करता है।

वेदान्त के द्वारा समाधि कैसे प्राप्त करें

जप, प्राणायाम, सत्संग, स्वाध्याय, दान, यज्ञ, तप और निष्काम सेवा से मन को शुद्ध करें और फिर इसे ईश्वर की ओर लगायें। मन के संकल्प-विकल्प को नष्ट करें तथा मन की गति को आध्यात्मिक प्रवाह से मिला दें। 'मैं, तुम, वह, घट, पट' आदि नाना-भाव, द्वैत-भाव को छोड़ दें। उसके स्थान में केवल ब्रह्म-भावना रखें। तब समाधि स्वयमेव प्राप्त हो जायेगी।

अहंकार को नाश करने के चार उपाय हैं: दो (सकारात्मक तथा नकारात्मक) अद्वैत के, एक भक्तों का उन्मुक्त, अबाध तथा सम्पूर्ण आत्म-निवेदन और चौथा निष्काम कर्मयोगियों का पूर्ण आत्म-त्याग।

वेदान्त की **'नेति-नेति'** विधि यह है कि "मैं शरीर नहीं हूँ, मैं मन नहीं हूँ।" **"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः"** केवल ब्रह्म ही सत्य है। जगत् मिथ्या है। जीव तथा ब्रह्म एक ही हैं। शरीर भी जगत् के अन्तर्गत ही है। इसी विचार पर चिन्तन करें। अहं लुप्त हो जायेगा। सकारात्मक विधि यह है कि आत्मा ही सब-कुछ है : "सर्व खल्विदं ब्रह्म" सब-कुछ ब्रह्म है। ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

समाधि के लिए साधना में बुद्धिमत्तापूर्ण मिताचार अपरिहार्य

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ।।

(मुण्डकोपनिषद्-२-२-८)

उस कार्य और कारण-स्वरूप परात्पर ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेने पर इस जीव की हृदय-ग्रन्थि टूट जाती है, समस्त संशय नष्ट हो जाते हैं और समस्त कर्म क्षीण हो जाते हैं।

एक बुद्धिहीन मक्खी यह जानती है कि अमुक वृक्ष में फूल खिल रहे हैं, बड़ी तीव्र गति से चलती है और उस वृक्ष से आगे निकल जाती है, उलटी फिर कर जब तक वह फूलों के पास पहुँचती है, उनका रस समाप्त हो चुकता होता है। दूसरी मूर्ख मक्खी मन्द गति से चलती है और जब तक फूलों के पास तक पहुँचती है, उनका रस समाप्त हो चुका है। दूसरी तरफ, एक चतुर मक्खी एक-सी गति से चलती हुई पुष्प-समूह के पास पहुँच कर उनके रस से अपने हृदय को तृप्त कर लेती है, उसका मधु बनाती है और उसके स्वाद से सुख पाती है।

इसी प्रकार शल्य-चिकित्सा के विद्यार्थियों में, जो जल के पात्र में रखी हुई कमल की पत्ती पर काम कर रहे हैं, एक मूर्ख विद्यार्थी चाकू तेजी से चलाता है और या तो पत्ती के दो टुकड़े कर देता है या उसे जल में डुबा देता है। दूसरा मूर्ख विद्यार्थी उसको काटने या डुबा देने के भय से पत्ती को चाकू से छूने का साहस तक नहीं करता। चतुर विद्यार्थी एक-से बल से पत्ती पर चाकू चलाता है; अपना पाठ्यक्रम पूरा करता है और अवसर मिलने पर इसी प्रकार अपने व्यवसाय में काम करके धनोपार्जन करता है।

एक और उदाहरण लीजिए-राजा की आज्ञा निकलती है, "जो कोई ४० गज लम्बा मकड़ी का जाला लायेगा, उसे पुरस्कार-स्वरूप ४००० मुद्राएँ मिलेंगी।" एक मूर्ख मनुष्य शीघ्रता से जालों को खींचता और उसे स्थान-स्थान पर तोड़ देता है। दूसरा मूर्ख मनुष्य उसके टूट जाने के भय से जाले को अपने हाथ से छूने तक का साहस नहीं करता। दूसरी ओर चतुर मनुष्य एक-से बल से लकड़ी के सिरे पर जाले को लपेट लेता है, उसे ले आता है और पुरस्कार प्राप्त कर लेता है।

एक चौथा उदाहरण है। एक मूर्ख नाविक प्रबल वायु चलने पर अपनी नाव की पतवार खोल देता है जिससे वायु के बल से नाव अपने मार्ग से भ्रष्ट हो जाती है। दूसरा मूर्ख नाविक मन्द वायु में भी पतवार समेट लेता है और नाव जहाँ थी, वहीं रह जाती है। दूसरी ओर चतुर नाविका मन्द वायु में पतवार खोल देता है और तीव्र वायु में पतवार गिरा देता है और सुरक्षित रह कर अपने स्थान पर पहुँच जाता है।

इसी प्रकार जब गुरु जी अपने छात्रों को सूचित करते हैं कि जो कोई इधर-उधर तेल गिराये बिना नली में भर देगा, उसे पुरस्कार मिलेगा तो मूर्ख विद्यार्थी पुरस्कार के लोभ में जल्दी-जल्दी तेल भरता है और तेल गिरा देता है। दूसरा मूर्ख विद्यार्थी तेल गिरने के भय से उसे भरता ही नहीं। चतुर विद्यार्थी हाथ साध कर तेल भरता है और पुरस्कार प्राप्त कर लेता है।

इसी प्रकार जब साधना में सफलता का लक्षण प्रकट होता है तो एक साधक कहता है, “मैं शीघ्र समाधि प्राप्ति कर लूँगा।" और प्रबल प्रयत्न करता है; परन्तु उसका मन जल्दी थक कर शिथिल हो जाता है जिससे वह समाधि नहीं प्राप्त कर सकता। दूसरा साधक प्रबल प्रयत्न में दोष देखता है, वह प्रयत्न छोड़ देता है और सोचता है, "समाधि से मुझे क्या लाभ है?" उसका मन अत्यधिक शक्ति-मन्दता के कारण आलसी हो जाता है और वह भी समाधि प्राप्त करने में असफल रहता है। परन्तु जो मनुष्य समझ तथा शान्ति के साथ समान शक्ति से इस आलसी मन को आलस्य से, इस विक्षिप्त मन को चिन्तन-विक्षेप से मुक्त कर थोड़ा-थोड़ा लक्ष्य की ओर ले जाता है, वह अपने लक्ष्य ब्रह्म पर पहुँच कर निर्विकल्प समाधि अद्वैत-निष्ठा प्राप्त कर लेता है। आप भी ऐसे ही साधक बनें।

मौन हो जायें। अपने-आपको जान लें। उस ब्रह्म को जान लें। मन को उसी में घुला दें। सत्य बहुत पवित्र और सीधा है।

परिच्छेद-३५

मनोनाश

अज्ञान और अविवेक के कारण मन अपने मिथ्या व्यक्तित्व को सत्य जानता है तथा अपने को सारे कर्मों का कर्ता मान लेता है और इस भाँति अहंकारी बन जाता है। वह कल्पना करता है, "मैं बन्धन में हूँ।" वह अपने को जीवात्मा से अभिन्न मानता है और स्वयं जीवात्मा बन जाता है तथा अच्छे-बुरे कर्म करने और उनका फल भोगने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लेता है। मन ही कर्मों का कर्ता है, अतः कर्मों का दायित्व उस पर ही रहता है।

मन आत्मा को चुराने वाला चोर है। यह चोर है। मन जीवात्मा को विषयों में घसीटता है। जीवात्मा आभास चैतन्य है। मन और जीवात्मा सदा साथ-साथ रहते हैं। एक को दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता। आत्मा को चुराने वाले मन को विचार, मनन और ब्रह्म पर निदिध्यासन द्वारा मार दें।

एक पल में समग्र संसार को बनाने या मिटा देने की शक्ति मन में है; इसलिए इस आत्महन्ता मन का नाश वासनाओं का क्षय करके या प्राणायाम से या ब्रह्म-विचार तथा महावाक्य-चिन्तन से करें। सबको दुःख में डालने वाली इस माया के संकट को दूर करने का सबसे उत्तम उपाय मन को नाश कर देना है। मनोनाश के साथ-साथ काल-त्रय-भूत, वर्तमान तथा भविष्य-शून्य में विलीन हो जाते हैं और आत्मतत्त्व का उदय प्रारम्भ हो जाता है।

जब दीर्घ काल तक वासना-क्षय, मनोनाश और तत्त्वज्ञान का साथ-साथ अभ्यास किया जाये तो ये फलदायक होते हैं। इनका अभ्यास एक-साथ ही करना चाहिए। जब तक इनका अभ्यास बारम्बार एक-साथ नहीं किया जाये तो सौ वर्ष तक भी परम पद प्राप्त नहीं किया जा सकता। दीर्घ काल तक इन तीनों का अभ्यास करते रहने से हृदय की सुदृढ़ ग्रन्थियाँ निःसन्देह कट जाती हैं जैसे कमल की डण्डी को तोड़ने से उसके अन्दर के तन्तु भी टूट जाते हैं।

मनोनाश का अर्थ

मनोनाश का तात्पर्य अपना नाश नहीं है। वेदान्ती मन का विभाग उच्च और नीच (उत्तम और निकृष्ट) दो प्रकार का करते हैं। इनमें से निकट मन का ही, जो वासनाएँ, उत्पन करता है, नाश करने को कहा गया है।

वासनाओं, संकल्पों और अहंकार का नाश करने का तात्पर्य मनोनाश अथवा अपनस्कता है। अहंकार, राग-द्वेष और सम्पूर्ण वासनाओं को क्षय कर देना ही मनोनाश है। बासनाओं के नाश से मनोनाश होता है। मनोनाश का अभिप्राय यह नहीं है कि आप तलवार ले कर मन के टुकड़े-टुकड़े कर डालें।

मनोनाश से अर्थ है-मन के इस वर्तमान रूप (भावुक तथा कामुक नैसर्गिक मन) को भार देना जो अभेद होते हुए भी भेद देखता है और जो शरीर तथा आत्मा को अभिन्न धानता है। यधार्थ में इसके नाश से अर्थ है-इसका समष्टि चेतना में रूपान्तरण तथा हत्परिणाम-स्वरूप समष्टि चेतना का उदय।

बहुसंख्यक मनुष्य केवल अन्नमय-कोश में ही रहते हैं। उनके विचार शरीर धोने में, छाने और पहनने में ही लगे रहते हैं। यहीं तक उनका कार्य सीमित रहता है। शिक्षित कहलाने वाले लोग भी अन्नमय कोश में रहते हैं। कभी-कभी वे मनोमय-कोश में रहते हैं। आध्यात्मिक साधक और विवेकी विज्ञानमय कोश में रहते हैं। विज्ञानमय-कोश का विकास अमूर्त चिन्तन तथा तर्क, नियमित ध्यान, ब्रह्मचिन्तन तथा उपनिषद्, योगवासिष्ठ और ब्रह्मसूत्र के स्वाध्याय द्वारा होता

है। वेदान्त-साहित्य के स्वाध्याय और शुद्ध विचार गुण आपको अपने विज्ञानमय-कोश का विकास करना चाहिए। तब आप सुरक्षित हो जायेंगे। मन आपको धोखा देना और दुःख पहुँचाना बन्द कर देगा।

अन्तःकरण का लय-चिन्तन

मन महत् या बुद्धि में लय होता है। व्यष्टि बुद्धि समष्टि बुद्धि में लय होती है। समष्टि बुद्धि अव्यक्त में लय होती है और अव्यक्त ब्रह्म में लय होता है। यह अन्तःकरण का तप-चिन्तन है।

शाम्भवी मुद्रा, भृकुटी-दृष्टि, नासिकाग्र-दृष्टि, नादानुसन्धान-ये सब लययोग के जग हैं। इनके अभ्यास से मन का लय शीघ्र हो जाता है और उन्मनी अवस्था ऊपर आ जाती है। लययोगियों की उन्मनी अवस्था वही होती है जो भक्तों की भाव-समाधि है। शाम्भवी मुद्रा में नेत्र खुले रहते हैं; परन्तु मन ध्यान के लक्ष्य पर एकाग्र किया जाता है। ऑखें बाहरी पदार्थों को नहीं देखतीं।

जब मन और इन्द्रियाँ दुर्बल और अन्ततः संयत हो जाती हैं तो अन्तःकरण का व्यापार भी बन्द हो जाता है। जीवत्व (अर्थात् दर्शन और गति) का भी लोप हो जाता है। और ब्रह्मत्व अवशेष रह जाता है। यह केवल अस्ति है।

मनोनाश के दो प्रकार

मनोनाश दो प्रकार का है- (१) स्वरूप मनोनाश, तथा (२) अरूप मनोनाश। पहला जीवन्मुक्तों में पाया जाता है और दूसरा विदेहमुक्तों में।

मनोनाश की विधि

मनोनाश के पाँच उपाय हैं: दो योग-मार्ग के हैं और तीन ज्ञान-मार्ग के। (१) जब कोई विचार पैदा हो, उसे भगा दें। अपने मन से कहें, 'नेति-नेति' - यह विचार नहीं, यह विचार नहीं। मुझे यह विचार नहीं चाहिए। (२) प्रतिपक्ष-भावना। जो विचार मन में उठे, उसके प्रतिकूल विचार उपस्थित करें जैसे घृणा के प्रतिपक्ष में प्रेम, भय के प्रतिपक्ष में साहस आदि। (३) ब्रह्म-भावना बनाये रखें। सारे संकल्प स्वयं मर जायेंगे। (४) आप केवल मन को साक्षी-रूप से देखें। उदासीन बने रहें। (५) सदा इस बात की जिज्ञासा करते रहें कि 'मैं कौन हूँ?' सारे विचार मर जायेंगे। विचारशील व्यक्ति का मन क्षीण हो कर शून्य बन जाता है। यह 'नेति-नेति' या प्रतिपक्ष भावना से सुगमतर उपाय है।

संकल्प, इच्छा, राग, द्वेष, अहंकार और मन-ये जीव-रूपी प्रासाद की छह ईटे हैं। ये जीव-रूपी जंजीर की छह कड़ियाँ हैं। एक भी ईंट या कड़ी का नाश कर देने से सारे प्रासाद या जंजीर का नाश हो जाता है।

इसलिए नित्य इस मन-रूपी वृक्ष की संकल्प-नामक शाखाएँ काटते रहें और अन्त में इस मन-रूपी वृक्ष को भी आमूल उखाड़ फेंकें। शाखाओं काटना गौण कार्य है। मुख्य काम तो 'मैं' को हटा कर इस वृक्ष का ही नाश कर देना है; इसलिए यदि सत्कर्मों द्वारा इस मनो-वृक्ष की जड़ अहंभाव को मिटा देंगे तो यह वृक्ष फिर उत्पन्न नहीं होगा।

शक्ति, सम्पत्ति, धन और विद्या अभिमान को दृढ़ कर देते हैं और मन को भी स्थूल बना देते हैं। अभिमान और मन को दुर्बल करने के लिए इनका त्याग करना चाहिए। वैराग्य और त्याग के द्वारा मन को दुर्बल कर देना होगा। जब मन धागे के समान तनु (क्षीण) हो जाये तो इसे तनुमानसी अवस्था कहते हैं।

प्राणायाम (हठयोग-मार्ग) के द्वारा या चित्तवृत्ति-निरोध-'योगश्चित्तवृत्ति- निरोधः' (महर्षि पतंजलि के राजयोग-मार्ग) के द्वारा मनोनाश किया जा सकता है। मन के संयम से प्राणावरोध होता है और प्राण के संयम से मन का निरोध होता है; क्योंकि प्राण और मन का एक ही सम्बन्ध हैं। ध्यान के समय श्वास की गति बहुत मन्द हो जाती है। जो ध्यान

का अभ्यास करते हैं, उन्हें यह बात मालूम है। इससे पता चलता है कि मन की धारणा (एकाग्रता) होने से प्राण स्वयं ही बिना किसी प्रयत्न के रुक जाता है। प्राणायाम से मनोनाश नहीं हो सकता, कुछ समय के लिए वृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं।

चित्त में परमात्मा का निरन्तर और शुद्ध विचार प्राकृतिक कुम्भक कर देगा और मन हृदय में लय हो जायेगा। यही वह परम गति है जिसकी कामना ऋषि-मुनि करते हैं। मन का लय हो जाना परमानन्द या मोक्ष है। आत्मा के साक्षात्कार द्वारा मनोनाश हो जायेगा और अनन्त सुख उत्पन्न करेगा। इस साक्षात्कार में द्रष्टा, दृष्टि और दृश्य एक हो जाते हैं।

मनोनाश और मनोलय

ध्यान के पदार्थ में मन का तात्कालिक लीन हो जाना मनोलय कहलाता है। जब आप भगवान् श्रीकृष्ण की मूर्ति का ध्यान करते हैं तो कुछ समय के लिए मन भगवान् श्रीकृष्ण की मूर्ति में लीन हो जाता है।

निद्रा में मनोलय हो जाता है और मन अपने कारण मूल अविद्या में प्रवेश कर जाता है।

ब्रह्मज्ञान-प्राप्ति के लिए मनोलय पर्याप्त नहीं है, अपितु मनोनाश आवश्यक है। मनोलय में मन फिर जीवित हो जाता है; परन्तु मनोनाश में मन फिर जीवित नहीं हो सकता। मनोलय आपको बन्धन से नहीं छुड़ा सकता, न ही यह आपको मुक्ति ही दिला सकता है। केवल मनोनाश ही मोक्ष दिला सकता है। मनोनाश ब्रह्मज्ञान के द्वारा होता है।

परिच्छेद - ३६

मन की तुलना

मन भूत के समान है

मन एक अशान्त भूत के समान है। एक समय एक ब्राह्मण पण्डित ने मन्त्र-सिद्धि के द्वारा एक भूत को वश में कर लिया। भूत ने पण्डित से कहा-'मैं आपके लिए कोई भी काम एक मिनट में कर सकता हूँ। आप मुझे सदा कुछ-न-कुछ काम बताते रहें। यदि आप एक सेकेण्ड के लिए भी मुझे बिना काम के रखेंगे तो मैं आपको तत्काल खा जाऊँगा।" पण्डित सहमत हो गये। भूत ने पण्डित के लिए एक तालाब खोदा, उसके खेतों में हल चलाया और थोड़े समय में अनेक प्रकार के काम कर दिये। अब पण्डित जी भूत को कुछ और काम नहीं दे सके। भूत ने उन्हें धमकाया, "अब मेरे लिए कुछ काम नहीं है। मैं तुम्हें निगल जाऊँगा।" पण्डित जी बहुत घबरा गये। उनकी समझ में नहीं आया कि क्या करना चाहिए। वे अपने गुरु जी के पास गये और उनको सारी बात बतायी। उनके गुरु ने कहा- "हे चेले! अपनी बुद्धि का प्रयोग करो। अपने घर के सामने एक बड़ा, दृढ़, चिकना लकड़ी का खम्भा गाड़ दो। उस पर तेल, मोम और दूसरे चिकने पदार्थ लगा दो। भूत से कहो कि दिन और रात इस खम्भे पर चढ़े और उतरे।" चेले ने ऐसा ही किया और भूत का निग्रह कर लिया। अब भूत बिलकुल निरुपाय हो गया। इसी प्रकार आपको उचित है कि मन को सर्वदा कुछ-न-कुछ काम-यथा जप, ध्यान, स्वाध्याय, सेवा, कीर्तन, प्रार्थना, प्राणायाम देते रहें। इसको सदैव पूरी तरह काम में लगाये रखें। तभी मन सुगमता से वश में हो सकता है। आप शारीरिक और मानसिक ब्रह्मचर्य में स्थित हो सकते हैं।

पारे की भाँति बिखर जाता है

मन की क्रिया की गतिशील पारे से तुलना की जा सकती है। यदि आप थोड़ा-सा पारा भूमि में रख दें तो यह छोटे-छोटे टुकड़े हो कर इधर-उधर फैल जायेगा। आप उन टुकड़ों को समेट नहीं सकते। इसी प्रकार मन की किरणें भी अनेक दिशाओं (विषय-भोगों) में बिखरी हुई हैं। इनको इकट्ठा करना कठिन हो जाता है। वैराग्य और अभ्यास मन को एकाग्र करने में सहायक होते हैं।

गली के कुत्ते के समान निर्लज्ज है

मन की तुलना गलियों में फिरते हुए उस निर्लज्ज कुत्ते से की जा सकती है जिसके शरीर पर अनेक घाव हो गये हैं। कुत्ता एक घर के द्वार पर जाता है। कोई इसे पत्थर मारता है और यह भाग जाता है। यह फिर दूसरे घर पर जाता है। वहाँ भी इसकी खूब मार-पिटाई होती है। फिर यह पहले ही घर पर आ जाता है, जहाँ इसे पत्थर मारा गया था। अब की र कोई बड़ा-सा पत्थर मार देता है और इस पर दूसरा घाव हो जाता है। बार-बार बार प्रचण्ड घाव लगते रहने पर भी

कुत्ता अपनी घूमने की आदत को कभी नहीं छोड़ेगा। इसी प्रकार मन भी विषय-भोगों की ओर दौड़ता है यद्यपि इसको बड़े-बड़े कष्ट, दुःख, शोक और वेदनाएँ मिलती हैं। यह अपनी पुरानी आदत को कभी नहीं छोड़ेगा। आपको इस निर्लज्ज मन को पीटना पड़ेगा और बारम्बार भाव-सहित ओंकार उच्चारण के सहित इसको अपने स्रोत (ब्रह्म) में लौटा कर ले जाना होगा। इसे आत्मा का अनन्त आनन्द चखने दें। तभी यह अपने नित्य शान्ति के निवास ॐ में विश्राम पायेगा।

टेनिस के गेंद के समान कूदता है

जब आप टेनिस खेलते हैं तो गेंद आकाश में बहुत ऊँचा चला जाता है और दूसरे क्षण यह भूमि पर आ गिरता है। इसी प्रकार नवीन साधकों में ध्यान के प्रारम्भ में बहुत थोड़े काल तक मन दिव्य महत्त्व तक ऊँचा जाता है, किंचित् काल तक सात्त्विक गुणों में रहता है और तुरन्त ही नीचे गिर कर अपने पुराने गन्दे रास्तों पर पड़ कर निरर्थक घृणास्पद विचारों में संलग्न रहता है। उन्नतिशील आत्मा की नयी ज्योति इन वीभत्स विचारों पर काँप उठती है। कोई बात नहीं है। आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिए। जैसे अच्छे हाथ के प्रहार अथवा मोड़ से गेंद को फिर आकाश में चढ़ा देते हैं इसी प्रकार आपको भी प्रयत्न करके मन को फिर से दिव्य महत्त्व और दिव्य चेतना के उच्च शिखर पर चढ़ाना होगा।

दर्पण के समान प्रतिबिम्बित करता है

मनुष्य के मन की तुलना दर्पण से की जाती है जिसमें ब्रह्म-तत्त्व का प्रतिबिम्ब झलकता है। इस तत्त्व का जितना विस्तार आप जानते हों, वह आपके मन की अवस्था पर निर्भर होता है कि वह तत्त्व के पूर्ण विकास के अनुकूल है या नहीं। अन्धे पर रंग प्रकट नहीं होते, बहरे को गायन का सार मालूम नहीं होता और दुर्बल मन-युक्त मनुष्य पर दार्शनिक सिद्धान्त प्रकट नहीं होते- "नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।" यदि मन में कोई धब्बा या त्रुटि रहे तो तत्त्व का प्राकट्य भी विकृत और अपूर्ण होगा। स्वार्थपूर्ण कामनाएँ मन-रूपी करण और प्रकट होने वाले तत्त्व के बीच में अड़ जाती है। गुप्त वासनाएँ साधक पर विविध प्रकार से आक्रमण करती हैं। साधकों को बड़े गम्भीर अन्तर्निरीक्षण द्वारा सर्वदा मन पर दृष्टि रखनी चाहिए। जब कर्ता का व्यक्तित्व करण की प्रकृति को प्रभावित करता है तो तत्त्व का प्रतिबिम्ब धुँधला पड़ता है।

यदि आप किसी कुत्ते के सामने एक दर्पण और एक रोटी रख दें तो कुत्ता दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देख कर तत्काल भौंकता है। मूर्खतावश वह समझता है कि वहाँ एक दूसरा कुत्ता है। इसी प्रकार मनुष्य अपने ही मन-मुकुर में सारे मनुष्यों में अपना ही प्रतिबिम्ब देखता है; परन्तु कुत्ते के समान मूर्खता से समझता है कि वे सब उससे भिन्न है और घृणा, ईर्ष्या तथा द्वेष से उनसे झगड़ा करता है।

लंगर के समान

दीवार घड़ी में लगा हुआ लंगर दाहिने और बायें चलता रहता है। जब बच्चे झूले पर झूलते हैं तो झूला कभी एक ओर को ऊँचा उठ जाता है और कभी दूसरी ओर को। इसी प्रकार जो साधक गम्भीर ध्यान में स्थित नहीं हुए हैं, उनके मन भी लंगर या झूले के समान होते हैं। वे कभी कर्मयोग का विचार करते हैं, संसार में आ कर कर्म करते हैं और कभी वे ध्यानपरायण जीवन यापन करने के लिए हिमालय को भागते हैं। एक आन्तरिक संघर्ष हुआ करता है कि कर्मयोग ग्रहण करें या ध्यानयोग। आपको इसका निश्चय सदा के लिए करना होगा और कर्मयोग अथवा कुछ वर्षों तक ध्यानाभ्यास के लिए एक कमरे में अथवा गुहा में अपने को बन्द करने में से जिसका भी निश्चय करें, उसी के अभ्यास में दृढ़ता से जुट जाना होगा। छह महीने तक संसार में कर्मयोग का अभ्यास और फिर छह महीने तक अरण्य में ध्यानयोग

का अभ्यास करने से कुछ लाभ नहीं होगा। एक ओर का निश्चय कर लें। संशय की गाँठ को काट डालें। जब तक चित्त-शुद्धि न हो तब तक कर्म करते रहें। तत्पश्चात् साक्षात्कार प्राप्त होने तक ध्यान करें। यही सबसे उत्तम मार्ग है।

टेनिस के गेंद के समान नीचे गिरता है

यदि आप टेनिस के गेंद को सबसे ऊँची सीढ़ी पर से नीचे गिरा दें तो वह बीच में किसी सीढ़ी पर नहीं रुकेगा। वह तुरन्त निचली मंजिल में आ गिरेगा। इसी प्रकार यदि आप उपयुक्त बचाव नहीं करेंगे, यदि आप संसारी मनुष्यों से ज्यादा मिलेंगे तो टेनिस के गेंद के समान आपका पतन होगा। जिस मन को आपने आध्यात्मिक अभ्यासों द्वारा छह या आठ वर्ष में ऊँचा चढ़ाया था, उसे विविध मलिनताओं के धब्बे लग जायेंगे। इसलिए, हे साधको! सचेत रहो।

विविध तुलनाएँ

मन की तुलना छोटी वस्तुओं को ढोने वाले एक छोटे जलपोत से की जा सकती है; क्योंकि मन में वासनाएँ, तृष्णाएँ, संस्कार, वृत्तियाँ, विचार, गुण आदि भी होते हैं।

मन की तुलना एक धर्मशाला से की जा सकती है; क्योंकि काम, क्रोध, अभिमान, दम्भ, अहंकार आदि वृत्तियाँ मन में विश्राम करती हैं। मन उन वृत्तियों की धर्मशाला है।

मन की तुलना राजपथ से की जा सकती है। राजपथ पर कोई भी व्यक्ति चल सकता है। सभी प्रकार के लोग राजपथ पर चलते रहते हैं। इसी प्रकार सभी प्रकार के विचार मन में विचरण करते रहते हैं।

मन की तुलना वेश्या-गृह से की जाती है; क्योंकि यह वेश्या की भाँति एक क्षण एक पदार्थ से तो दूसरे क्षण दूसरे पदार्थ से आसक्त रहता है, एक क्षण एक पदार्थ से तो दूसरे क्षण दूसरे पदार्थ से राग रखता है।

मन की तुलना मृग से की जाती है; क्योंकि यह अस्थिर है। इसकी तुलना मर्कट से की जाती है; क्योंकि यह एक पदार्थ से दूसरे पर कूदता फिरता है। इसकी तुलना पक्षी से की जाती है; क्योंकि यह पक्षी की भाँति उड़ता रहता है। इसकी तुलना वायु से की जाती है; क्योंकि यह वायु के समान प्रचण्ड है। मन की तुलना पिशाच से की जाती है; क्योंकि यह पिशाच की भाँति व्यवहार करता है।

मन की तुलना बच्चे से की जाती है; क्योंकि इसे छड़ी से पीटने की आवश्यकता होती है। मन की तुलना इंजन से की जाती है; क्योंकि यह आहार-ईंधन-प्रदान करने पर ही कार्य करता है।

मन की तुलना उद्यान से की जाती है। उद्यान में पुष्प होते हैं। आप उद्यान में अनेक प्रकार के पुष्प उगा सकते हैं। इसी प्रकार आप मन-रूपी उद्यान में शान्ति, समदृष्टि, सन्तोष आदि के पुष्प उगा सकते हैं।

मन की तुलना मन्दिर से की जाती है। जब मन शुद्ध होता है, जब काम, लोभ आदि कुवृत्तियाँ नष्ट हो जाती है, तब प्रभु मन में आसन ग्रहण करते हैं और इस भाँति यह प्रभु के मन्दिर का रूप ले लेता है।

मन की तुलना पुष्प से की जाती है; क्योंकि भक्त इसे प्रभु को अर्पित करता है।

उपनिषद् के अनुसार मन की तुलना लगाम से की जाती है। जो मन की लगाम कस कर पकड़े रखता है, वह आनन्द-धाम को प्राप्त कर सकता है।

परिच्छेद - ३७

ज्ञानयोग का सार

ज्ञान क्या है?

तत्त्व-ज्ञान मनुष्य के अपने ही मन के दुःखों से छुटकारा पाना है जो उसे मोक्ष की ओर ले जाता है। आध्यात्मिकता की ओर की हुई चेष्टाओं के द्वारा मन ज्ञान-स्वरूप हो जाता है; परन्तु अज्ञान के द्वारा यह सांसारिक स्वभाव का हो जाता है। यदि मन को ज्ञान-रूपी जल से स्नान कराया जाये और इसकी सारी मलिनता धो डाली जाये तो मोक्ष के लिए प्रयत्न करने वालों के लिए यह अपने स्वाभाविक तेज से प्रकाश करेगा। जब मन ज्ञान के द्वारा सारी कामनाओं से रहित हो कर अपने सूक्ष्म रूप का भी नाश कर देता है, तब जो आनन्द उत्पन्न होता है, वही सच्चा आनन्द है।

ज्ञानयोग की महिमा

हठयोगी अपनी साधना अपने शरीर और प्राण से, राजयोगी अपने मन से तथा ज्ञानयोगी अपनी बुद्धि और इच्छा से आरम्भ करता है। वस्तुतः ज्ञानयोगी अपनी साधना सीधे ब्रह्म से आरम्भ करता है। वह बराबर कहता रहता है : "अहं ब्रह्मास्मि ।" जो ब्रह्म पर अपना मन स्थिर करने का प्रयत्न कर रहा है, वह सबसे ऊँचा कर्मयोग, सबसे ऊँचा यज्ञ, सबसे ऊँचा धर्म और सर्वोत्तम दान कर रहा है। उसे न तीर्थों में जाने की और न दान देने की आवश्यकता है।

ज्ञानयोग के साधक के लिए अर्हताएँ

आध्यात्मिक साधक या सच्चे जिज्ञासु से बाह्य पदार्थों से, विविध ऐन्द्रिक विषयों से उपरति के साथ-साथ आध्यात्मिक तन्मयता तथा आभ्यन्तर विषयों पर एकाग्रता की क्षमता की अपेक्षा की जाती है। जब तक आपकी इन्द्रियाँ अपनी क्रिया बन्द न कर दें, तब तक शुद्ध आत्मा की वाणी सुनायी नहीं दे सकती।

ज्ञानयोग के पथ के साधकों के लिए वेदान्त की प्रारम्भिक साधना के रूप में चार साधन-साधन-चतुष्टय-बताये गये हैं। मुक्ति के इन चार साधनों में से एक षट्-सम्पत् है। इन छह सम्पत्तियों में शम, दम और समाधान वास्तव में मन के निग्रह करने के लिए यौगिक साधन हैं। राजयोगियों का वासना-त्याग के द्वारा चित्त-वृत्ति-निरोध शम है, वही वेदान्तियों का शम है, प्रत्याहार ही दम है। समाधान योगियों की एकाग्रता है। हंस पक्षी मोक्ष के योग और ज्ञान दो पंख हैं।

शम और दम-ये दोनों षट्सम्पत् के महत्त्वपूर्ण विषय हैं। ये वस्तुतः योग की क्रियाएँ हैं। जब इनकी साधना पूरी हो जाती है तो श्रवण और मनन का आश्रय लेना होता है। गम्भीर निदिध्यासन आरम्भ करने पर तीन वर्ष तक एकान्त-वास आवश्यक होता है।

मन को शुद्ध करने से ही ब्रह्म-ज्ञान नहीं मिलता। शुद्ध मन अलौकिक ज्योति और आनन्द को प्राप्त करने योग्य हो जाता है। मन को शुद्ध करने के उपरान्त श्रवण, मनन और निदिध्यासन का आश्रय लेना होता है।

श्रवण, मनन और निदिध्यासन-ये वेदान्त की तीन प्रक्रियाएँ ज्ञानाद्वैत-निष्ठा के लिए हैं। यह तीन डण्डों वाली सीढ़ी है जिसके द्वारा वेदान्ती ब्रह्म तक चढ़ जाता है। यदि आप श्रुति (वेदों और शास्त्रों) का श्रवण एक बार करें तो मनन दश बार करें और उसका निदिध्यासन सौ बार अथवा हजार बार करें। तभी सच्ची फल-प्राप्ति होती है।

अन्तर्मुख वृत्ति, परिवर्तित दृष्टिकोण, वैराग्य और मुमुक्षुत्व वाला मनुष्य ही वेदान्त के स्वाध्याय, ॐ के अभ्यास और ज्ञान-योग के विचार का अधिकारी होता है। ऐसा ही मनुष्य सच्चा लाभ प्राप्त कर सकता है। जब मनुष्य को दृढ़ निश्चय हो जाये कि नाम और रूप मिथ्या हैं और उनके पीछे अधिष्ठान ही सत्य है, तब कहा जाता है कि उसका दृष्टिकोण बदल गया है।

आप अपनी निर्भीक शक्ति और अथक प्रयत्न के द्वारा ही ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। गुरु और शास्त्र आपको मार्ग दिखा कर आपकी शंकाओं का निवारण कर सकते हैं। अपरोक्ष अनुभव तो स्वयं आप ही कर सकते हैं। भूखे मनुष्य को अपने-आप ही खाना पड़ेगा। जिसे बड़ी तीव्र खुजली हो, उसे अपने-आप ही खुजलाना पड़ेगा।

मन और ब्रह्म

मन में विचार की शक्ति है, क्योंकि उसे अन्तरात्मा या ब्रह्म से प्रकाश प्राप्त होता है और उसके द्वारा ही मन क्रियाशील होने में समर्थ बनता है। जिन्हें आत्म-साक्षात्कार हो चुका है, वे बताते हैं कि मन ब्रह्म से व्याप्त है। "जो मन में रहने वाला मन के भीतर है, जिसे मन नहीं जानता, मन जिसका शरीर है और जो भीतर रह कर मन का नियमन करता है, वह तुम्हारा आत्मा, अन्तर्यामी अमृत है" (बृहदारण्यकोपनिषद् ३-७-२०)। "जिसे ज्ञानयोग का सार मनुष्य मन के द्वारा सोच नहीं सकता; परन्तु जिसे ज्ञानीजन बताते हैं कि उसके द्वारा मन सोचने लायक बनता है, केवल उसको ही ब्रह्म जानो" (केनोपनिषद् १-५)। मन तो भिखारी है। यह स्वयं-ज्योति आत्मा से अपना प्रकाश और बुद्धि प्राप्त करता है। जैसे चुम्बक के आगे लोहे का टुकड़ा चलता है, वैसे ही इस अन्तर्यामी के आगे यह मन चलता है। जैसे राजा के रहते हुए प्रधान मन्त्री खेलता और काम करता है, ठीक उसी प्रकार यह मन भगवान् की उपस्थिति में खेलता, सोचता, अनुभव करता और कल्पना करता है। मन तो माँगे हुए गुणों से ही प्रकाश करता है। यह चैतन्य-सा प्रतीत होता है; पर जो अन्धकार में टटोलता है, प्रतिपल बदलता रहता है, महत् तत्त्व से जिसकी उत्पत्ति है और प्रकृति में जिसका क्षय है, वह (मन) चैतन्य कैसे कहा जा सकता है?

विचार अनेक होते हैं और परिवर्तित होते रहते हैं। अभी सद्विचार प्रकट होते हैं। पाँच मिनट बाद कुविचार आ जाते हैं। मन बड़ा चंचल और परिवर्तनशील है, इसलिए यह निर्विकार आत्मा या कूटस्थ निर्विकल्प ब्रह्म नहीं हो सकता।

जड़ और चैतन्य

मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ तथा अन्य सब वस्तुएँ जड़ हैं। जिस वस्तु को अपना ज्ञान नहीं होता और दूसरी वस्तुओं का भी ज्ञान नहीं होता, वह जड़ कहलाती है। केवल ब्रह्म ही चैतन्य-वस्तु है। चैतन्य या चित् या चेतन स्वयंप्रकाश तथा सर्वप्रकाश होता है। यह अन्दर तो मन, बुद्धि और सभी इन्द्रियों को और बाहर सूर्य, चन्द्र, तारागण, विद्युत्, अग्नि आदि को प्रकाशित करता है।

ब्रह्म चैतन्य है

सूर्य में यह दोष कौन देखता है कि वह तेजी से चमकता है या बादलों से ढका हुआ है? यह नेत्र का काम है। नेत्र का दोष कौन देखता है कि इसमें तिमिर रोग है या नहीं? यह बुद्धि देखती है। बुद्धि का दोष कौन देखता है कि उसमें स्पष्टता है या भ्रान्ति है? बुद्धि को कौन प्रकाश देता है? यह अहं (अनन्त मैं) है। यह अहं अथवा कूटस्थ अथवा आत्मा या ब्रह्म है जो सब पदार्थों को प्रकाश देता है।

स्वप्न में कौन प्रकाश करता है? वहाँ कोई दूसरा प्रकाश नहीं होता। मन तो स्वयं-प्रकाश नहीं है। यह जड़ है। ब्रह्म ही स्वप्न में सारे पदार्थों को प्रकाश देता है।

मान लीजिए कि रात्रि में बड़ा तेज प्रकाश हो रहा है। आप कुछ दूरी पर खड़े हैं। आपके और प्रकाश के मध्य में कुछ अवरोध है जिससे आप प्रकाश को नहीं देख सकते; किन्तु आप प्रकाश द्वारा पदार्थों को स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। यद्यपि आप अपरोक्ष रूप से ज्योति को नहीं देख सकते; परन्तु पदार्थों को देख कर ही आप यह स्पष्ट निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि कोई बड़ा प्रकाश अवश्य होगा। इसी प्रकार इस प्रकृति के पीछे भी कोई स्वयं-प्रकाश ज्योति अवश्य होगी। वह 'ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः' (ज्योतियों की ज्योति) इस जगत् का अधिष्ठान है।

यदि आप निश्चल बैठ कर अनुभव करें कि आप केवल एक ही सत्ता के बल से विचार कर सकते हैं और मन जो कि उसी एक सत्ता से अनुप्राणित हो कर विचार किया करता है, उसी समष्टि सत्ता ब्रह्म का अंश है तो आप इस उक्ति पर पहुँचेंगे कि आपके मन की भिन्न सत्ता ही नहीं है और इसका फल यह होगा कि शरीर और मन स्थूल रूप से लुप्त हो जायेंगे और केवल सत् रूप ही अवशेष रह जायेगा, जिसका वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता।

ब्रह्म शक्ति है

राग, द्वेष, सुख और दुःख, कर्तापन और भोक्तापन-ये सब केवल मन के धर्म हैं। आत्मा साक्षी और असंग है। जैसे स्फटिक में सातों रंग भासते हुए भी वह उनसे निर्लिप्त रहता है, इसी प्रकार आत्मा मन की क्रियाओं से निर्लिप्त रहता है।

रचना का भाव ही बताता है कि कोई रचने वाला अवश्य होगा। जड़ पदार्थों का भाव बताता है कि आत्मा अवश्य होगी। परिवर्तन का भाव बताता है कि कोई अविकारी वस्तु अवश्य होगी। विकारयुक्त मन का अस्तित्व ही अविकारी साक्षी और मन के नियामक के अस्तित्व को बताता है। वह कूटस्थ ब्रह्म है जो प्रत्येक वस्तु को स्पष्ट रूप से समझता है और जीव तथा उसकी प्रवृत्तियों का साक्षी है।

आप केवल पदार्थों को देख सकते हैं; परन्तु साक्षी अथवा कूटस्थ ब्रह्म मन तथा इसके विकारों, जीवात्मा और संसार के भिन्न-भिन्न पदार्थों को देखता है।

ब्रह्म अखण्ड है

काल, देश और वस्तु-ये मन के तीन वैचारिक रूप हैं। प्रत्येक पदार्थ के तीन परिच्छेद हुआ करते हैं। जैसे अंगूर एक ऋतु-विशेष में ही मिल सकते हैं और निश्चित स्थानों में ही मिलते हैं। यह अंगूर का देश-काल-परिच्छेद हुआ। इसका वस्तु-परिच्छेद भी होता है। आपको आम के वृक्ष में अंगूर नहीं मिल सकते। परन्तु सच्चिदानन्द ब्रह्म की सत्ता त्रिविध-परिच्छेद-रहित है; क्योंकि ब्रह्म नित्य, अनन्त और सब वस्तुओं का सार तथा अधिष्ठान है।

एक अँगरेज भारतीय से भिन्न होता है। यह स्वजातीय-भेद है। वृक्ष पत्थर से भित्र होता है। यह विजातीय-भेद है। वृक्ष के फल, फूल और पत्तियों में भेद होता है। हाथ, पैर, बाहु, टाँग आदि में भेद होता है। यह स्वगत-भेद होता है। ब्रह्म में ये तीन प्रकार के भेद नहीं हैं। कोई दूसरा ब्रह्म नहीं हो सकता है; क्योंकि अनन्त वस्तु एक ही है, इसलिए ब्रह्म में स्वजातीय-भेद नहीं है। संसार ब्रह्म से निकला है। यह भ्रामक है, इसलिए ब्रह्म में विजातीय-भेद नहीं दिखा सकता। संसार स्वयं ब्रह्म है। सत्-चित्-आनन्द तीन वस्तु न हो कर एक ही है। पानी और जल के समान यह शब्द-भेद ही है। सत् चित् है। चित् सत् है। चित् आनन्द है। इसलिए स्वगत-भेद ब्रह्म में नहीं है। भेद एक मानसिक रचना है जो देश, वर्ण, आकार आदि से उत्पन्न होता है।

यदि कोई वस्तु ऊपर कहे हुए देश, काल और वस्तु-इन तीनों प्रकार के परिच्छेदों और तीनों प्रकार के भेदों से रहित हो तो वह अखण्ड कहलाती है। आप उसको अखण्डत्व-लक्षण दे सकते हैं। यह लक्षण केवल ब्रह्म पर ही आरोपित हो सकता है।

'मैं कौन हूँ' का परिप्रश्न

ज्ञान के द्वारा मोक्ष मिलता है। 'मैं कौन हूँ' के विचार अथवा उपनिषदों के महावाक्य **'तत्त्वमसि'** (तुम वही हो) के यथार्थ तात्पर्य के बोध से ज्ञान मिलता है। 'मैं कौन हूँ' का परिप्रश्न तथा **'तत्त्वमसि'** - ये दोनों एक ही हैं।

ब्रह्म-ज्ञान, जो कि 'अहंभाव' के स्वरूप का अनुसन्धान करता है, वह अग्नि है जो मन का नाश कर देती है। भगवद्गीता में बतायी हुई ज्ञानाग्नि यही है। **"ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा"** - ज्ञानाग्नि कर्म राशि को भस्मीभूत कर डालती है (गीता : ४-३७)।

जब मन में कोई विचार उठे तो पता लगायें कि यह वृत्ति क्यों उठी है? इसका सम्बन्ध किससे है? अन्ततः अन्य सारे विचार शान्त हो जायेंगे, सारी मानसिक क्रियाएँ बन्द हो जायेंगी तथा मन अन्दर की ओर मुड़ जायेगा और आत्मा में विश्राम करेगा। यह बेदान्त की साधना है। जब कभी इधर-उधर के विचार उठने लगें तो आपको निरन्तर इसी साधना में डटे रहना होगा। 'मैं कौन हूँ?' इसी एक विचार से अन्य सारे सांसारिक विचार नष्ट हो जाते हैं। यह एक विचार भी स्वयं ही नष्ट हो जाता है। अस्मिता नष्ट हो जाती है। जो अवशेष रहता है, वह केवल अस्ति, चिन्मात्र, केवल शुद्ध चैतन्य, चिदाकाश मात्र है जो नाम-रूप-रहित है, व्यवहार-रहित, मल-वासना-रहित, निष्क्रिय तथा निरवयव है, जो माण्डूक्योपनिषद् का शान्त-शिव-अद्वैत है। वह आत्मा है। उसे ही जानना चाहिए।

साक्षी-भाव

वृत्ति ही आपको विषय के साथ बाँधती है। आपका सारूप्य वृत्ति के साथ और वृत्ति के द्वारा पदार्थ के साथ होता है। यही रहस्य है। मन की वृत्तियों के साक्षी बन जायें: फिर बन्धन नहीं रहेगा। मन के नाटक के साक्षी मात्र रहें और मन के साथ लिप्त न हों।

जब आप किसी मनुष्य को उदर-शूल से पीड़ित देखते हैं तो आपको पीड़ा का अनुभव नहीं होता; परन्तु जब आपको ही वह उदर-शूल होता है तो आपको तीव्र वेदना और दुःख होता है तथा आप चिल्लाते हैं। क्यों? क्योंकि अहंकार के कारण आप अपने शरीर के साथ सारूप्य बना लेते हैं। यदि अहंकार न हो तो आपको दुःख का अनुभव नहीं होगा। यह अहंकारहीनता तभी आ सकती है, जब आप व्यक्तित्व छोड़ कर साक्षी बन जायें और अपना सारूप्य ब्रह्म के साथ बना लें।

"मैं न प्राण हूँ और न इन्द्रियाँ। मैं इनसे निराला हूँ। मैं इनका और इनकी क्रियाओं का साक्षी हूँ। मैं सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप हूँ।" वेदान्ती निर्गुण ध्यान के लिए यही पर्याप्त है। आप तुरन्त ही महिमा के उन्नत शिखर पर उठ जायेंगे। यह सबसे उत्तम सूत्र है।

यदि उपर्युक्त सूत्र पर आपका दृढ़ निश्चय हो जाये तो यह 'परोक्ष ज्ञान' कहलाता है। यदि ज्ञान के द्वारा आप वास्तविक अनुभव प्राप्त कर लें तो यह 'अपरोक्ष ज्ञान' कहलाता है।

यदि आप शरीर-चेतना से ऊपर उठ जायें, शरीर-भाव को त्याग दें और यदि मन आत्म-स्थित हो जाये तो आप निःसन्देह सुखी, शान्त और मुक्त हैं।

मन में एक प्रतिक्षेपण की शक्ति होती है जिससे यह अपनी ही गहराइयों में देख सकता है। राजयोगी इस शक्ति का विकास करता है। अन्तर्निरीक्षण इस यौगिक शक्ति के विकास में सहायता देता है। एक निस्तब्ध अँधेरे कमरे में आज से ही चले जायें। सतर्क हो कर मन पर दृष्टि रखें। धैर्यवान् बनें। अपने मन के साथ तादात्म्य न करें। साक्षी रहें। अपने को पृथक् रखें। आप विविध मानसिक अवस्थाओं को अपरोक्ष में देख सकते हैं।

सोऽहम् ध्यान

मन को सदा आत्मा अथवा ब्रह्म पर एकाग्र करने के प्रयत्न को आत्म-विचार कहते हैं। जब तक आनन्दपूर्ण ज्ञान का उदय न हो, आपको निरन्तर और तीव्र साधना करनी चाहिए। आप आधे क्षण, निमिष-मात्र के लिए भी ब्रह्म-चिन्तन को बन्द न करें। आप निदिध्यासन-पारायण हो जायें अर्थात् आपका एकमात्र आश्रय प्रणव का अर्थ और भाव-सहित ध्यान होना चाहिए। तभी ब्रह्म-ज्ञान का होना सम्भव है।

'अहं ब्रह्मास्मि' -भावना को धारण करके आपको जीव-भावना का नाश कर देना होगा। जीव-भावना व्यावहारिक बुद्धि से बनती है। शुद्ध बुद्धि का विकास करके आपको इस व्यावहारिक बुद्धि का नाश करना होगा।

यद्यपि आप अपने शरीर और इस संसार को देखते हैं; परन्तु वास्तव में इनकी सत्ता नहीं है। अपनी आत्मस्थिति से तनिक भी विचलित न हों। निरन्तर यही विचार करें कि आप सर्वव्यापी आत्मा (चिदाकाश) हैं। यदि आप मशीनगन के सामने भी खड़े हों तो भी **'सोऽहम्-सोऽहम्', 'अहं ब्रह्मास्मि'** का उच्चारण करें। सिंह के समान गर्जना करें। भय केवल उसी समय आता है जब आप अपने को इस नश्वर मांस के शरीर से अभिन्न मानते हैं। यदि आप अपने को उन्नत, नित्य, अमर आत्मा से एकरूप मानें तो तुरन्त ही बिलकुल निर्भय हो जायेंगे। भय अज्ञानी के मन का एक काल्पनिक विकार है।

अपने केन्द्र को मालूम कर लें। उसी में स्थिर रहें। वह केन्द्र आत्मा अथवा ब्रह्म है या वह एक ही सत्य है जो अनन्त काल से आपके हृदय में प्रकाश कर रहा है। यदि आप अपने केन्द्र में स्थित रह सकते हैं तो कोई कष्ट या दुःख, हानि या निराशा, शोक या खेद आप पर प्रभाव डाल कर आपको अपनी साम्यावस्था से नहीं हटा सकता।

यदि आप अपने को उस अनन्त के साथ मिला कर रख सकें तो आपका मन सन्तुलित तथा साम्यावस्था में रहेगा। कोई वस्तु आपको चोट नहीं पहुँचा सकती। आप सदा प्रसन्न रहेंगे; क्योंकि आप आत्मा से अभिन्न बने रहेंगे। आप सर्वोच्च आत्मा में स्थित होंगे। यद्यपि महान् सूफी ज्ञानियों मंसूर और शम्सतवरेज़ की जीवित ही खाल खिंचवायी गयी थी, उनको कोई पीड़ा नहीं मालूम हुई। 'अनलहक' (अर्थात् मैं वही हूँ) का उच्चारण किया। उनके रक्त की जो एक-एक बूँद गिरी, उससे भी 'अनलहक' की ध्वनि आती थी। वे सदैव आत्मानन्द में रहते थे। इस चमत्कार को देखें। वे सच्चे ज्ञानी हैं। उन्होंने अपनी शक्ति और आत्म-ज्ञान दिखाया था।

एक छोटा-सा जलपोत नदी की साधारण लहरों में भी बड़ी बुरी तरह इधर-उधर पटका जाता है; परन्तु बड़ा धूमपोत उत्ताल तरंगों के वेग से टकराने पर भी अचल खड़ा रहता है। इसी प्रकार चंचल मन वाला संसारी मनुष्य राग-द्वेष की छोटी-छोटी लहरों से भी इधर-उधर आलोड़ित होता रहता है, जब कि एक साम्ययुक्त शान्त मन बाला सन्त या वाला सन्त या जीवन्मुक्त संसार में बिलकुल अचल रहता है और रोग तथा क आपत्ति तथा विपत्ति आदि की प्रचण्ड लहरों से तनिक भी प्रभावित नहीं होता। वह सदैव शान्तिपूर्वक आत्मा की निरन्तर प्रशान्तता में विश्राम करता है।

जब कभी आपको बड़ी चिन्ता हो, आपके मन में विषाद हो, बड़ा दुःख ह विचार करें कि आप आत्म-स्वरूप आनन्द के भण्डार हैं। मन को सांसारिक वस् और विचारों से हटा कर आत्मा पर लगा दें। एकान्त कमरे में जा कर कहें, आनन्दमय आत्मा हूँ। मुझे दुःख कैसे हो सकता है? दुःख तो मन का लक्षण है। मैं तो से ऊपर हूँ। आत्मा आनन्द-सागर है। आत्मा आनन्द, शक्ति और ज्ञान का भण्डार है अनुभव करता हूँ कि मैं इन सब रूपों के पीछे छिपी हुई, मन के पीछे छिपी हुई: चैतन्य, व्यापक चेतना हूँ। मैं आत्मा हूँ। मैं आनन्द ही आनन्द हूँ।" इस अभ्यास आपको असीम आनन्द, उल्लास और बल प्राप्त होगा।

त्रुटि, अपूर्णता, दुर्बलता और हीनता के प्रत्येक विचार को हटा दें। यदि भोजन मिले, पहनने को कपड़ा न मिले, असाध्य रोग से भी ग्रसित हों तो भी दृढ़ता से इन भ से चिपके रहें कि 'मैं ब्रह्म हूँ। मैं पूर्ण हूँ। मेरे पास सारे पदार्थ हैं। मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। मैं आनन्द हूँ।' याद रखें, यह आपका ठीक मानसिक भाव होना चाहिए। स्वभावतः जै आप सोचते हैं, वह एक नमूना बना देता है, जिसे जीवन की प्रक्रियाएँ बुनती रहती बाहर चित्रित करती रहती हैं।

'मैं वह आत्मा या ब्रह्म हूँ जो एक, चिदाकाश, अखण्ड और सर्वभूतों का अन्तरात्मा है।' इस भाव में सारे प्रयत्नों से स्थित होने की चेष्टा करें। तभी मन क चंचलता दूर होगी। तब आपको पूर्ण सुख मिलेगा। आप जीवन्मुक्त हो जायेंगे। इस तनिक भी सन्देह नहीं है।

कल्पना करें कि सारा संसार आपके गर्भ में है और यह सब आपके चिन्मय शर (ज्ञान-विग्रह) में स्थिर है। तब बाहरीपन और पार्थक्य के भाव दूर हो जायेंगे। आप बाहर कोई वस्तु नहीं है। ब्रह्म से बाहर कुछ नहीं है।

वेदान्त की अपवाद-युक्ति

जब आप लकड़ी का बना हुआ खिलौना हाथी देखते हैं और उसे हाथी मानते हैं तो उस खिलौने ने लकड़ी-रूप तत्त्व को ढक लिया होता है। उसी प्रकार इन नाम औ रूपों के पीछे असली तत्त्व ब्रह्म को नाम और रूपों ने ढक लिया है। जो भ्रान्ति मन मे अनादिकाल से जमी हुई है, उसको दूर कर दें। यह लकड़ी है, हाथी नहीं। इसी प्रकार यह

ब्रह्म है, संसार नहीं। यह आत्मा है, शरीर नहीं। वेदान्त में यह अपवाद-युक्ति कहलाती है। हाथी, संसार, शरीर आदि मिथ्या वस्तुओं को त्यागने के उपरान्त जो शेष रहता है, उसे ग्रहण कर लें।

द्वैत में विचार करना मन का स्वभाव है। यह एकता के भाव में विचार नहीं कर सकता। चित्तशुद्धि और वेदान्तिक साधना के द्वारा मन को एकता के भाव में सोचना सिखाना चाहिए।

तीनों कालों में भी मिट्टी सत्पदार्थ है, घड़ा अशुद्ध वस्तु है। "वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्" अर्थात् घट, जार आदि विकार केवल वाणी के आश्रयभूत नाम-मात्र हैं। सत्य तो केवल मृत्तिका ही है (छान्दोग्योपनिषद् ६-१-४)। इसी प्रकार केवल ब्रह्म या आत्मा ही सत्य वस्तु है, वही नित्य वस्तु है जो आदि, अन्त और विकार से रहित है। शरीर, मन, इन्द्रियाँ और संसार-ये सब विकार नितान्त मिथ्या हैं। ये केवल नाम-मात्र हैं। सारे मिट्टी के बरतनों में मिट्टी ही देखें। सारे पदार्थों में आत्मा ही देखें (आत्म-दृष्टि)।

गायें भिन्न-भिन्न होती हैं। वे रंग और अन्य विशेषताओं में भिन्न होती हैं; परन्तु दूध एक-समान होता है। यदि रीति, आचार, वेश-भूषा और भोजन के भेद को निकाल दिया जाये तो संसार में सारे मनुष्य समान हैं। उनके भाव और वासनाएँ संसार-भर में समान होती हैं। अनेक देशों और क्षेत्रों में भाषा की भिन्नता होती है; परन्तु इन भाषाओं के पीछे छिपा हुआ विचार एक-समान ही होता है। यह विविधता, द्वैत और अनेकता में एकत्व है। निद्रा में एक रस होता है, जिसका अनुभव सब समान रूप से करते हैं। निद्रा में नानाभाव नहीं होता। इसी प्रकार पदार्थों के पीछे भी एक सजातीय तत्त्व है। वह आत्मा है। वह ब्रह्म है। वही आपका सच्चा स्वरूप है।

केवल चीनी का बना एक नारियल होता है। उसमें निशान, रेखाएँ, बाहर की खोपड़ी, किनारे, आँखें और सब वस्तुएँ बनी होती हैं। लेकिन, आपके मन में आन्तरिक भाव होता है कि यह केवल चीनी ही है। इसी प्रकार यद्यपि आप संसार के विभिन्न पदार्थों को देख सकते हैं, तो भी आपको एक भाव और निश्चय आत्मा का होना चाहिए कि सारे पदार्थों के मूल में यही है, अन्तिम और प्रत्येक वस्तु का सार यही है।

आप आम के वृक्ष की पत्तियों, टहनियों, फूलों और फलों को क्यों देखती हैं? उसके स्रोत बीज को देखें। वस्त्र भी केवल कपास और धागा है। वस्त्र को कपास समझें। इसी प्रकार, संसार को आत्मा या ब्रह्म ही समझें।

जब आप किसी मनुष्य या पदार्थ को देखें तो अनुभव करें कि यह आत्मा या नारायण है। अनवरत अभ्यास से नाम और रूप की उपाधि जाती रहेगी। आत्मा अथवा नारायण ही प्रकाश करेगा। संसार का विचार मिट जायेगा। इसके लिए कठिन पुरुषार्थ और दीर्घ काल की आवश्यकता है। आप सर्वत्र आत्मा या नारायण को ही देखेंगे और अनुभव करेंगे। इस अभ्यास-काल में आपके पुराने संस्कार आपको कष्ट देंगे। वे आपके वास्तविक शत्रु हैं। साहस के साथ इनसे युद्ध करते रहें। यह सम्यक् ज्ञान का अभ्यास है। आपको आत्मा या सम्यक् दर्शन हो जायेगा। आप सारी वस्तुओं को आत्मा ही देखने लगेंगे। विचार और अनुभव करें कि सारे कर्म आत्म-पूजा हैं। जब आप सर्वत्र नारायण या आत्मा के ही दर्शन करेंगे तो हीनता तथा अधम सेवा का विचार जाता रहेगा।

ज्ञानोदय

जैसे आम के वृक्ष में मंजरी के लगने से आप जान लेते हैं कि आपको आम के फल शीघ्र ही मिलेंगे, इसी प्रकार जब आपके मन में शान्ति-रूप पुष्प खिलें तो जान लें कि आपको अभेद-ज्ञान (आत्मा और परमात्मा की एकता का ज्ञान) प्राप्त होने वाला है।

जैसे जब स्वाद की शक्तियाँ और मन परस्पर सम्मिलित होते हैं तभी षट्-रस-मधुर, लवण, तिक्त, कटु, कषाय और अम्ल-का पूर्णतः उपभोग किया जा सकता है। इसी प्रकार जब उपासना के सारे साधन जैसे सन्तोष, सम-दृष्टि आदि शान्ति के साथ मिलते हैं-तब ही परिपूर्ण ब्रह्म का उद्भव होता है।

मन की शान्ति दो प्रकार की होती है-साधारण शान्ति और परम शान्ति। साधारण शान्ति वृत्तियों के संयम तथा विक्षेप के दूर होने पर आती है तथा परम शान्ति ज्ञानोपलब्धि के अनन्तर प्रकट होती है।

ज्ञानावस्था का वर्णन

ज्ञानावस्था को समझना बड़ा कठिन है। यह बड़ी उन्नत अवस्था है जिसमें सारे तत्त्व स्वयं ही गिर जाते हैं और अनन्त गगन तथा व्योम की भाँति केवल चिदाकाश ही भासता है। यह चैतन्य अवस्था है जो प्राकृतिक दृश्यों और सौन्दर्य के आनन्द से भी अतीत है। विहारोद्यानों, सरोवरों, हिमाच्छादित पर्वतों, हरे वनों आदि का सौन्दर्य माया की सृष्टि है। यह हमारी आँखों पर परदा डाल देता है और हमें आत्मा के अनन्त, सहज सौन्दर्य की अनुभूति में बाधक होता है। पक्षियों का मधुर गान भी माया की ही रचना है। यह हमें सहज प्रणव-नाद मधुरतम प्रणव-ध्वनि सुनने से रोकता है। सभी प्रकृति-सौन्दयों से परे निर्वाण-दशा ही ज्ञानावस्था है।

ज्ञान-मौन वह अवस्था है जिसमें मन ब्रह्म या आत्मा या स्वरूप में लीन रहता है। इस अवस्था में 'मैं'-पन का किंचिन्मात्र चिह्न अवशेष नहीं रहता; क्योंकि इस अवस्था में कोई क्रिया नहीं होती और न कोई कर्ता ही होता है। अतः सारे कर्म ज्ञानाधि में भस्म हो जाते हैं। जीव को प्रतीत होता है कि वह पंचकोशों से बिलकुल भिन्न है; क्योंकि वह आत्मा से तादात्म्य अनुभव करता है।

ज्ञान में पूर्व या पश्चिम, उदय और अस्त, वृद्धि और क्षय, बैठना या खड़े होना, जीवन या मृत्यु, कार्यरत चेतना या स्वप्नावस्था, बोलना या भाषण देना, विचार करना या जानना, प्रकाश या अन्धकार कुछ नहीं है। ज्ञानियों के आत्मा में कर्ता, कर्म और करण-तीनों एक ही रूप भासते हैं। यह कितनी उन्नत अवस्था है। यह बड़ी अद्भुत और विस्मयजनक है। व्यक्ति अवाक् रह जाता है। यह अकथनीय है।

मैं पद्मासन पर बैठ गया और आत्मा का ध्यान करने लगा। मैं अपने को और वातावरण को भूल गया। मैंने कोई वस्तु ऐसी देखी जो पहले कभी नहीं देखी थी। मैंने ऐसा नाद सुना से जो इससे पहले कभी नहीं सुना था। ऐसे संवेदन और ज्ञान हुए कि मैं सभी प्रकार की आसक्तियों से सर्वथा मुक्त हो गया। मुझे नवीन ज्ञान का अनुभव हुआ। आत्मा का विचार कुछ काल तक बना रहा। मुझे शुद्ध आनन्द का भी विलक्षण अनुभव हुआ। यह इस संसार के प्रत्यावर्तनों से रहित प्रकाश, ज्ञान और आनन्द से पूर्ण आकाश है।

जब आत्मा का एक बार साक्षात्कार कर लिया जाये तो यह कभी नहीं भूला जा सकता। आत्मा के अभिज्ञान की छाप यदि एक बार बन जाये तो फिर मन से कभी नहीं मिटायी जा सकती। यह सदैव मन में बनी रहती है।

मुक्ति

मुक्ति केवल मन के लिए होती है। यह मुक्ति प्रकृति के लिए होती है; जीव के लिए नहीं होती। जीव तो पहले से ही ब्रह्म है। वह तो नित्य मुक्त है। उसका ब्रह्म के साथ सारूप्य है। जब पानी सूख जाता है तो पानी में सूर्य की छाया का भी लोप हो जाता है। इसी प्रकार जब सारे संकल्पों और वासनाओं के क्षीण हो जाने से मानस सरोवर सूख जाता है तो चिदाभास और चैतन्य की छाया भी लुप्त हो जाती है। 'जीवात्मा' नाम चला जाता है। अहंभाव भी जाता रहता है।

परिच्छेद-३८

जीवन्मुक्त पुरुष में मन

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः ।।

-देहाध्यास के दूर हो जाने पर और परमात्मा का ज्ञान हो जाने पर जिस पदार्थ की ओर भी मन को कर दिया जाये, वहाँ ही समाधि का अनुभव होता है।

'अमना' एक संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है- 'मन से रहित।' 'अमनस्कता' वह अवस्था है जिसमें मन नहीं रहता। यह मन-रहित अवस्था है जो जीवन्मुक्तों में पायी जाती है।

अवशिष्ट सत्त्व

जन्म-मृत्यु के दुःखों से रहित सन्त को जीवन्मुक्त कहते हैं। जीवन्मुक्तावस्था में नैसर्गिक प्रवृत्तिपरक मन नष्ट हो जाता है; परन्तु सात्त्विक मन नष्ट नहीं होता। जिस प्रकार बीज में फूल और फल छिपे रहते हैं, उसी प्रकार सत्त्व का अवशेष, जो बुद्धि का भी कारण है, सदा हृदय में रहता है। यदि आप कहें कि व्यक्ति के ज्ञान प्राप्त करते ही उसके मन का पूर्ण नाश हो जाता है तो जीवन्मुक्तावस्था असम्भव है। वह मन-रूपी करण के बिना व्यवहार कैसे कर सकता है? ज्ञानी सर्वव्यापक ब्रह्म से अपना अभेद समझता है और व्यवहार के लिए अपने शरीर और मन को उस ब्रह्म के उपकरण के रूप में काम में लाता है। अज्ञानी अपने को शरीर से अभिन्न मानता है। राजा जनक के समान जीवन्मुक्तों के उदाहरण विद्यमान हैं जिन्होंने ज्ञान प्राप्त किया तथा मनुष्य जाति के उपकार और हित के लिए अपने शरीर और मन को कारण बना कर कार्य किया था।

श्रीराम और श्रीकृष्ण अपने राज्य पर शासन करते हुए भी ब्रह्म में स्थित रहते थे। उन्होंने मनुष्य-रूप धारण किया था, फिर भी वे अपने मूलभूत सच्चिदानन्द ब्रह्म-स्वरूप को सदा ध्यान में रखते थे। भिन्न-भिन्न क्रियाओं को करते समय वे अपने शरीर और मन को उपकरण के रूप में प्रयोग करते थे।

व्यावहारिक सत्ता तथा पारमार्थिक सत्ता

जीवन्मुक्तावस्था में यह जगत् भी वैसा नष्ट नहीं होता जैसा माना जाता है। व्याहारिक जगत् में सत्ता वास्तव में नहीं रहती; परन्तु इसका अर्थ नाश नहीं है। इसका अर्थ तो केवल यही है कि सत्ता का रूप और रंग परम तत्त्व में

रूपान्तरित हो जाता है। व्यावहारिक सत्ता, न कि अखिल सत्ता, लुप्त होती है। पारमार्थिक सत्ता रहती है; परन्तु उसके परिच्छिन्न रूप जाते रहते हैं। बाहरीपन, देश-काल-सम्बन्धी दृष्टिकोण, कार्य-कारण-सम्बन्ध, एकता तथा अनेकता के भाव अवश्य दूर हो जाते हैं। इनका दूर होना अनिवार्य है; परन्तु मुक्त आत्मा के लिए भी विश्व और इसका अस्तित्व दूर नहीं होता। केवल इसका स्वरूप, अर्थ और महत्त्व बदल जाता है। मिथ्या दृष्टि, ज्ञान की सीमा, अशुद्ध विचार तथा परिसीमित दृष्टि के अतिरिक्त कुछ भी लुप्त नहीं होता है। तथ्य, तत्त्व तथा सत्ता सदा की भाँति मौलिक रूप से बने रहते हैं, केवल दृष्टिकोण रूपान्तरित हो जाता है।

ज्ञानियों के मन को मन नहीं, बल्कि सत्त्व कहते हैं। जो नाना प्रकार के पदार्थों द्वारा अपनी दशा बदलता रहता है, वह मन है। ज्ञानी का मन कीमियाई प्रक्रिया से ताँबे से रूपान्तरित स्वर्ण की भाँति निर्दोष होता है। ज्ञानी का मन स्वयं सत्त्व है, जब कि अज्ञानी जन अपने मन द्वारा निर्धारित पथ का अनुसरण करते हैं। ज्ञानी जब बाहर देखता है, तब वह केवल देखता ही है; उसकी वृत्ति संसारी मनुष्यों की वृत्ति के समान विषयाकार नहीं बनती। जैसे सभी व्यक्तियों का मन गहन निद्रावस्था में विषयाकार वृत्ति से सर्वथा रहित होता है, इसी प्रकार ज्ञानी का मन जाग्रतावस्था में भी विषयाकार वृत्ति से रहित होता है। उसे जगत् स्वप्नवत् भासता है। वह कार्य करता हुआ भी ब्रह्म में ही स्थिर रहता है। आत्म-साक्षात्कार-प्राप्त व्यक्तियों की वे शुद्ध वासनाएँ, जिनसे कि वे कर्म करते हैं, उन्हें पुनर्जन्म में नहीं डालतीं। ऐसे ज्ञानी का मन सात्त्विक कहलाता है; परन्तु बिना ज्ञान के वह प्रायः मानस कहलाता है।

पूर्णतः सन्तुलित मन

अब, जीवन्मुक्त के मन के लक्षण देखिए। यह सब परिस्थितियों में पूर्णतया सन्तुलित रहता है। उसका मन सदैव शान्त तथा द्वन्द्वों से अप्रभावित रहता है, हर्ष तथा शोक से मुक्त होता है अर्थात् वह न सुखों से उल्लसित और न शोक तथा विषाद से खिन्न होता है तथा सुख-दुःख के भोगों में रहते हुए उनसे प्रभावित न हो कर उनका अभ्यस्त हो जाता है। आन्तरिक तृप्ति और दुःख-रहित होने के कारण ज्ञानी में सर्वत्र तथा सभी परिस्थितियों में मन का समत्व बना रहता है। शरीर में अनुलग्न सुख-दुःख आदि के भाव उसके मुख पर प्रकट होने पर भी उसका मन उनसे अथवा उनकी विपरीत अवस्थाओं से व्याकुल नहीं होता। वह अशुद्ध वासनाओं से मुक्त होता है। उसमें काम अथवा क्रोध बिलकुल नहीं होते। ऐसे मन में काम का आवेग नहीं उठता और न विषयों की किंचित् कामना ही रहती है। उसका मन सांसारिक वस्तुओं से ऊपर उठ जाता है, जिस पर संसार का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उसको पृथक् कमरे या आसन की आवश्यकता नहीं होती। उसे न तो आँख बन्द करने की आवश्यकता होती है और न इन्द्रियों के प्रत्याहार करने की ही आवश्यकता है।

जो मन नानाविध पदार्थों का प्रतीयमानतः भोग करता हुआ भी वास्तव में उन्हें नहीं भोगता, वह ब्रह्म-रूप ही कहा जा सकता है।

द्वयात्मक चेतना

तान्त्रिक आत्म-निग्रह और संयम के द्वारा एक ही समय में दो स्तरों पर काम करना सीख लेता है। जब वह भौतिक स्तर में कार्य करता है तो वह एक अंश में अपने शरीर से बाहर भी रहता है, जैसे जिस समय वह लिखता या बोलता है, उस समय वह अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा अन्य कार्य भी करता रहता है। जब तान्त्रिक की यह स्थिति है तो सिद्ध ज्ञानी का तो कहना ही क्या है, जो सदा अपने स्वरूप में स्थित रहता है! ज्ञानी को द्वयात्मक चेतना होती है

अर्थात् उसे ब्रह्म-चेतना के साथ-साथ संसार की चेतना भी होती है। वह संसार को अपने ही अन्दर स्वप्नवत् देखता है। ज्ञानी सदा समाधि में रहता है। उसे ऐसा नहीं होता कि वह राजयोगी के समान कभी समाधि में और कभी समाधि से बाहर रहे।

जब आप हारमोनियम बजाते हैं तो पहले रागिनी ठीक करते और स्वर मिलाते हैं। आपकी वाणी की शक्ति के अनुसार इसे दूसरी या चौथी कम्पिका (रीड) पर रखा जा सकता है। तब आप भिन्न-भिन्न कम्पिकाओं को बजाने लगते हैं। अब सप्त-स्वरों का उच्चारण होता है जिससे आप भिन्न-भिन्न राग-रागिनियों को निकाल सकते हैं। जो मुख्य श्रुति-स्वर से अवगत है, उसकी तुलना उस ज्ञानी से की जा सकती है जो आत्मा या जगत् के अधिष्ठान को जानता है; परन्तु जो मुख्य श्रुति को जाने बिना केवल सप्त-स्वरों को जानता है, वह उस अज्ञानी के समान है जो आत्मा को जानता नहीं, पर जिसको विषय-भोगों का ज्ञान है।

जब आप कोई वस्तु अपनी आँखों से देखते हैं, तब आप जानते हैं कि आप सूर्य के प्रकाश के द्वारा उसे देख सके हैं। आपके दो दृष्टियाँ होती हैं। इसी प्रकार जब ज्ञानी व्यवहार करता है तो उसके दो दृष्टियाँ होती हैं। वह काम करता हुआ भी जानता है कि वह कुछ नहीं करता, वह अनासक्त है। संसार को देखता हुआ भी केवल ब्रह्म ही देखता है। उसके लिए यह सब-कुछ ब्रह्म ही ब्रह्म है।

सम-भाव और सम-दृष्टि

सम-भाव और सम-दृष्टि में थोड़ा-सा अन्तर है। पूर्वोक्त सम-भाव मानसिक दशा है (यथा सुख-दुःख में, हानि-लाभ में, गरमी सर्दी में तथा जय और पराजय में समान रहना)। उत्तरोक्त सम-दृष्टि ज्ञान की अवस्था है। ज्ञानी भंगी और राजा में केवल एक ही आत्मा देखता है।

जब आप रेलवे स्टेशन पर अपने किसी मित्र से मिलने की आशा में होते हैं तो आपका मन सदृश आकृति वाले कई अन्य पुरुषों में उसे देखने की चेष्टा करता है; क्योंकि वह एक निर्दिष्ट समय पर एक मित्र-विशेष से मिलने के एक ही विचार में संलग्न होता है। मन उसको देखने को बड़ा उत्सुक होता है। एक कामुक युवक स्तम्भ पर स्त्री के वन लिपटे होने पर उसमें और वस्तुतः सर्वत्र ही स्त्री को ही देखता है। उसका मन बड़े प्रबल कामुक विचारों से परिपूर्ण होता है। इसके विरुद्ध भगवत्प्रेम में उन्मत्त व्यक्ति वृक्ष, पत्थर, बालक, लड़का, लड़की, गाय आदि सब वस्तुओं में परमात्मा के ही दर्शन करता है-**"सर्व खल्विदं ब्रह्म।"**

यद्यपि जीवन्मुक्त में अनन्त शक्तियाँ होती हैं, तो भी अपने परिच्छिन्न मन के द्वारा वह अपनी उन सब सिद्धियों को प्रकट नहीं कर सकता।

परिच्छेद - ३९

एक योगी की शक्तियाँ

सिद्धियाँ और ऋद्धियाँ

नौ प्रकार की ऋद्धियाँ और आठ मुख्य सिद्धियाँ तथा अठारह गौण सिद्धियाँ होती हैं। आठ सिद्धियाँ ये हैं : अणिमा (अणु के समान सूक्ष्म शरीर धारण करना), महिमा (विशाल रूप होना), गरिमा (गुरु-भारी होना), लघिमा (लघु-हलका हो जाना), प्राप्ति (वांछित वस्तु प्राप्त कर लेना), प्राकाम्य (बेरोक-टोक इच्छा-शक्ति होना), ईशत्व (अधिकार) और वशित्व (सभी इन्द्रियों पर अधिकार होना)। ऋद्धि का अर्थ है समृद्धि। ऋद्धि सिद्धि से निम्नतर है।

भूतजय

राजयोगी को निर्विकल्प अथवा निर्बीज समाधि के द्वारा मनोजय प्राप्त होती है और मनोजय के द्वारा भूतजय प्राप्त होती है। ऐसे राजयोगी को न अग्नि जलाती है और न पानी डुबाता है। वाराणसी के स्वर्गीय त्रैलिंग स्वामी, जो ८० वर्ष पूर्व जीवित थे और आलन्दी (पूना के निकट) के श्री ज्ञानदेव को विभिन्न सिद्धियाँ प्राप्त थीं। ज्ञानदेव से मिलने के

लिए चांगदेव सिंह की पीठ पर चढ़ कर आया, तो ज्ञानदेव ने उसके स्वागत के लिए अपने घर को चला दिया। मसजिद भी चलने लगी थी। त्रैलिंग स्वामी छह मास तक गंगा जी के नीचे रहा करते थे।

अतीत काल का ज्ञान

योगी को शक्ति प्राप्त होती है कि वह अपने अवचेतन मन के अन्दर गहराई में उतर कर अनेक पूर्व-जन्मों के संस्कारों को देख तथा समझ लेता है। 'संस्कार- साक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानम्' (पातंजलयोगसूत्र : ३-१८)। वह इन गुप्त संस्कारों पर यौगिक संयम (धारणा, ध्यान और समाधि) का अभ्यास करता है। इससे वह अपने पूर्व-जन्म का ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

अष्टावधान और शतावधान

अप्रशिक्षित मन एक समय में या तो देख सकता है या सुन सकता है। परन्तु पूर्ण रूप से परिष्कृत मन एक ही समय में देख भी सकता है और सुन भी सकता है। इसे एक अथवा अनेक इन्द्रियों के साथ संयुक्त किया जा सकता है और सबसे अलग भी किया जा सकता है। इस मन को योगी जैसा चाहे उसी प्रकार चला सकता है। यह एक समय में आठ काम कर सकता है। यह अष्टावधान कहलाता है। यह एक समय में सौ काम भी कर सकता है। यह शतावधान है।

स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर का वियोजन

योगी अपने सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर से अलग कर लेता है, निमिष मात्र में संसार के विभिन्न भागों तथा ऊपरी लोकों में भ्रमण कर लेता है और फिर स्थूल शरीर में उसी प्रकार लौट आता है, जिस प्रकार पक्षी अपने पिंजरे रूप कारागार में वापस आ जाता है। प्राण का एक क्षीण सूत्र सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर को संयुक्त करता है। योगी जिस क्षण अपने शरीर से निकलता है, तो वह अपनी सूक्ष्म दृष्टि से स्थूल शरीर को ऐसा ही देखता है जैसे साँप अपनी त्यक्त केंचुली को। जब आप स्थूल शरीर से अपने को पृथक् करने की योग की प्रविधि जान लेंगे, तो आपको यह प्रक्रिया बड़ी सुगम प्रतीत होगी।

अतीन्द्रिय सिद्धियाँ : आध्यात्मिक साधकों के लिए महान् संकट का मूल कारण

मन की धारणा के द्वारा किसी मनुष्य को अतीन्द्रिय शक्ति और सिद्धियाँ भले ही प्राप्त हो जायें; परन्तु इससे उसके मन की शुद्धि भी हो, यह आवश्यक नहीं। आत्म-साक्षात्कार के लिए मन की शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है।

अतीन्द्रिय सिद्धियों को अधिक महत्त्व न दें। परोक्ष अतीन्द्रिय-श्रवण तथा अतीन्द्रिय-दृष्टि की शक्ति प्राप्त करने योग्य नहीं हैं, जब कि बिना सिद्धियों के ही इनसे अधिक मूल्यवान् शान्ति और ज्ञान का प्रकाश मिल सकता है।

आप अतीन्द्रिय सिद्धियों को क्यों चाहते हैं? वे बिलकुल निरर्थक हैं। यदि वे प्रकट होने की चेष्टा करें भी, तो निर्दयतापूर्वक उनसे दूर रहें। वे आपको पथभ्रष्ट करेंगी तथा आपके अधःपतन का कारण बनेंगी। सावधान रहें। भगवान् बुद्ध ने मार (प्रलोभनों तथा सिद्धियों) की उपेक्षा ही की थी। ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करें। तब आपको सब-कुछ प्राप्त हो जायेगा। सारी आध्यात्मिक सिद्धियाँ हाथ फैला कर आपका स्वागत करेंगी। उस स्थिति में आपका अध:पतन नहीं हो सकता।

ज्ञानियों को इन ऋद्धियों-सिद्धियों की अपेक्षा नहीं होती; क्योंकि नित्य व्यवहार में उन्हें इनकी आवश्यकता नहीं पड़ती। अपने सत्संकल्प से ज्ञानी वह सब-कुछ कर सकता है जो राजयोगी अपने योग-संयम द्वारा करता है। वह केवल इच्छा मात्र करता है; पर वह जो भी इच्छा करता है, वही पूर्ण हो जाती है।

परिच्छेद-४०

गुरु की आवश्यकता

"*यह ज्ञान तुम प्रणिपात (प्रणाम), पूछ-ताछ और सेवा द्वारा सीखो। तत्त्वदर्शी ज्ञानी तुम्हें ज्ञानोपदेश करेंगे।*" *(गीता : ४-३४)*

साधकों के लिए गुरु आवश्यक है। कोई-कोई कुछ वर्षों तक स्वतन्त्र रूप से अभ्यास करते और फिर गुरु की अत्यन्त आवश्यकता अनुभव करते हैं। उनके मार्ग में कुछ बाधाएँ आती हैं। वे इन बाधाओं का निवारण करना और आगे बढ़ना नहीं जानते। तब वे गुरु को खोजने लगते हैं। योग के अभ्यास में ऐसा विशेषकर होता है।

गुरु का धर्म है कि प्रत्येक शिष्य को आध्यात्मिक साधना के उसी मार्ग पर लगाये, जिसके लिए वह उपयुक्त पात्र हो। गुरु अपनी अन्तर्दृष्टि से शिष्य-विशेष की रुचि को जान कर उसके अनुसार एक शिष्य को एक मार्ग पर और दूसरे को दूसरे मार्ग पर चलाये।

ईश्वर गुरुओं का गुरु है। वह जीवों पर अनुग्रह करता है और अविद्या का आवरण हटाता है। साधक को उचित है कि वह अपने शरीरधारी गुरु को उसी ईश्वर का अवतार समझे और उसकी भक्ति भी ईश्वर के समान ही करे। स्थूल देहधारी गुरु शिष्य को प्राप्त होने वाले सभी सुख तथा कल्याण का आधार तथा मूर्त रूप होता है। शिष्य को गुरु के आदेशों तथा आज्ञाओं के पालन की परम आवश्यकता समझनी चाहिए और उसमें अपनी दृढ़ निर्मल श्रद्धा रखनी चाहिए।

अपने गुरु के सामने हृदय के रहस्य खोल कर रख दें। और जितना ही अधिक आप ऐसा करेंगे, उतनी ही सहानुभूति और सहायता आपको गुरु से प्राप्त होगी। इस सहानुभूति का अर्थ पाप और प्रलोभन के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए अधिक शक्ति की प्राप्ति है।

शक्ति-संचार

जैसे आप किसी मनुष्य को एक सन्तरा दे सकते हैं और उसे वापस भी ले सकते हैं, उसी प्रकार आत्मिक शक्ति भी हस्तान्तरित की जा सकती है और फिर वापस ली जा सकती है। आध्यात्मिक शक्ति के हस्तान्तरण की इस विधि को शक्ति-संचार कहते हैं। पक्षियों, मछलियों और कछुओं की भाँति गुरु आध्यात्मिक शक्ति का संचार स्पर्श, दृष्टि या केवल इच्छा अथवा विचार द्वारा कर सकता है। शक्ति-संचार करने वाला व्यक्ति कभी-कभी शिष्य के सूक्ष्म शरीर में प्रवेश करके उसके मन को अधिक शक्ति के द्वारा उन्नत कर देता है। वह उसे अपने सामने बिठा कर उसे आँखें बन्द करने को कहता है और फिर उसमें आत्म-शक्ति का संचार करता है। शिष्य वास्तव में विद्युत् प्रवाह को मूलाधार चक्र से ऊपर को ग्रीवा और शिर तक चढ़ता हुआ प्रतीत करता है। वह प्रेरणा द्वारा बिना किसी शिक्षा के आसन, प्राणायाम,

बन्ध, मुद्रा आदि हठयोग की विविध क्रियाएँ स्वयं कर लेता है। यहाँ प्रकृति स्वयं कार्य करती है। शिष्य को अपनी इच्छा-शक्ति का निरोध नहीं करना चाहिए। उसे आन्तरिक प्रकाश के अनुकूल कार्य करना चाहिए। मन अत्यन्त उन्नत हुआ होता है। जिस क्षण साधक अपने नेत्र बन्द करता है, ध्यान स्वयमेव लग जाता है। शक्ति संचार के द्वारा गुरु-कृपा से शिष्य में कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हो जाती है।

गुरु वस्तुतः अपनी आध्यात्मिक शक्ति शिष्य में संचारित करता है। एक विशेष आध्यात्मिक स्पन्दन सद्गुरु की ओर से शिष्य के मन को हस्तान्तरित किया जाता है श्री रामकृष्ण परमहंस ने वस्तुतः अपनी आध्यात्मिक शक्ति स्वामी विवेकानन्द को हस्तान्तरित की थी। ईसामसीह ने भी अपने शिष्यों के साथ ऐसा ही किया था। समर्थ रामदास के एक शिष्य ने एक वेश्या-पुत्री में, जो उन पर कामातुर हो रही थी, इसी प्रकार शक्ति संचारित की थी। शिष्य ने उस पर दृष्टि जमा कर समाधि प्राप्त करा दी। उसकी कामवासना जाती रही थी, वह बहुत धार्मिक तथा आध्यात्मिक बन गयी। महाराष्ट्रीय सन्त मुकुन्दराय ने बादशाह को समाधि प्राप्त करा दी थी।

गुरु की कृपा से ही भक्त को अष्टांगयोग की प्राप्ति होती है तथा भगवान् शंकर की कृपा से वह योगों में सिद्धि अर्थात् पूर्णता प्राप्त करता है जो अनादि और अनन्त है।

परिच्छेद-४१

साधकों को संकेत

योग के साधक तीन प्रकार के होते हैं: (१) आरुरुक्ष, जो योग के सोपान पर आरूढ़ होने का प्रयत्न कर रहा है; (२) गुंजान, जो योगाभ्यास में उत्साह-सहित लगा है, और (३) योगारूढ़, जो योग के उन्नत शिखर पर पहुँच चुका है।

आन्तरिक शुचिता की अपरिहार्यता

साधक आत्म-साक्षात्कार के बहुत उत्सुक होते हैं; परन्तु जब साक्षात्कार होता है, तब वे काँपने लगते हैं, भयभीत हो जाते हैं। वे ईश्वर के प्रकाशयुक्त तेज को सह नहीं सकते। वे इतने तुच्छ, मलिन और दुर्बल होते हैं कि महान् आभा के सामने, दिव्य तेज के सामने नहीं रह सकते। इस दिव्य प्रकाश को धारण करने के लिए उन्होंने पात्र को तैयार नहीं किया है। देखिए, विराट् के विश्व-रूप को देख कर अर्जुन कैसे भय से काँप गया था और भगवान् श्रीकृष्ण से विनय करने लगा था कि वे अपना वही सामान्य चतुर्भुज-रूप फिर दिखायें। इन चतुर्भुज से एकरसता, पूर्णता, शक्ति और ज्ञान इंगित होते हैं।

ब्रह्म की चर्चा करना कठिन है, उसे समझना और भी कठिन है तथा आध्यात्मिक साधना का अभ्यास करना तो इससे भी कठिन है। इसी से मिलते-जुलते विचार गीता अध्याय २, श्लोक २९ में मिलते हैं। यथा :

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन-
माश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति
श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।।

"कोई मनुष्य उस परमात्मा को आश्चर्य-सा देखता है, कोई उसे आश्चर्य-सा बताता है, कोई उसे आश्चर्य-सा सुनता है, फिर भी सुन कर भी उसे कोई नहीं समझता।"

ब्रह्म-प्राप्ति के लिए सूक्ष्म, शुद्ध और निर्मल मन, दृढ़ निश्चय, धैर्य, लगन और उत्साह की आवश्यकता हुआ करती है।

नैतिक शक्ति तथा साहस की अनिवार्य आवश्यकता

आध्यात्मिक साधक को साहस के साथ-साथ अन्यथा-कथन, मिथ्या अपवाद तथा अनबन का सामना करना पड़ेगा। जिन्होंने अपने साथियों से ऊँचा उठने की चेष्टा की है, उन्हें सदा ऐसा ही प्रारब्ध मिलता है। व्यक्ति को इसका सामना करने, अपनी स्थिति बनाये रखने और उसके चतुर्दिक् के लोग उसके सम्बन्ध में भले ही कुछ भी सोचें, कहें या करें; पर जिसे वह ठीक समझता है, उस पर टिका ही रहने के लिए नैतिक बल और साहस की आवश्यकता होती है। जो साधक समाज के नियमों का अतिक्रमण कर चुका है, उसे अपने अन्तःकरण और शुद्ध बुद्धि की आज्ञा के अनुसार चलना चाहिए। तभी वह आध्यात्मिकता में उन्नति कर सकता है।

जब किसी का यश और अधिकार फैलता है तो शत्रु भी आन-ही-आप बन जाते हैं। श्री शंकराचार्य के भी अनेक शत्रु थे। जंगलों में बसने वाले संन्यासियों के भी शत्रु हो जाया करते हैं। समृद्धिशाली और यशस्वी जनों के विरुद्ध

ईर्ष्यालु और क्षुद्र मन के मनुष्य अनेक प्रकार के उत्पात खड़े कर देते हैं। साक्षी-भाव रखें और शत्रु तथा मित्र के भाव से ऊपर उठें। उदासीन बन जायें। सहन-शक्ति को बढ़ायें। तभी आप इस संसार में सुखी रह सकते हैं।

जितने व्यष्टि मन हैं, उतने ही आध्यात्मिक साधन हैं। जो साधन एक मन के अनुकूल होता है, वह दूसरे मन के अनुकूल नहीं होता है। एक व्यक्ति के लिए राजयोग सुगम होगा, तो दूसरे के लिए ज्ञानयोग। एक को एक प्रकार का जप अच्छा लगेगा, तो दूसरे को दूसरे प्रकार का।

दैनिक आध्यात्मिक कार्यक्रम

पूर्णकालिक साधकों के लिए आध्यात्मिक दिनचर्या दी जाती है। जो कार्यालयों और व्यापार-घरों में काम करते हैं, वे अपनी सुविधा और समय के अनुसार इसमें आवश्यक परिवर्तन तथा हेर-फेर कर सकते हैं।

जप	प्रातः	४ घण्टे
ध्यान	रात्रि	४ घण्टे
स्वाध्याय		३ घण्टे
साक्षात्कार (यदि आवश्यक हो)		१ घण्टा
आसन तथा प्राणायाम	प्रातः	१ घण्टा
	रात्रि	१ घण्टा
भ्रमण		१ घण्टा
निद्रा		५ घण्टे
सेवा		१ १/२ घण्टा
स्नानादि		१ घण्टा
भोजन		१ घण्टा
विश्राम		१/२ घण्टा

योग : २४ घण्टे

किंचित् भिन्न सारणी

प्रारम्भ में चौबीसों घण्टे परमात्मा में मन लगाना कठिन होता है। ध्यान समाप्त होते ही मन भागने लगेगा और यथासम्भव अपनी पुरानी आदत के अनुसार कार्य करने की चेष्टा करेगा। इसकी चेष्टा रोकने के लिए आप क्या करेंगे?

आप इसे ग्रहण करने के लिए अन्य सात्त्विक पदार्थ दें। इसे भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थ चाहिए। अब कुछ घण्टों के लिए दार्शनिक पुस्तकें पढ़ें। जैसे की स्वाध्याय समाप्त हो, जो-कुछ आपने पढ़ा है, उसे अंकित कर लें। इसमें भी थोड़ा समय लगा सकते हैं। यह मन को शिथिल कर देगा। यह मनोरंजन का साधन बनेगा। आप दरिद्रों तथा रोगियों की सेवा में यथाशक्य समय लगा सकते हैं।

आपकी दिनचर्या के लिए कार्यक्रम नीचे देते हैं-

ध्यान	८ घण्टे
स्वाध्याय	४ घण्टे
लेखन	२ घण्टे
सेवा	२ घण्टे
भोजन, स्नान, व्यायाम	२ घण्टे
निद्रा	६ घण्टे
	योग : २४ घण्टे

सबसे अधर्मी मनुष्य भी सच्ची लगन से परमात्मा की भक्ति करके परमानन्द को प्राप्त कर सकते हैं। भगवान् ने (गीता : ९-३० में) कहा है, "यदि सबसे अधिक पापकर्म करने बाला भी अनन्य भाव से मेरी उपासना करता है, तो उसे साधु ही समझना चाहिए; क्योंकि उसने ठीक-ठीक निश्चय कर लिया है।" "तू निश्चय करके समझ कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता-प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति" (गीता : ९-३१)। फिर निराश होने का क्या कारण है? इसलिए उठो और कर्तव्य करो। ईश्वर निस्सन्देह ही आपके प्रयत्न में सफलता देगा। हममें से दुष्टतम व्यक्ति भी मोक्ष प्राप्त कर लेगा।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।
।।ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।

ॐ वह (परब्रह्म) पूर्ण है और यह (कार्यब्रह्म) भी पूर्ण है, क्योंकि पूर्ण से ही पूर्ण की उत्पत्ति होती है। उस पूर्ण (परब्रह्म) में से यह (कार्यब्रह्म) निकाल लेने पर भी वह पूर्ण (परब्रह्म) ही बचा रहता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।। हरि ॐ तत्सत् ।।

परिशिष्ट-१

मन के प्रति

जीवन-वृत्त

हे मन! हे माया की सन्तान !
आश्रय लेने के लिए
तुम सदा कोई आधार चाहते हो।
तुम्हारे दो रूप हैं :
शुद्ध मन और अशुद्ध मन।
दिक्काल और कारणत्व
तुम्हारे वैचारिक रूप हैं।
तुम साहचर्य नियम के द्वारा
कार्य करते हो;
तुम सोचते, अनुभव करते और जानते हो।

तुम आत्म-शक्ति हो।
तुम मनोमय-कोश हो।
तुम दर्पण-सदृश हो,
ब्रह्म तुममें प्रतिबिम्बित होता है।
तुम्हारी तुलना वृक्ष से की जाती है :
अहंकार उस वृक्ष का बीज है,
संकल्प उसकी शाखाएँ हैं,
बुद्धि उसका प्रथम अंकुर है।

तुम्हारे अन्य तीन रूप हैं-
चेतन मन,
अवचेतन मन,
तथा अतिचेतन मन।

तुम्हारी रचना
भोजन के सूक्ष्म अंश से हुई है।
तुम स्वभावों, संस्कारों और वासनाओं के
समूह हो।
तुम चतुष्टय हो;
मन संकल्प-विकल्प करता है,
बुद्धि निश्चय करती है,
चित्त सम्पादन करता है,
अहंकार अहमन्यता करता है।
चित्त मन के अन्तर्गत है।
बुद्धि अहंकार के अन्तर्गत है।
यह वृत्ति-भेद है।

तुम्हारा जन्म

तुम्हारे पिता परब्रह्म ने
एक बार एकाकीपन अनुभव किया।
वह अकेले थे, एक थे, अद्वय थे।
उन्होंने बहुलित होना चाहा,
सोचा, "एकोऽहं बहु स्याम्।
- एक हूँ अनेक बन जाऊँ।"
एक स्पन्दन हुआ
तुम्हारी माता में,
अभिन्न, अव्यक्त प्रकृति में,
सन्तुलन विक्षुब्ध हो उठा।
तत्काल तुम्हारा जन्म हुआ।
तुम्हारा शरीर शुद्ध सत्त्व से निर्मित था,
तुम 'मन' के नाम से विख्यात हुए।
विधाता ने तुम्हें चार कार्य विहित किये
अतः तुम चतुष्टय बने-
मन, चित्त, बुद्धि तथा अहंकार।
तुमने 'मैं' की अहमन्यता से,
प्रभु से अपने को वियुक्त कर लिया।
तुम इन्द्रियों की संगति में पड़ कर
ऐन्द्रिक पदार्थों में मग्न हुए
और अपने दिव्य स्रोत को विस्मृत कर दिया।
तुम पुत्र, सम्पत्ति, नाम, उपाधि तथा प्रतिष्ठा में
आसक्त हुए,
पूर्णतया सांसारिक बन गये।

तुमने अविद्या के कारण
शरीर, पुत्र, पत्नी, गृह तथा सम्पत्ति से
अपना दातात्म्य स्थापित किया।
यही तुम्हारे पतन का,
सभी प्रकार की विपत्तियों और कष्टों का
कारण है।
यही, संक्षेप में तुम्हारा जीवन-वृत्त है।
राग तथा शरीर के साथ
अपनी तादात्म्यता त्याग दो।
ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति द्वारा
अविद्या का विनाश करो;
तुम ब्रह्म से तद्रूप बन सकते हो,
और अपना दिव्य स्वरूप पुनः प्राप्त कर सकते हो।

तुम्हारा निवास-स्थान

हे भ्रमणशील मन !
तुम्हारे तीन निवास स्थान हैं।
जाग्रतावस्था में
तुम्हारा निवास-स्थान दक्षिण नेत्र
और मस्तिष्क है;
स्वप्नावस्था में तुम
कण्ठ की हिता-नाड़ी में निवास करते हो।
गम्भीर निद्रावस्था में तुम
हृदय की पुरीतत्-नाड़ी में निवास करते हो।
हठयोगियों के मान्यतानुसार
तुम्हारा स्थान आज्ञाचक्र है।
यदि व्यक्ति आज्ञा चक्र पर ध्यान केन्द्रित करता है
तो तुम सहज ही नियन्त्रित किये जा सकते हो।
साधकों को अब
तुम्हारा विश्राम-स्थल ज्ञात है;
वे निश्चय ही तुम तक पहुँच जायेंगे
और तुम्हें निष्ठुरतापूर्वक निष्कासित कर देंगे।
इन निवास-गृहों को खाली करो।
और ससीम ब्रह्मपुरी के
अपने आद्य गृह,
'ओंकार-भवन' को वापस चले जाओ।

तुम्हारा स्वरूप

तुम्हारी तुलना पारद से की जाती है;

क्योंकि तुम बिखरे रहते हो।
तुम्हारी तुलना मृग से की जाती है;
क्योंकि तुम अस्थिर हो।

तुम्हारी तुलना मर्कट से की जाती है;
क्योंकि तुम एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ पर कूदते रहते हो।
तुम्हारी तुलना पक्षी से की जाती है;
क्योंकि तुम पक्षी के सदृश उड़ते रहते हो।

तुम्हारी तुलना प्रेतात्मा से की जाती है;
क्योंकि तुम नर-पिशाच की तरह व्यवहार करते हो।
तुम्हारी तुलना वायु से की जाती है;
क्योंकि तुम वायु के तुल्य प्रचण्ड हो।

तुम्हारी तुलना यन्त्र से की जाती है;
क्योंकि तुम तब काम करते हो
जब आहार-ईंधन तुम्हें प्रदान किया जाता है।
तुम्हारी तुलना शिशु से की जाती है;
क्योंकि तुम्हें ताड़न की आवश्यकता होती है।

कठोपनिषद् में तुम्हारी तुलना
बागडोर से की जाती है;
क्योंकि जो बागडोर को कस कर पकड़ता है,
वह आनन्द-धाम में पहुँच सकता है।

तुम्हारी तुलना श्वान से की जाती है
जो गलियों में मटरगश्ती करता है
तुम्हारी तुलना पुष्प से की जाती है;
क्योंकि भक्त तुम्हें भगवान् को समर्पित करता है।
यही तुम्हारे लिए अच्छी प्रशंसोक्ति है।

तुम्हारे घनिष्ठ मित्र

हे मन! हे शान्ति के शत्रु !
तुम्हारे अनेक मित्र हैं।
वे विविध प्रकार से
तुम्हारी सहायता करते हैं।
अतएव तुम बहुत ही शक्तिशाली हो।
अहंकार तुम्हारा सर्वोत्तम मित्र है,
वह बहुत प्रभावशाली भी है।
वह तुम्हारा प्रधान सेनापति है।
काम तुम्हारा घनिष्ठ यार है,

वह तुम्हारा दक्षिण हाथ है,
वह सदा तुम्हारे साथ रहता है,
वह तुम्हारा एकनिष्ठ साथी है,
तुम उससे अनुरक्त रहते हो।
क्रोध तुम्हारा सौम्य मित्र है;
वह तुम्हारा युद्ध-मन्त्री है;
वह तुम्हारा वाम हाथ है;
वह तुम्हारी अत्यधिक सहायता करता है।
राग-द्वेष तुम्हारे पूर्ण परिचित हैं;
वे तुम्हें अतीव प्रिय हैं;
वे तुम्हारी महती सेवा करते हैं।
लोभ तुम्हारा सर्वोत्तम सुहृद है;
वह तुम्हारी छाया की भाँति
तुम्हारा अनुसरण करता है;
वह तुम्हारा आज्ञाकारी सेवक है।
अभिमान तुम्हारा पोषण करता है;
दम्भ तुम्हें मन्त्रणा देता है;
मोह तुम्हें परामर्श देता है;
ईर्ष्या तुम्हें प्रेरित करती है;
धूर्तता तुम्हें अनुप्राणित करती है:
वह तुम्हारी प्रचार-मन्त्री है।
कुटिलता तुममें शक्ति-संचार करती है;
अहंकार तुम्हें स्थूल बनाता है;
कपट तुम्हें पुनर्योवन प्रदान करता है।

तुम्हारे शत्रु

हे मन! तुम भयभीत क्यों होते हो?
अब अपनी शक्ति दिखाओ।
अब तुम टिक नहीं सकते।
अब आत्म-समर्पण करो
अन्यथा मारे जाओगे।
'वैराग्य', 'त्याग', 'संन्यास',
'सत्संग', 'साधना', 'योग'
शब्दों को जब तुम सुनते हो,
तब तुम थरथरा उठते हो।
वैराग्य तुम्हारा कट्टर शत्रु है;
यह तुम्हें काटने के लिए कुठार है।
तुम्हारा गला काटने को
त्याग खड्ग है।
तुम्हें भस्मीभूत करने को

संन्यास अणुबम है।
ध्यान तुम्हें भून डालेगा।
समाधि तुम्हें तलेगी
हे मन! नौ दो ग्यारह हो जाओ;
तुरन्त यहाँ से पलायन करो
यहाँ से चले जाओ।
रुको मत,
अपनी विध्वंस-लीला रोको।
अब तुम कुचल दिये जाओगे।
तुम्हारे दाँत निकाल दिये जायेंगे।
तुम उड़ा दिये जाओगे।
तुम चकनाचूर कर दिये जाओगे।
जप और कीर्तन भी
सैन्य-दल में सम्मिलित हो गये हैं।
प्राणायाम परिश्रमी है,
विचार उग्र है।
विवेक अध्यवसायी है।
तुम्हारी सफलता की किंचित् आशा नहीं है।
अपने मूल निवास-गृह में वापस चले जाओ
और शान्तिपूर्वक विश्राम करो।

तुम्हारी चालें

हे मन! हे आवारा!
इस दारुण संसार में
मैंने तुम्हारी चालें जान ली हैं,
अब तुम मुझे धोखा नहीं दे सकते हो।
तुम कल्पना के द्वारा
सांसारिक लोगों को प्रलोभित करते हो।
तुम उन्माद तथा मानसिक अशान्ति उत्पन्न करते हो।
तुम परदा भी डालते हो।
पदार्थों में कुछ भी नहीं है
तथापि तुम लोगों को ऐसा विश्वास कराते हो
कि ऐन्द्रिक विषयों में
तुम सदा विविधता चाहते हो।
तुम विवेक नष्ट करते हो।
आसक्ति, अनुराग, तुम कपटी हो।
मैं विवेकी हूँ।
मैं ब्रह्म में विश्राम करूँगा।
अत्यधिक सुख है।
तुम लोगों में विस्मृति उत्पन्न करते हो।

तुम बौद्धिक विकार उत्पन्न करते हो।
तुम ललचाते, प्रलोभित करते तथा मोहित करते हो।
तुम एकरसता में जुगुप्सा उत्पन्न करते हो।
तुम सदा विविधता चाहते हो
तुम मनोविकार उत्तेजित करते हो।
तुम सहज-वृत्तियों के द्वारा चाल चलते हो।
तुम इन्द्रियों को उत्तेजित करते हो।
तुम विवे नष्ट करते हो
आसक्ति, अनुराग,
प्रशंसा, सम्मान, नाम और यश
तुम्हारे लुभावने चारे हैं।
हे मन! मैं तुम्हारे साथ नहीं रह सकता हूँ।
मैं अब तुम्हारा संग सहन नहीं कर सकता हूँ।
तुम विश्वासघाती, कूटनीतिज्ञ हो।
तुम कपटी हो
तुम अब मेरे साथ खेलवाड़ नहीं कर सकते हो।
तुम्हारी चालें पर्याप्त हो चुकीं।
मैं विवेकी हूँमैं ब्रह्म में विश्वास करुँगा
मैं नित्य आनन्दमय हूँ।

तुम्हारे रहस्य

हे मन! हे आत्मघाती !
मैं अब तुम्हारे रहस्य जानता हूँ।
तुम्हारी कोई वास्तविक सत्ता नहीं है।
तुम मृग-मरीचिका की भाँति दिखायी पड़ते हो।
तुम ब्रह्म से, सर्वाधार से
अपनी शक्ति उधार लेते हो।
तुम केवल जड़ हो;
किन्तु बुद्धिमान् से प्रतीत होते हो।
जब तुम्हारा स्वरूप ज्ञात हो जाता है,
तो तुम चोर की भाँति छिप जाते हो;
जब तुम्हें फुसलाया जाता है;
तब तुम निश्चय ही प्रसन्न होते हो;
जब तुम पर सीधे आक्रमण किया जाता है,
तब तुम फुत्कार करते और अपना फण उठाते हो। तु
म पर प्रतिपक्ष-भावना-विधि से
सहज ही आक्रमण किया जा सकता है।
तुम संस्कारों को
अवचेतन में सुरक्षित रखते हो;
वही तुम्हारी शक्ति है,

यही तुम्हारा सुदृढ़ गढ़ है।
तुम अपने दुर्ग से बाहर आ कर
जीव पर आक्रमण करते हो
और तब अवचेतन में
अपने-आपको छिपा लेते हो
तुम गुणों के साथ खेलवाड़ करते हो।
तुम्हारे तीन रंग हैं-
श्वेत, रक्त तथा श्याम।
जब तुम सात्त्विक होते हो,
तब तुम्हारा रंग श्वेत होता है;
जब तुम राजसिक होते हो,
तब तुम रक्ताभ हो जाते हो;
जब तुम तामसिक होते हो,
तब तुम्हारा वर्ण श्याम होता है।
वासना और संकल्प
तुम्हारी प्राणाधार शक्ति हैं,
उनके ही कारण
तुम्हारा अस्तित्व है।
यदि इन्हें नष्ट कर दिया जाता है
तब तुम कहीं के नहीं रह जाते;
अब मैं तुम्हें पराजित करूँगा
तथा शाश्वत आनन्द प्राप्त करूँगा।

तुम्हारी बड़ी भूलें

हे मन! तुम्हारी महिमा वर्णनातीत है।
तुम्हारा सत्स्वरूप पूर्ण आनन्द है।
तुम सत्त्व से उत्पन्न हुए हो।
तुम स्फटिक तथा हिम के समान शुद्ध हो।
तुम्हारी शक्ति अनिर्वचनीय है।
तुम कुछ भी कर सकते हो।
तुम वस्तुओं को बना तथा बिगाड़ सकते हो।

रज और तम की संगति में पड़ कर
इन्द्रियों तथा विषयों से मैत्री कर
तुमने अपने को बिगाड़ डाला है।
तुम अपने दिव्य स्वरूप को पूर्णतः
विस्मृत कर चुके हो।
कुसंग ने तुम्हें दूषित कर डाला है।
कुवृत्तियों ने तुम्हें भ्रष्ट कर दिया है।

तुम एक बार काम से प्रलोभित हुए थे; अ
ब तुम काम के दास बन चुके हो।
तुम बहुत ही प्रशान्त, निश्चल तथा अविक्षुब्ध थे;
कामनाओं ने अब तुम्हें अशान्त बना डाला है।
तुम एक बार परम प्रभु के बहुत ही सन्निकट थे;
सांसारिकता ने तुम्हारे हृदय को अन्धा बना डाला है
और तुम्हें प्रभु से दूर ले गयी है।
सन्त-महात्माओं की संगति करो;
रज, तम और इन्द्रियों की संगति से दूर रहो।
कामनाओं के दूषणों से अपने को मुक्त करो।
तुम अपनी आद्य स्थिति को पुनः प्राप्त कर सकते हो;
तुम अपने मूल मधुर घर को पहुँच सकते हो।

तुम्हारी दुर्बलताएँ

रे मन! तुम इस भूलोक में सर्वाधिक मूर्ख हो!
तुम सुस्त, जड़मति तथा दुराग्रही हो;
तुमने ज्ञानीजनों की वाणी कभी नहीं सुनी;
तुम्हारे अपने ही मूर्खतापूर्ण ढंग हैं;
तुम सन्तों के सत्संग में सम्मिलित होना नहीं चाहते हो;
तुम महात्माओं को नापसन्द करते, उनसे घृणा करते
और उनकी निन्दा करते हो;
तुम समाज के तलछट हो;
तुम सदा गन्दगी में रंगरलियाँ करना चाहते हो।
तुम अपने दोषों का कभी पता नहीं लगाते,
किन्तु तुम दूसरों के दोषों को अतिरंजित करते हो;
तुम उन दोषों को अध्यारोपित भी करते हो।
तुम दूसरों की प्रशंसा कभी सुनना नहीं चाहते हो,
तुम आत्मश्लाघा चाहते हो।
तुम चतुराई से अपने दोषों को छिपाना चाहते हो।
तुम भगवान् के यशस्वी चरणों का चिन्तन कभी नहीं करते हो,
किन्तु तुम सभी प्रकार की निकम्मी चीजों के विषय में सोचते हो।
तुम जानते हो कि परम प्रभु के ध्यान द्वारा
तुम परमानन्द प्राप्त कर सकते हो;
तथापि तुम मटरगश्ती करने वाले गली के श्वान की भाँति
इतस्ततः मारे-मारे फिरते हो।
मैंने तुम्हें झिड़का और फटकारा;
मैंने तुम्हारी भर्त्सना की;
मैंने तुम्हें चेतावनी दी;
तथापि तुम अपनी ही आदतों से चिपके रहते हो।

तुम्हारी शक्ति

मन! तुम अशक्त नहीं हो।
तुम क्लीव नहीं हो।
तुम भिक्षुक नहीं हो।
तुम विषयों के दास नहीं हो।
तुम अशुद्ध नहीं हो।
तुम लिपिक नहीं हो।
तुम निर्धन नहीं हो।
तुम सर्वशक्तिमान् हो।
तुम ज्योतियों की ज्योति हो।
तुम सूर्यों के सूर्य हो।
तुम राजाओं के राजा हो।
भगवान् की समस्त सम्पत्ति तुम्हारी है।
तुम अमृत-पुत्र हो।
तुम अमरत्व की सन्तान हो।
तुम उपनिषद् के 'अमृतस्य सूनुः' हो।
तुम साक्षात् शुद्धता हो।
तुम साक्षात् बल हो।
तुम आनन्द के स्रोत हो।
तुम आनन्द-सागर हो।
तुम अमरता के सरोवर हो।
तुम सुख-शान्ति की सरिता हो।
तुम शान्ति का आवास हो।
तुम मधुर सुमेल हो।
अशान्ति तुम्हारा स्वरूप नहीं है।
तुममें अतीन्द्रिय-दृष्टि है।
अष्ट सिद्धियाँ तुम्हारी हैं।
नवनिधियाँ तुम्हारी हैं।
निर्णय की शक्तियाँ
विवेक, विचार,
चिन्तन, ध्यान,
परविचार-ज्ञान, दूरसंवेदन,
त्रिकाल-ज्ञान-
ये सब तुम्हारी ही हैं।
ब्रह्माकार-वृत्ति
तुमसे ही उद्भूत होती है।
अन्तःप्रज्ञा का द्वार तुममें है।

ज्ञान की कुंजी तुम्हारे पास है।
तुम प्रभुओं के प्रभु हो।

आनन्द का मार्ग

हे मन!
मैं तुम्हें
शाश्वत आनन्द का पथ प्रदर्शित करूँगा।
इस पथ पर निर्भीकतापूर्वक प्रयाण करो
और अपने आवास को सीधे चले जाओ।

अब विषय-पदार्थों का चिन्तन न करो।
इन्द्रियों की संगति न करो।
रज और तम से अपने को मुक्त कर लो।
वासनाओं और लालसाओं को मार डालो।
अहंता और ममता त्याग दो।
तुम्हारा आचरण पवित्र हो।
तुम्हारा व्यवहार भद्र हो।
तुम्हारी निष्ठा स्थिर हो।
अपने संकल्पों में दृढ़ रहो।
सद्गुणों का पोषण करो।
दैनिक आध्यात्मिक नित्यक्रम में लगे रहो।
'बीस आध्यात्मिक नियमों' का पालन करो।
प्रतिदिन दो घण्टे मन्त्र लिखो।
सत्यनिष्ठ तथा अहिंसक रहो।
दो सौ माला जप करो।
प्रतिदिन एक घण्टे तक कीर्तन करो।
गीता, भागवत,
उपनिषद् तथा योगवासिष्ठ का स्वाध्याय करो।
एकादशी को उपवास करो।
सरल सात्त्विक भोजन करो।
सभी विषयों में मिताचारी रहो।

प्रथम सगुण साक्षात्कार करो।
यह तुम्हें 'साधन-चतुष्टय' से सम्पन्न बनाने
तथा निर्गुण साक्षात्कार करने में समर्थ बनायेगा।
एकमात्र भक्ति ही ज्ञान प्रदान करेगी।

दिव्य जीवन की महिमा

हे मन! दिव्य जीवन की महिमा,

किंचित् सुनो।
तुम इसे अत्यधिक पसन्द करोगे;
तुम आनन्दित होगे और नृत्य करोगे।
दिव्य जीवन की महिमा
पिता की, तुम्हारे सृष्टिकर्ता की,
तुम्हारे प्रभु की, तुम्हारे मूल कारण और आधार की,
महिमा है।
तुम सदा शान्तिमय रहोगे।
तुम सदा आनन्दमय रहोगे।
तुम प्रभु के साथ एक बन जाओगे।
कोई चिन्ता, परेशानी और उत्सुकता
तुम्हें प्रभावित नहीं करेगी
तुम क्षुधा तथा पिपासा से
अस्पृष्ट रहोगे।

तुम भय, क्लान्ति और रोग से
मुक्त रहोगे।
कोई शत्रु तुम पर आक्रमण नहीं करेगा।
अणुबम तुम्हें स्पर्श नहीं कर सकेगा।
उष्णता तुम्हें उत्पीड़ित नहीं करेगी।
शीत तुम्हें संवेदनशून्य नहीं बनायेगा।
तुम गहरी निद्रा लोगे।
तुम निद्राहीन निद्रा का आनन्द प्राप्त करोगे।
तुम समाधि अनुभव करोगे।
वहाँ मत्कुण, वृश्चिक, सर्प, मशक नहीं हैं।
तुम अमरत्व-सुधा पान करोगे।

वहाँ न कोई जल-प्लावन है, न भूकम्प है,
वहाँ महामारी भी नहीं है।
वहाँ कोई साम्प्रदायिक संघर्ष नहीं है।
वहाँ गुण्डागिरी नहीं है।
वहाँ दंगा अथवा हड़ताल नहीं है।

वहाँ मधु की सरिताएँ प्रवाहित होती है।
तुम स्वर्गिक दिव्यान्न
तथा समस्त ऐश्वर्यों का आनन्द भोगोगे।
तुम परम प्रभु के साथ
अपना एकात्म्य अनुभव करोगे।
इस पार्थिव लोक में
तुम्हारा कभी भी पुनर्जन्म नहीं होगा।
तुम अमर हो जाओगे।

नामामृत-पान करो

हे जड़मति मन!
प्रमाद को दूर फेंको।
भगवान् हरि का ध्यान करो।
हे मन! भक्तों को सुखप्रद
भगवान् हरि के नाम के
उस आयुवर्धक अमर रसायन को,
उस भेषज को पान करो
जो मनुष्य के भव-भय
और उसकी समस्त भ्रान्तियों
को नष्ट करती है।

हे मन! श्रीकृष्ण के नाम की
दिव्य औषधि को पान करो,
जो दिव्य भाव-समाधि के
प्रवाह को उद्दीप्त करती है,
जो कुण्डलिनी जाग्रत करती
उसे सुषुम्ना नाड़ी से ऊपर उठाती है।
जो सहस्रार चक्र से
अमृत-स्राव में सहायक होती है।

हे मन!
विष्णु के नामामृत को पान करो।
भगवन्नाम-स्मरण के
अमृत से बढ़ कर
कोई रसायन नहीं है।
नाम तुम्हें उस पार
निर्भयता और अमरता के तट पर
पहुँचायेगा।

मन-मन्दिर

हे मन!
प्रभु का पावन-नाम पान करो।
कुसंगति से बच कर रहो।
चाय, मदिरा और धूम्रपान का परित्याग करो।
तम्बाकू तथा मूल्यवान् वस्त्र पहनना छोड़ दो।
साधारण वस्त्र पहनो।
'सादा जीवन उच्च विचार' रखो।
सन्त-महात्माओं और भक्तों का

सत्संग करो।
भगवच्चर्चा सुनो।
काम, क्रोध और लोभ को दूर भगा दो।
अपने आवास को पवित्र रखो।
तभी भगवान् तुम्हारे मन-मन्दिर में निवास करेंगे।
शुद्ध मन
प्रेम-गृह है।
ईर्ष्या और अभिमान के
बीज निकाल दो।
तभी मेरे प्रभु
तुममें निवास करेंगे।
प्रेम-ज्योति को प्रज्वलित कर
उनके राजप्रासाद को प्रकाशित करो।

सन्तों की सेवा करो

हे मूर्ख मन!
तुम विषय-पदार्थों में
कण-मात्र सुख की आशा नहीं रख सकते हो।
यदि तुम अब भी आशा रखते हो
तो सभी व्यर्थ की आशाएँ, त्याग दो।
यह जल को मन्थन कर
नवनीत प्राप्त करने का सा-प्रयास है।
यह चातक पक्षी का
धूम से जल पाने का प्रयत्न है;
उसके नेत्र बिगड़ जायेंगे।
यह मृगमरीचिका से जल पीने का-सा
अथवा सीपी से रजत प्राप्त करने-सा प्रयत्न है।
हरि के चरणों का चिन्तन करो,
उनके नाम का जप करो,
सन्तों और भक्तों की संगति में रहो।
नियमित कीर्तन करो,
प्रभु के रूप का ध्यान करो,
सन्तों की सेवा करो,
तुम आनन्द का उपभोग करोगे।

चेतावनी

हे मन! भक्ति-मार्ग तथा भक्तों की संगति का आश्रय लो।
तब श्री हरि तुम्हारे अन्तःकरण में अपना
पवित्र आवास बनायेंगे।

मनुष्य तथा पशुओं के दुरुपयोग को सदा के लिए त्याग दो;
महत्तम से ले कर क्षुद्रतम तक सभी से प्रेम करें,
उनकी प्रशंसा करें।
प्रभात-वेला में, हे मन! राम का दत्तचित्तता से चिन्तन करें;
तब धीमी किन्तु श्रव्य वाणी से राम के मधुर नाम का उच्चारण करें।
सदाचार तथा श्रेय को कभी एक क्षण के लिए भी न त्यागें;
भूलोक के सभी मानव धर्मपरायण व्यक्ति को
परम भाग्यशाली घोषित करते हैं।
हे मन! कुवासनाओं को कभी प्रश्रय न दो।
हे मन! इसी प्रकार पापमयी मनोवृत्ति कभी न रखो।
मन! नैतिकता तथा सदाचार का कभी परित्याग न करो;
तथा सदा अन्दर ही अन्दर सत्य के सार का अनुभव करो।
हे मन! तुम्हें सभी पापमय उद्देश्यों को त्याग देना चाहिए;
शुद्ध तथा सच्चे उद्देश्यों में आजीवन निष्ठा रखो।
ऐन्द्रिक सुखों की व्यर्थ कल्पना को त्याग दो;
इसमें आसक्ति जीवन-भर के लिए लज्जा
तथा अनन्त निन्दा लाती है।
हे मन! क्रोध न करो, यह अकथनीय हानियों से भरा हुआ है;
रंग-विरंगी मोहकता से अपनी कामनाओं को
कभी भी विकृत न करो।
तुम अपने जीवनपर्यन्त
अभिमान और ईर्ष्या को कभी भी, किंचित् भी
प्रवेश-मार्ग न दो।
जीवन में उदात्त आदर्श की कल्पना करो,
विश्व के सभी दुर्व्यवहारों को धैर्यपूर्वक स्वीकार करो।
तुम मधुर वाणी सदा बनाये रखो,
क्योंकि मधुरता मनुष्य के हृदय के अन्तर्तम
प्रकोष्ठ तक पहुँचती है।
हे मन, ऐसे भद्र तथा पवित्र कार्य ही करो;
जो तुम्हारे यश को मरणोपरान्त भी सदा बनाये रखें।
चन्दन की भाँति निःस्वार्थ सेवा में अपने को क्षीण कर डालो;
अपने अन्तर्तम हृदय में विश्व-कल्याण के लिए प्रार्थना करो।
हे मन! पार्थिव सम्पत्ति तथा निधि का लोभ न करो;
स्वार्थपरायण प्रकृति को,
हे मन! अत्यधिक निर्दयतापूर्वक बहिष्कृत कर दो।
मन के लोभ की यदि पूर्ति न हुई तो वह महान् शोक लाता है;
पापमय कर्मों से बाद में तीव्र पश्चात्ताप के कारण
हृद्-दाह उत्पन्न होता है।
अपने प्रेम को कभी-कभी भगवान् पर प्रवाहित करो;
जीवन के उतार-चढ़ाव को
शान्ति तथा निर्भीकता से स्वीकार करो।

भौतिक शरीर की वेदनाओं को नगण्य समझो;
क्योंकि तुम अपने सत्स्वरूप में प्रकृति के अधिपति हो।

हरि के चरणों में विश्राम करो

हे मन! तुम्हारा सदा ही यह सोचने का स्वभाव रहा है
कि पत्नी, सन्तान तथा बँगले
तुम्हारी परम सम्पत्ति हैं।
तुम परम प्रभु तथा सन्तों के सम्मुख
नत-मस्तक होने में असफल रहे हो।
हे मेरे मन! हरि के चरणों में विश्राम करो।
हे मन! यह शरीर निश्चय ही भूलुण्ठित होगा।
जीवन प्रतिक्षण क्षीण होता जा रहा है;
काल सर्प उसे निगल रहा है।
प्राण किसी भी क्षण विदा हो सकते हैं।
तुम निश्चिन्त तथा विनोदशील हो।
तुम मूर्ख और जड़मति हो।
हे मन! तुम अन्धे हो।
तुम केवल वस्तुओं के आडम्बर को देखते हो।
तुम नहीं देखते कि जीवन का अवसान निकट आ रहा है।
मृत्यु प्रच्छन्न रूप से निकट आती जा रही है।
हे मन! अपनी अज्ञान-निद्रा से जग जाओ
और परम कृपालु हरि का स्मरण करो।
वैभवपूर्ण हरि के अतिरिक्त
तुम्हारे लिए कोई आशा नहीं है।
भ्रान्ति के आवरण को विदीर्ण कर दो
और हरि की शरण लो।
शिवानन्द कहते हैं कि
तभी तुम भाग्यशाली होंगे।

तुम क्यों विस्मरण करते हो ?

हे मन! साधना करने पर भी
और महात्माओं के सत्संग-लाभ उठाने पर
तुम अब भी भ्रान्ति में ही पड़े हो।
हे मन! तुम यह क्यों भूलते हो
कि यह जगत् भगवान् हरि की अभिव्यक्ति है?
यद्यपि तुम जानते हो
कि सभी प्रभु हरि के रूप हैं
फिर तुम क्यों क्रुद्ध होते हो?
तुम हरि को पर्युषित कदली-फल अर्पित करते हो

जो समस्त विश्व को
सभी प्रकार के खाद्य-पदार्थों को देता है।
तुम प्रभु हरि को व्यर्थ ही
मिष्ठान्न, फल आदि नैवेद्य अर्पित करते हो।
उन्हें भक्ति-सुधा का भोग चढ़ाओ
और सदा-सर्वदा के लिए सुखी हो जाओ।

कामवासना का बलिदान चढ़ाओ

हे मन! तुम इतना क्यों चिन्तित होते हो?
सभी चिन्ताओं का परित्याग करो।
भगवान् हरि के नाम का जप करो।
एक नीरव स्थान में ध्यान में बैठो।
एकान्त में भगवान् की पूजा करो,
जिससे कि कोई भी जान न सके।
पूजा की सब धूमधाम से
तुम अभिमानी बनोगे।
तुम पशुओं की बलि क्यों देते हो?
अहंकार, राग-द्वेष और कामवासना की
बलि दो।
ढोलक, मृदंग और घण्टे की क्या आवश्यकता है?
अपने हाथों से तालियाँ बजाओ
और अपने मन को उनके चरणों में लगा दो।
तुम दीप, बत्ती और विद्युज्ज्योति से
उन्हें ज्योतित करने का क्यों प्रयास करते हो?
मन-रूपी रत्नजटित दीप को जलाओ
और इसकी द्युति को अहर्निश प्रसारित होने दो।

मन तथा इन्द्रियों के प्रति-१

हे मन! तुम मूर्ख हो। तुम मुझे इन्द्रियों की वीथि में घसीट लाये हो और कलंकित बनाया है। मैं भविष्य में तुम्हारी संगति नहीं करूँगा।

तुम आवारागर्द हो। तुम नटखट मर्कट हो। तुम गलियों में फिरने वाले श्वान हो। तुम गन्दगी में रंगरलियाँ मनाने वाले शूकर हो। तुम चरित्रहीन नीच हो। तुम घुमक्कड़ हो।

तुम आनन्द से उत्पन्न हुए हो। तुम्हारा कुल बहुत ही उच्च है। तुम्हारे पिता ब्रह्म हैं। तुमने एक बहुत ही उदात्त, प्रख्यात तथा सभ्य परिवार में जन्म लिया है, तथापि तुमने अपने को और अपनी निकम्मी संगति से मुझे भी भ्रष्ट कर डाला है। तुम्हारी माँ माया भी बहुत ही उच्च परिवार में उत्पन्न हुई है। वह ब्रह्म की पत्नी है।

तुम्हारा स्वभाव ही बाह्य ऐन्द्रिक विषयों की ओर भागना है। जिस प्रकार जल अपने स्वभाववश नीचे की ओर अप्रयास ही प्रवाहित होता है, वैसे ही तुम भी अपने स्वभाववश विनाशशील सांसारिक पदार्थों की ओर भागते हो। तुम्हें

धक्के, थपेड़े तथा ठोकरें लगती हैं, तथापि तुम उन्हीं पुरानी चीजों को बार-बार दोहराते रहते हो। तुम अभ्यासिक अपराधी के समान बन गये हो। कितनी ही मात्रा में परामर्श तथा भर्त्सना से तुम्हें कुछ लाभ नहीं हुआ है और न उससे तुम्हारा स्वभाव तथा आचरण ही सुधरा है। तुम्हें धिक्कार है।

अब मैं तुमसे अपने को पूर्णतया असम्बद्ध बना दूँगा। मैं तुम्हें अकेला छोड़ दूँगा। तुम जैसा भी चाहो वैसा कर सकते हो। तुमसे विदायी लेता हूँ। मैं अपने अमरत्व तथा शाश्वत आनन्द के मूल परम धाम को जा रहा हूँ।

हे कर्ण! तुम भी मन की संगति से बिगड़ चुके हो। तुम्हें दूसरों की निन्दा तथा संसार के सभी प्रकार के समाचार सुनने में अत्यधिक आनन्द मिलता है; किन्तु तुम भगवान् की लीला तथा कीर्तन, धार्मिक प्रवचन तथा उपदेश सुनने में इतना अधिक आनन्द नहीं लेते।

हे नेत्र! तुम्हें भगवान् के चित्रों, मन्दिर में प्रभु की मूर्तियों, सन्तों तथा महात्माओं के दर्शन करने में रुचि नहीं है; किन्तु तुम स्त्रियों को देखने में पूर्णतया तल्लीन रहते हो।

हे नासिके! तुम इत्रों, आमोहन (लैवेण्डर) आदि की सुगन्ध सूँघने में बहुत ही प्रसन्न होती हो; किन्तु तुम भगवान् को अर्पित पुष्पों आदि के मधुर सौरभ को सूँघने में कोई रुचि नहीं प्रदर्शित करतीं।

हे जिह्वे! तुम मिष्ठान्न, फल तथा अन्य सब स्वादिष्ट पकवान खाने में प्रसन्नता से नाचने लगती हो; किन्तु मन्दिर में भगवान् का चरणामृत तथा प्रसाद ग्रहण करने में तुम्हें प्रसन्नता नहीं होती।

हे त्वचे! तुम स्त्रियों तथा अन्य कोमल पदार्थों को स्पर्श करने में आनन्दित होती हो; किन्तु तुम्हें भगवान् तथा महात्माओं के चरण स्पर्श करने में आनन्दानुभूति नहीं होती।

हे वाग्-इन्द्रिय! तुम प्रतिदिन सभी प्रकार का अनाप-शनाप बकती हो। तुम दूसरों को गाली देने, अपवाद फैलाने तथा पैशुन्य में आह्लादित होती हो; किन्तु तुम्हें भगवन्नाम लेने, जप करने तथा गीता और अन्य पवित्र ग्रन्थों का स्वाध्याय करने में कुछ आनन्द नहीं मिलता।

हे हाथ! तुम उत्कोच लेने, दूसरों को मारने, दूसरों की सम्पत्ति चुराने तथा स्त्रियों को स्पर्श करने में बहुत प्रसन्न होते होः किन्तु तुम दान करने, निर्धनों तथा साधुओं की सेवा करने, भगवान् की पूजा करने तथा उन्हें पुष्प अर्पित करने में आनन्दित नहीं होते।

हे पाँव! तुम चलचित्रों, गोष्ठी-गृहों, आहार-गृहों (रेस्तराँ) तथा आवास-गृहों में जाने में आनन्द मानते हो; किन्तु तीर्थस्थानों, मन्दिरों तथा आश्रमों में जाने में तुम्हें आनन्द नहीं मिलता।

हे इन्द्रियो ! भविष्य में समुचित व्यवहार करो। यह तुम्हारे लिए अन्तिम अवसर है। अपने को सुधारो तथा सुयश कमाओ। यदि तुम भगवान् के लिए जीवन बिताओगी और उनकी परिचर्या करोगी तो तुम सुखी रहोगी। सभी दुःख समाप्त हो जायेंगे।

तुम सबको अन्तिम नमस्कार!

मन तथा इन्द्रियों के प्रति-२

हे मन!

सदा भगवान् हरि का स्मरण करो।
हरि के नाम का जप करो।
उनके चतुर्भुज रूप का ध्यान करो।
अपने मन को उनके चरण-कमलों में स्थिर करो।

हे जिह्वे!
सदा अच्युत के नाम और महिमा का गान करो।
कीर्तन और भजन करो। उनके प्रसाद तथा चरणामृत ग्रहण करो।

हे श्रोत्रो !
केशव की लीला
तथा हरि-कीर्तन श्रवण करो।

हे नेत्रो!
मुकुन्द की मूर्ति के दर्शन करो।

हे नासिके!
श्रीकृष्ण की पूजा में उपयुक्त
तुलसी-पत्र तथा पुष्पों की गन्ध लो।

हे हाथो!
गोविन्द को पुष्प अर्पित करो।
श्रीराम की आरती उतारो।
मन्दिर में झाड़ दो।
मन्दिर के दीपकों को साफ करो।
पूजा के लिए पुष्प तथा तुलसी-पत्र लाओ।
पाण्डुरंग की पूजा में
दान करो और सेवा करो।

हे पाँव!
मन्दिर के चतुर्दिक् प्रदक्षिणा करो।
विष्णु के मन्दिरों की तीर्थयात्रा करो।

हे शरीर!
भक्तों, सन्तों और गुरु की सेवा करो।
निर्धनों और रोगियों की सेवा करो।

भगवान् से प्रार्थना

हे करुणामय प्रभो!

किंचित् मेरी प्रार्थना सुनिए।
मन बहुत ही नटखट है।
यह अवज्ञाकारी है।
मैंने मन को फटकारा।
मैंने उसे चेतावनी दी।
मैंने उसे सपरामर्श दिया।
किन्तु उसके अपने ही ढंग हैं।
मैंने मन को स्पष्ट रूप से
अतिसार होने पर
लड्डू न खाने के लिए कहा।
प्रसव पीड़ा से पीड़ित महिला की तरह
उसने कहा, 'बहुत अच्छा।'
किन्तु वह पुनः लड्डू खाता है।
मैंने मन को
दूसरों की निन्दा न करने को कहा।
किन्तु वह अपना यह स्वभाव नहीं छोड़ता।
मैंने क्रुद्ध न होने को
मन को बार-बार कहा।
किन्तु वह कभी साधारण-सी बात पर
रुष्ट हो उठता है।
मैं मन को नियन्त्रित नहीं कर सकता।
आप अन्तर्यामी
और मन के प्रेरक हैं।
एकमात्र आप ही उसे नियन्त्रित कर सकते हैं,
कृपया आप इसे मेरे लिए करें।

परिशिष्ट-२

अतीन्द्रिय-संवेदन

व्यक्तित्व

सामान्य बोलचाल में जब कोई व्यक्ति यह कहता है कि डा. टैगोर का व्यक्तित्व अच्छा है तो उसके कहने का यह आशय होता है कि डा. टैगोर के बलवान्, हट्टा-कट्टा लम्बा आकार, सुन्दर रूप-रंग, मनोहर नासिका, तेज तथा चमकदार नेत्र, विस्तृत वक्षःस्थल, हृष्ट-पुष्ट शरीर, सुडौल अंग, घुँघराले बाल आदि-आदि हैं। एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से जो प्रभेद करता है, उसे व्यक्तित्व कहते हैं। वास्तव में, व्यक्तित्व इससे कुछ अधिक होता है। इसमें व्यक्ति के चरित्र, बुद्धि, उदात्त गुण, नैतिक आचरण, बौद्धिक उपलब्धियाँ, कुछ प्रभावशाली योग्यताएँ, विशेष अभिलक्षण, मधुर ओजस्वी वाणी आदि का समावेश है। ये सब वस्तुएँ मिल कर किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व संघटित करती हैं। इन सब वस्तुओं के योग से व्यक्ति का व्यक्तित्व बनता है। केवल शारीरिक अभिलक्षण व्यक्तित्व नहीं बना सकते।

जिसे आप छाता कहते हैं, वह वस्तुतः एक लम्बी छड़ी तथा काला कपड़ा और लोहे के पतले टुकड़े हैं। इसी भाँति जिसे आप 'व्यक्तित्व' कहते हैं, वह वस्तुतः बाह्य भौतिक शरीर, मस्तिष्क, स्नायु-तन्त्र तथा मन है जिसका अधिष्ठान मस्तिष्क है।

यदि कोई व्यक्ति अनेक लोगों को प्रभावित कर सकता है तो हम कहते हैं कि उस व्यक्ति का व्यक्तित्व चुम्बकीय है। पूर्ण विकसित योगी अथवा ज्ञानी इस संसार का महत्तम व्यक्तित्व है। भले ही उसकी लम्बाई छोटी हो, यह कुरूप भी हो और उसने चिथड़े पहन रखे हों; पर वह महान् व्यक्तित्व वाला है, महात्मा है। सहस्रों लोग उसे घेरे रहते हैं और सम्मान देते हैं। जिस व्यक्ति ने सदाचार अथवा यम-नियम के निरन्तर अभ्यास द्वारा नैतिक पूर्णता प्राप्त कर ली है, उसका भी व्यक्तित्व चुम्बकीय होता है। वह करोड़ों लोगों को प्रभावित कर सकता है; किन्तु वह उस ज्ञानी अथवा योगी से निम्न है जिसे पूर्ण आत्म-ज्ञान प्राप्त है।

डा. सैमुअल जान्सन की आकृति भद्दी थी, उनके तोंद थी तथा उनके अंग कुडौल थे; किन्तु वह उस युग के महत्तम व्यक्तित्व थे। वह न तो योगी थे और न ज्ञानी ही; किन्तु उनमें बौद्धिक योग्यताएँ थीं। वह महान् निबन्धकार थे। अँगरेजी भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था। वह अपनी शब्दाडम्बर शैली के लिए प्रख्यात है, यह जान्सोनियन अँगरेजी कहलाती है। जरा, उनकी कुछ पंक्तियों को देखें: "क्या आप मेरी उँगलियों को अपनी सुगन्धित अवतलता में प्रवेश करने और वहाँ उन कुछ चूर्णित परमाणुओं को निकाल लाने देने की कृपा करेंगे जो मेरे नासा-प्रोतुंग में आरोहण कर मेरे सभी प्राण-स्नायुओं में बड़ी गुदगुदाहट उत्पन्न कर रहे हैं?"

धनाढ्य व्यक्तियों में भी कुछ व्यक्तित्व होता है। यह 'घन-शक्ति' के कारण होता है। वे व्यभिचारी हो सकते हैं। व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण में धन का भी अपना भाग होता है। यह उसमें एक प्रकार से रंग भरता है। उनकी दानशील प्रकृति उनकी व्यभिचारी प्रकृति को आच्छादित कर देती है तथा चारों ओर से सौरभ बिखेरती है। प्रभु यीशु कहते हैं: "दानशीलता पाप-राशि को आच्छादित कर देती है।"

चरित्र व्यक्ति को सुदृढ़ व्यक्तित्व प्रदान करता है। लोग सच्चरित्रवान् व्यक्ति का सम्मान करते हैं। नैतिक व्यक्ति सर्वत्र ही सम्मान के अधिकारी होते हैं। जो ईमानदार, निष्कपट, सत्यशील, दयालु तथा उदार हृदय होता है, वह सदा लोगों के सम्मान का अधिकारी होता है तथा उन्हें प्रभावित कर सकता है। सत्त्वगुण व्यक्ति को दिव्य बनाते हैं। जो सत्य बोलता तथा ब्रह्मचर्य का पालन करता है, वह महान् तथा गतिशील व्यक्तित्व वाला बन जाता है। यदि वह एक शब्द भी बोले तो उसमें शक्ति होती है तथा लोग चुम्बकित हो जाते हैं। यदि व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास करना चाहता है तो चरित्र-निर्माण उसके लिए परम आवश्यक है। ब्रह्मचर्य चुम्बकीय व्यक्तित्व का मूल है। ब्रह्मचर्य के अभाव में सशक्त व्यक्तित्व का विकास सम्भव नहीं है।

व्यक्तित्व का विकास किया जा सकता है। इसके लिए सद्गुणों का अभ्यास अपरिहार्य है। व्यक्ति को सदा प्रफुल्ल रहने का प्रयास करते रहना चाहिए। एक रूखा तथा विषण्ण व्यक्ति लोगों को आकर्षित तथा प्रभावित नहीं कर सकता है। वह समाज में संसर्गज परजीवी है। वह सर्वत्र विषण्णता ही फैलाता है। सेवाभाव, नम्रता तथा आज्ञाकारिता से युक्त प्रफुल्ल प्रकृति वाला व्यक्ति लाखों लोगों को प्रभावित कर सकता है। 'सजातीय वस्तु सजातीय वस्तु को ही आकर्षित करती है' - यह नियम भौतिक तथा मानसिक जगत् में कार्य करता है। सशक्त व्यक्तित्व वाले व्यक्ति को लोगों को आमन्त्रित करने की आवश्यकता नहीं होती है। पुष्पों के खिलते ही जैसे मधुमक्खियाँ आ कर बैठ जाती हैं; वैसे ही लघुतर मन वाले लोग स्वेच्छा से ही सशक्त व्यक्तित्व वोले मनुष्यों की ओर आकर्षित होते हैं।

सशक्त मधुर वाणी, संगीत, फलित ज्योतिष, गणित-ज्योतिष, हस्तरेखा-शास्त्र, कला आदि का ज्ञान मनुष्य के व्यक्तित्व को बढ़ाते हैं। व्यक्ति को दूसरों के साथ व्यवहार करने तथा अपने को उनके अनुकूल बनाने का ज्ञान होना चाहिए। आपको मधुर तथा धीरे से बोलना चाहिए। इसका बहुत भारी प्रभाव पड़ता है। आपको भद्र, शिष्ट तथा सुसभ्य होना चाहिए। आपको दूसरों के साथ सम्मान तथा ध्यान के साथ व्यवहार करना चाहिए। जो दूसरों का सम्मान करता है, उसे सम्मान मिलता है। विनम्रता स्वयं ही सम्मान लाती है। विनम्रता एक ऐसा गुण है जो दूसरों के हृदय को अपने वश में कर लेती है। विनम्र व्यक्ति एक शक्तिशाली चुम्बक है।

आपको लोगों से मिलने का ढंग मालूम होना चाहिए। आपको मालूम होना चाहिए कि उनसे कैसे बातचीत की जाये तथा उनके साथ कैसा व्यवहार किया जाये। व्यवहार बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। एक उद्धत, जिद्दी तथा हठधर्मी व्यक्ति कभी भी सशक्त व्यक्तित्व वाला व्यक्ति नहीं बन सकता है। उसे सभी नापसन्द करते हैं।

आनन्दपूर्ण प्रकृति का विकास करें। सदा प्रफुल्लित तथा स्मितित मुखमुद्रा बनाये रखें। इससे आपको सुन्दर व्यक्तित्व प्राप्त होगा। लोग आपको बहुत पसन्द करेंगे। आपके वरिष्ठ आपसे अत्यधिक प्रसन्न रहेंगे। सौम्य प्रकृति तथा शालीन और निरहंकारपूर्ण स्वभाव रखें। आप सभी महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के साथ अपने समालाप में सफल होंगे। आप

अपने समालाप-काल में उनके साथ जो वार्ता करना चाहते हों, उसका विवरण लिख लें। एक छोटा स्मरण-पत्र अपनी जेब में रखें, विषय को भली-भाँति स्मरण रखें तथा धीरे-धीरे और नरमी से बोलें। तब वह व्यक्ति आपकी बातें धैर्यपूर्वक सुनेगा। अपनी वार्ता में उत्तेजित न हो उठें। घबड़ायें नहीं। निर्भीक रहें। व्यक्ति से जैसे ही मिलें, उसे निष्कपट भाव से सम्मान दें। विवाह की शोभायात्रा में गैस-बत्ती पकड़ने वाले लोकप्रसिद्ध व्यक्ति की भाँति सीधे न खड़े हों। धीरे से भावपूर्वक नतमस्तक हों। वह व्यक्ति अत्यधिक प्रसन्न होगा। उसे गम्भीर भाव के साथ आपका स्वागत करने में प्रसन्नता होगी तथा आपको अपने समालाप में सफलता प्राप्त होगी। महत्त्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में पहले वार्ता करें और पुनरीक्षण कर लें कि क्या जिन आठ विषयों पर आप वार्ता करना चाहते थे, वे सभी समाप्त हो गये हैं। पाश्चात्य जगत् में लोग व्यक्तित्व को पसन्द करते हैं; किन्तु भारत में लोग वैयक्तिकता पसन्द करते हैं और निश्चयपूर्वक कहते हैं: 'अहं अस्मि' - जिसका अर्थ है 'मैं अस्तित्ववान् हूँ"। वे आत्म-साक्षात्कार के लिए व्यक्तित्व को नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं।

चुम्बकीय व्यक्तित्व से सम्पन्न बनने का प्रयत्न करें। उस विलक्षण तथा रहस्यमय वैयक्तिक चुम्बकत्व से सम्पन्न बनने का प्रयास करें जो लोगों को आकर्षित तथा मोहित करता है। वैयक्तिक प्रभाव के रहस्य को समझें। अपनी संकल्प-शक्ति विकसित करें। स्रवित होने वाली शक्ति को सुरक्षित रखें। दृष्ट-पुष्ट तथा फूलता-फलता स्वास्थ्य तथा उच्च मानदण्ड के बल तथा ओज का उपभोग करें तथा प्रत्येक व्यवसाय में सामाजिक और वित्तीय सफलता प्राप्त करें। यदि आप वैयक्तिक प्रभाव के आश्चर्यजनक रहस्य को समझ सकते हैं तो आप अपने उपार्जन की क्षमता की वृद्धि कर सकते हैं तथा अधिक व्यापक और सुखमय जीवन यापन कर सकते हैं।

सशक्त व्यक्तित्व आपकी अत्यधिक मूल्यवान् सम्पत्ति है। यदि आप चाहें तो इसका विकास कर सकते हैं। लोकोक्ति है, "जहाँ चाह है, वहाँ राह है।" यह आज भी उतनी ही सत्य है जितनी कि आदिम काल में थी। नाम और यश का विजय-पत्र प्राप्त करें और गतिशील व्यक्तित्व के द्वारा जीवन में सफलता उपलब्ध करें। इसे आप सम्पन्न कर सकते हैं। आपको इसे अवश्य सम्पन्न करना चाहिए। अब आप विज्ञान को जान गये हैं। मैं आपकी सहायता करूँगा।

सुझाव की शक्ति

आपको सुझावों तथा मन पर पड़ने वाले उनके प्रभावों का सुस्पष्ट ज्ञान होना चाहिए। आपको सुझावों के प्रयोग में सावधान रहना चाहिए। कभी भी ऐसा अनुपयुक्तः सुझाव न दें जिसका किसी व्यक्ति पर विनाशकारी परिणाम हो। इससे आप उस व्यक्ति को सर्वाधिक क्षति पहुँचायेंगे और उसका अपकार करेंगे। बोलने से पूर्व भली-भाँति सोचें। अध्यापकों तथा प्राध्यापकों को सुझाव तथा आत्म-संसूचन का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। तभी वे छात्रों को सफल ढंग से शिक्षा दे सकते हैं और उन्हें उन्नत बना सकते हैं। दक्षिण भारत में जब बच्चे घर में रोते हैं तो माता-पिता उन्हें यह कह कर डराते हैं, "देखो बालू! दो आँखों वाला मनुष्य आ गया है। चुप रहो, नहीं तो मैं तुम्हें उस व्यक्ति को सौंप दूँगा।" "भूत आ गया है।" इस प्रकार के सुझाव बहुत ही विनाशकारी हुआ करते हैं। बालक भीरु बन जाता है। शिशुओं के मन लचीले, सुकुमार तथा नमनशील हुआ करते हैं। इस आयु में संस्कार अमिट रूप से अंकित हो जाते हैं। जब वे बड़े होते हैं तो संस्कारों को परिवर्तित करना अथवा उन्हें मिटाना असम्भव हो जाता है। जब शिशु बढ़ कर पूर्ण मनुष्य बन जाता है तो वह कायरता प्रदर्शित करता है। माता-पिता को चाहिए कि वे अपने बच्चे के मन में साहस अनुप्राणित करें। उन्हें कहना चाहिए: "यहाँ एक सिंह है। इस चित्र में सिंह को देखो। सिंह की भाँति दहाड़ो। साहसी बनो। शिवाजी, अर्जुन अथवा क्लाइव के चित्र को देखो। शूर-वीर बनो।" पाश्चात्य जगत् में अध्यापक बच्चों को युद्ध-क्षेत्र के चित्र दिखलाते हैं और कहते हैं: "जेम्स! इधर देखो। नेपोलियन का चित्रदेखा। उसकी अश्वारोही सेना को देखो। क्या तुम प्रधान सेनापति अथवा पृतनापति बनना नहीं चाहते हो ?" वे शिशुओं के मन में शैशवावस्था से ही साहस अनुप्राणित करते हैं। जब वे बड़े होते हैं तो अतिरिक्त बाह्य उद्दीपनों द्वारा ये संस्कार और शक्तिशाली बन जाते हैं।

चिकित्सकों को सुझाव-विज्ञान का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। निष्कपट, सहानुभूतिशील चिकित्सक दुर्लभ हैं। जिन चिकित्सकों को सुझाव का ज्ञान नहीं है, वे भलाई की अपेक्षा हानि ही अधिक पहुँचाते हैं। वे रोगियों को

अनावश्यक भयभीत करके कभी-कभी उन्हें मार डालते हैं। यदि साधारण प्रकार की थोड़ी खाँसी हुई तो चिकित्सक कहता है: "मेरे मित्र, आपको क्षय रोग हो गया है। आपको भुवाली, स्विट्ज़रलैण्ड या वियना जाना चाहिए। आपको ट्यूबरकुलिन अन्तःक्षेपण का क्रम चलाना चाहिए।" बेचारा रोगी भयभीत हो जाता है। उसमें यक्ष्मा का कोई भी लक्षण नहीं है। साधारण रोग है। यह शीत के प्रभाव से छाती का सामान्य प्रतिश्याय रोग है। रोगी चिकित्सक के अनुपयुक्त सुझाव के कारण भय तथा चिन्ता से वास्तव में यक्ष्माग्रस्त हो जाता है। चिकित्सक को कहना चाहिए था: "कुछ नहीं है। यह साधारण जुकाम है। कल तक आप बिलकुल ठीक हो जायेंगे। रेचक औषधि लें तथा गन्ध सफेदा के तेल का कश लें। अनुकूल भोजन करें। अच्छा होगा कि आज उपवास रखें।" ऐसा चिकित्सक भगवान् ही है। उसकी पूजा करनी चाहिए। चिकित्सक कहेंगे: "श्रीमान् ! यदि मैं ऐसा कहूँ तो मेरा व्यवसाय जाता रहेगा। मैं इस संसार में कैसे निर्वाह कर सकता हूँ?" यह भूल है। सत्य सदा विजयी होता है। आप सहानुभूतिशील तथा दयालु हैं; लोग आपके पास भागे आयेंगे। आपका व्यवसाय तेज होगा।

सुझाव से भी उपचार होता है। यह निरौषध चिकित्सा है। यह सुझाव का चिकित्सा विज्ञान है। अच्छे तथा शक्तिशाली सुझाव से आप कोई भी रोग ठीक कर सकते हैं। आपको यह विज्ञान सीखना होगा तथा इसका अभ्यास करना होगा। विषम-चिकित्सा (ऐलोपैथी), सम-चिकित्सा (होमियोपैथी), आयुर्वेदिक और यूनानी चिकित्सा पद्धति के सभी चिकित्सकों को इस विज्ञान को जानना चाहिए। वे इस पद्धति को अपनी पद्धति से संयुक्त कर सकते हैं। इस उपयुक्त संयोग से उनका व्यवसाय तेज होगा।

दूसरों से सुझावों से सहज ही प्रभावित न हो जायें। अपनी वैयक्तिकता का भाव बनाये रखें। एक शक्तिशाली सुझाव यद्यपि प्रयोग-पात्र को तत्काल प्रभावित नहीं करता, तथापि यह यथा-समय क्रियाशील होता है। यह कभी व्यर्थ नहीं जाता है।

हम सब सुझावों के संसार में रह रहे हैं। दूसरों के साहचर्य से हमारे चरित्र में नित्य अनजाने ही किंचित् परिवर्तन होता रहता है। हम जिनकी प्रशंसा करते हैं, अनजाने में ही हम उनके व्यवहार का अनुसरण करते हैं। हम प्रतिदिन जिन लोगों के सम्पर्क में आते हैं, उनके सुझावों को दिन-प्रति-दिन आत्मसात् करते रहते हैं। ये सुझाव हम पर प्रभाव डालते हैं। दुर्बल मन वाला व्यक्ति सबल मन वाले व्यक्ति के सुझावों को स्वीकार करता है।

सेवक सदा अपने स्वामी के सुझावों से प्रभावित रहता है। पत्नी अपने पति के सुझावों से प्रभावित रहती है। रोगी चिकित्सक के सुझावों से प्रभावित रहता है। छात्र अध्यापक से प्रभावित रहता है। प्रथा सुझावों की उपज ही है। जो वस्त्र आप धारण करते हैं; रीति, आचरण यहाँ तक कि जो भोजन आप ग्रहण करते हैं ये सब केवल सुझावों के परिणाम हैं। प्रकृति अनेक प्रकार के सुझाव देती है। द्रुत गति से प्रवाहित हो रही सरिताएँ, द्युतिमान् सूर्य, सुरभित पुष्प, उगते हुए वृक्ष-ये सब आपके अनवरत सुझाव दे रहे हैं।

प्राचीन काल के सभी ईशदूत (पैगम्बर) सम्मोहन-विद्या के ज्ञाता थे। वे संसूचन-विज्ञान से भली-भाँति अवगत थे। उनके शब्दों में आश्चर्यजनक शक्ति होती थी। उनके उच्चारित किये हुए प्रत्येक शब्द में मायावी शक्ति तथा विलक्षण आकर्षण होता था। सभी श्रोता मन्त्र-मुग्ध हो जाते थे। आध्यात्मिक उपदेशक दूसरों के मन में एक प्रकार का सम्मोहन उत्पन्न करता है। श्रोता उसके सुझावों के प्रभाव में आ जाते हैं।

प्रत्येक मुखरित शब्द में शक्ति होती है। शब्द में दो प्रकार के वृत्तियाँ होती हैं : शक्ति-वृत्ति तथा लक्षणा-वृत्ति। उपनिषदों में लक्षणा-वृत्ति स्वीकार्य है। 'वेदस्वरूपोऽहम्' का अर्थ यहाँ 'वेदों का मूर्त रूप' नहीं है। यहाँ लक्षणा-वृत्ति 'ब्रह्म' को अभिव्यक्त करती है जो एकमात्र उपनिषदों के स्वाध्याय द्वारा, एकमात्र शब्द-प्रमाण द्वारा उपगम्य है।

यहाँ शब्दों की शक्ति पर ध्यान दें। यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को 'साला' अथवा 'बदमाश' अथवा 'मूर्ख' कहता है तो वह तत्काल क्रोधावेश में आ जाता है। लड़ाई छिड़ जाती है। यदि आप किसी को 'भगवान्' अथवा 'प्रभु' अथवा 'महाराज' कह कर सम्बोधित करें तो वह अत्यधिक प्रसन्न हो उठता है।

सम्मोहन-विद्या

महत्तर मन लघुतर मन को प्रभावित कर सकता है। यह सम्मोहन-विद्या है। यह किंचित् भी नया विज्ञान नहीं है। यह अनादि है। यह अनादि काल से वर्तमान है। मेस्मर तथा ब्रेड ने ही इसका पश्चिमी देशों में प्रचार किया। हिन्दू ऋषि अति-विगत काल से ही इस विज्ञान को जानते थे। डेमास्थनीज़ तथा सुकरात, विश्वामित्र तथा पतंजलि महर्षि प्राचीन काल में ही सम्मोहन विद्या का प्रयोग करते थे। मैनचेस्टर के शल्य चिकित्सक जेम्स ब्रेड ने इस विज्ञान का नाम हिप्नोटिज़्म (Hypnaotism) रखा तथा पश्चिम में इस विज्ञान की स्थापना की। हिप्नोटिज़्म शब्द की उत्पत्ति यूनानी भाषा से हुई है जिसका अर्थ निद्रा होता है।

मेस्मर दार्शनिक, चिकित्सक तथा ज्योतिषी था। उसका जन्म १७८४ में हुआ और उसकी मृत्यु १८१५ में हुई। उसने प्राणी-चुम्बकत्व का सिद्धान्त प्रवर्तित किया। उसका विश्वास था कि मनुष्य में अलौकिक चुम्बकीय शक्ति है, जिससे वह दूसरे व्यक्तियों को स्वस्थ तथा प्रभावित कर सकता है। उसने इस शक्ति का उपयोग अनेक रोगों के उपचार में किया, मेस्मरिज़्म (सम्मोहन विद्या) उसके ही नाम से ज्ञात है।

सभी वाग्मियों के पास सम्मोहन शक्ति होती है। वे जाने अथवा अनजाने में श्रोताओं के मन को वश में कर लेते हैं। श्रोतागण वाग्मियों के शक्तिशाली भाषणों से प्रभावित हो जाते हैं। वे सब अस्थायी रूप से सम्मोहित से हो जाते हैं। संसार के सभी धर्मोपदेशकों तथा पैगम्बरों में यह शक्ति असाधारण मात्रा में थी।

सुझाव सम्मोहन की सर्वकुंजी है। सम्मोहक सुझाव देता है और प्रयोग-पात्र निर्विवाद रूप से व्यवहार करता है। लघुतर मन बृहत्तर मन की आज्ञाओं का असन्दिग्ध रूप से पालन करता है। सुझाव वह विचार है जिसे प्रयोगकर्ता प्रयोग-पात्र को सूचित करता है। सुझाव विज्ञान है। व्यक्ति को कौशलपूर्ण ढंग से सुझाव देने में बहुत ही निपुण होना चाहिए। हम सुझावों के जगत् में तथा सम्मोहन के मायावी आकर्षण तथा प्रभाव के क्षेत्रों में रहते हैं। सम्मोहन इस संसार में महान् शक्ति है। हम सब माया के जादू से सम्मोहित हैं। हमें आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिए अपना सम्मोहन दूर करना होगा। वेदान्त सम्मोहन दूर करने के लिए शक्तिशाली सुझाव देता है। सम्मोहन मन की एक अवस्था है जिसमें वाचिक तथा चाक्षुष सुझाव, चाहे सच हों अथवा न हों, सच के रूप में स्वीकार किये जाते हैं। इन सुझावों को कार्यान्वित करने की अप्रतिरोध्य इच्छा होती है। संकल्प-शक्ति तथा संसूचन शक्ति का परस्पर बहुत निकट का सम्बन्ध है।

प्रयोगकर्ता स्फटिक पर एकटक देखने तथा धारणा की अन्य विधियों की साधना द्वारा अपनी सम्मोहन शक्ति विकसित करता है। प्राणायाम भी इस शक्ति के विकास में बहुत सहायक होता है। ब्रह्मचर्य भी बहुत आवश्यक है। लम्पट व्यक्ति शक्तिशाली सम्मोहक नहीं बन सकता है।

व्यक्ति टकटकी लगा कर देखने अथवा सुझाव अथवा हस्त-लाघव से सम्मोहित किया जा सकता है। प्रयोगकर्ता पात्र के सम्मुख कुछ हस्तलाघव करता है और पात्र सम्मोहित अवस्था में चला जाता है। विपरीत दिशा में हस्तलाघव पात्र को सामान्य चेतना की दशा में ला देता है। यदि सम्मोहक शक्तिशाली व्यक्ति है तो कभी-कभी वह टोली अथवा समूह के बहुत से लोगों को सम्मोहित कर सकता है। जो व्यक्ति सम्मोहक के सुझावों का प्रतिरोध करता है, वह सहज में सम्मोहित नहीं किया जा सकता। यदि व्यक्ति सम्मोहक में विश्वास करता है और सोचता है कि वह सम्मोहित किया जा सकता है तो वह उसके सम्मोहन तथा प्रभाव में शीघ्र आ जाता है।

एक दूसरे प्रकार का भी सम्मोहन होता है जिसे मंच-सम्मोहन कहते हैं। इसमें सम्मोहक सारे श्रोताओं को सम्मोहित करता है तथा अनेक हस्तलाघव दिखाता है। वह एक स्त्री को एक छोटे से तंग सन्दूक में खड़ी हुई दशा में रखता है, उसके हाथों को बाँध देता है और सन्दूक को बन्द कर देता है और तब एक आरी से सन्दूक को काटता है। तत्पश्चात् वह टूटे हुए सन्दूक को खोलता है और वह स्त्री बिना किसी क्षति के बाहर आती है। इंग्लैण्ड में एक प्रख्यात फकीर अपने हाथ में रज्जु ले कर सभामंच पर चढ़ गया। उसने रज्जु को आकाश में फेंक दिया, उसके द्वारा आकाश में चढ़ गया और अदृश्य हो गया। यह मंच-सम्मोहन है। यह फकीर का प्रसिद्ध रज्जु हस्तलाघव है। कैमरे की पट्टिका में कोई छाप नहीं थी। तथापि यह हस्तलाघव ही है। एक सम्मोहक एक बालक को सम्मोहित कर उसके शिर और पाँवों को दो कुर्सियों पर रख देता है। तत्पश्चात् वह उसके शरीर पर भारी भार रखता है। बालक का शरीर नहीं झुकता। वह श्रोताओं को अपने दोनों हाथों की उँगलियों को जकड़ने के लिए कहता है और विद्युत् की प्रबल धारा उनसे प्रवाहित करता है। वे सब धारा के धक्के को वास्तव में अनुभव करते हैं। वह पहले अपने ही हाथों में विद्युत्-धारा उत्पन्न करता है और पूरी शक्ति से सोचता है कि धारा दूसरों के हाथों में प्रवाहित हो।

सम्मोहन बालकों के बुरे स्वभावों के सुधार तथा वातोन्माद तथा अन्य स्नायविक रोगों के उपचार में बहुत ही लाभदायक है। इससे अफीम तथा मद्यपान की आदत भी दूर की जाती है। सम्मोहन की इस शक्ति का गलत मार्गों में दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। इससे उसका अप्रत्याशित पतन होगा। जहाँ कहीं भी शक्ति होती है, उसके साथ-ही-साथ उसके दुरुपयोग का अवसर भी रहता है, प्रलोभन भी होते हैं। व्यक्ति को बहुत ही सावधान रहना चाहिए।

सम्मोहक घड़ी की सेकेण्ड की सुई को देखता है और सेकेण्ड की सुई तुरन्त रुक जाती है। वह प्रयोग-पात्र को घड़ी की सेकेण्ड की सुई को देखने को कहता है और उसके चिन्तन को बन्द कर देता है। उसके नेत्र निर्जीव से हो जाते हैं। सम्मोहक सम्मोहित पात्र के शरीर को हवा में उठाता है और एक बड़े लौह-चक्र के मध्य से उसे आकाश में चलाता है। सम्मोहित व्यक्ति की आँखों में पट्टी बाँध दी जाती है। वह भूमि पर टेढ़ी-मेढ़ी रीति से फैलायी हुई रज्जु पर चल सकता है। वह मोहरबन्द पत्र के अन्तर्विषय को पढ़ सकता तथा प्रश्नों के उचित उत्तर दे सकता है। यहाँ पात्र का अचेतन मन कार्य करता है। वह अपारदर्शी दीवाल से देख सकता है। सम्मोहन-विज्ञान के रहस्य चमत्कारिक हैं। इसका श्रेय प्रातःस्मरणीय श्री जेम्स ब्रेड को है।

दूर-बोध या दूर-संवेदन

दूर-बोध एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को विचार सम्प्रेषण है। जिस प्रकार ध्वनि वायवीय आकाश में गति करती है, उसी प्रकार विचार चिदाकाश में गति करता है। चतुर्दिक् आकाश का सागर है। चतुर्दिक् मन का भी सागर है। विचार का आकार, रंग, भार तथा रूप होता है। यह वैसे ही एक भौतिक पदार्थ है जैसे कि पेन्सिल। जब आपके मन में कभी उन्नतिकारी स्वरूप का कोई सद्विचार उठता है, तब यह बतलाना कठिन हो जाता है कि वह आपका अपना विचार है अथवा किसी अन्य व्यक्ति का विचार। दूसरे व्यक्तियों के विचार आपके मन में प्रवेश करते हैं।

दूर-बोध योगियों का बेतार का तार था। योगीजन दूर-बोध के द्वारा अपना सन्देश प्रेषित करते हैं। विचार विद्युद्गति से संचरण करते हैं जो अकल्पनीय है। कभी-कभी आप सायंकाल को अपने मित्र के विषय में इतनी तीव्रता से सोचते हैं कि आपको बड़े प्रातः ही उससे एक पत्र प्राप्त हो जाता है। यह अनजाना दूर-बोध है। आपके शक्तिशाली विचार ने यात्रा की और वह आपके मित्र के मस्तिष्क में तत्काल पहुँच गया और उसने तुरन्त और वहीं पर आपको उसका उत्तर दे दिया। इस भाँति विचार-जगत् में अनेक रोचक तथा आश्चर्यजनक बातें होती रहती हैं। सामान्यतया जिन लोगों ने दूर-बोध की शक्ति का विकास नहीं किया है, वे अन्धकार में टटोलते रहते हैं।

दूर-बोध एक मन का दूसरे मन के साथ संलाप है। शंकुरूप ग्रन्थि, जिसे तान्त्रिक जीव का अधिष्ठान मानते हैं, की दूर-बोध में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। वास्तव में यह शंकुरूप ग्रन्थि ही सन्देश ग्रहण करती है। वह (शंकुरूप ग्रन्थि)

मस्तिष्क अथवा पश्च-मस्तिष्क में मन-निलय के फर्श में अन्तःस्थापित स्नायविक द्रव्य है। अन्तःस्रावी ग्रन्थि वाहिनी-हीन है। इसका एक आन्तरिक स्राव होता है जो सीधे रुधिर में उँडेल दिया जाता है।

आरम्भ में दूर-बोध का अभ्यास थोड़ी दूरी से करें। रात्रि में अभ्यास करना प्रारम्भ में अधिक अच्छा होता है। अपने मित्र से रात्रि के १० बजे ग्रहणशील अभिवृत्ति तथा एकाग्र मन रखने के लिए कहें। उससे कहें कि वह वीरासन अथवा पद्मासन में नेत्र बन्द कर एक अन्धकारपूर्ण कक्ष में बैठे। ठीक नियत समय पर अपना सन्देश सम्प्रेषित करने का अभ्यास करने का प्रयास करें। आप जो विचार प्रेषित करना चाहते हैं, उन पर मन को संकेन्द्रित करें। अब पूरी शक्ति से इच्छा करें। विचार आपके मस्तिष्क से निकल कर आपके मित्र के मस्तिष्क में प्रवेश करेंगे। प्रारम्भ में इतस्ततः कुछ भूलें हो सकती हैं। जब आप अभ्यास में उन्नति करेंगे और प्रविधि को भली-भाँति जान जायेंगे तो सन्देशों के सम्प्रेषण तथा अभिग्रहण में आप सदा ठीक निकलेंगे। बाद में आप विश्व की विभिन्न दिशाओं में सन्देश अग्रेषित कर सकेंगे। विचार तरंगें तीव्रता तथा सामर्थ्य में परस्पर भिन्न होती हैं। प्रेषक तथा अभिग्राहक को अधिक तथा तीव्र एकाग्रता का अभ्यास करना चाहिए; तब सन्देशों के सम्प्रेषण में शक्ति तथा अभिग्रहण में स्पष्टता तथा परिशुद्धि होगी। आरम्भ में दूर-बोध का अभ्यास करना एक ही घर के एक कक्ष से निकटतम कक्ष में करें। यह विज्ञान बहुत ही प्रियकर तथा रोचक है। इसके लिए अध्यवसायी अभ्यास की आवश्यकता है। ब्रह्मचर्य बहुत ही आवश्यक है।

आप अन्य व्यक्ति को बिना किसी श्रव्य भाषा के ही प्रभावित कर सकते हैं। इसमें आवश्यकता है इच्छा-शक्ति द्वारा निर्दिष्ट विचारों के केन्द्रीकरण की। यह दूर-बोध हैं। यहाँ आपके दूर-बोध के अभ्यास के लिए एक प्रयोग दिया जा रहा है। दूर देश में रह रहे अपने मित्र अथवा चचेरे भाई का चिन्तन करें। अपने मन में उसके मुख का सुस्पष्ट रूप लाये। यदि आपके पास उसका छायाचित्र हो तो उस पर देखें और श्रवणीयता से उससे बातें करें। जब आप सोने जायें तो तीव्र एकाग्रता से चित्र का चिन्तन करें। वह आगामी दिन अथवा उसके लगभग आपको आकांक्षित पत्र लिखेगा। इसका प्रयोग स्वयं करके देखें। सन्देह न करें। आप आश्चर्यचकित रह जायेंगे। आपको दूर-बोध-विज्ञान में सफलता तथा दृढ़ विश्वास प्राप्त होगा। जब आप कुछ लिख अथवा समाचार-पत्र पढ़ रहे होते हैं तो कभी-कभी आपको अपने घनिष्ठ मित्र अथवा सम्बन्धी से सन्देश प्राप्त होता है। आप सहसा उसके विषय में सोचने लगते हैं। उसने आपको सन्देश भेजा है। उसने आपके सम्बन्ध में गम्भीरता से चिन्तन किया है। विचार-स्पन्दन प्रकाश अथवा विद्युत् से भी अधिक तीव्र गति से यात्रा करते हैं। ऐसे उदाहरणों में अवचेतन मन सन्देशों अथवा विचारों को ग्रहण करता और उन्हें चेतन मन को सम्प्रेषित करता है।

महासिद्ध पुरुष अथवा महात्माजन जो हिमालय की कन्दराओं में रहते हैं, दूर-वोध के द्वारा संसार में अधिकारी साधकों अथवा योगियों को अपने सन्देश प्रेषित करते हैं। जिज्ञासु या योगी उनकी आज्ञाओं का पालन करते हैं तथा चारों ओर उनके ज्ञान का प्रसार करते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि महात्मा मंच पर आयें तथा प्रवचन करें। वे प्रवचन करते हैं अथवा नहीं, इसका कोई महत्त्व नहीं है। उनका जीवन ही उपदेश का मूर्तरूप है। वे भगवत्साक्षात्कार की जीवन्त प्रतिभूति हैं। मंच पर प्रवचन करना द्वितीय कोटि के लोगों का कार्य है जिन्हें दूर-बोध का ज्ञान नहीं होता है। प्रच्छन्न योगी अपने आध्यात्मिक स्पन्दन तथा चुम्बकीय प्रभामण्डल से मंच के योगियों की अपेक्षा संसार की अधिक सहायता करते हैं। आजकल के लोग आशा करते हैं कि संन्यासी लोग मंच पर कार्य करें। वे उन्हें बाध्य भी करते हैं। चूँकि उनके मन कर्म-संस्कार से सम्पृक्त होते हैं, अतः वे ध्यानयोगी की शुद्ध निवृत्ति के वैभव, उपयोगिता तथा उदारता को जान तथा समझ नहीं पाते हैं। संन्यासियों का कार्य क्षेत्र अथवा अधिकार क्षेत्र सर्वथा भिन्न है। वे सभाओं तथा मण्डलों के सभापति नहीं बन सकते हैं। उनके क्षेत्र का स्वरूप ब्रह्माण्डीय होता है। उनका क्षेत्र आध्यात्मिक है जिसका सम्बन्ध आत्म-विज्ञान से है। मैं भगवान् श्रीकृष्ण के शब्दों को उद्धृत करता हूँ:

लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्।।

"हे पूतात्मा! इस संसार में निष्ठा दो प्रकार की है, इसे मैंने पूर्व में बतलाया है अर्थात् ज्ञानाधिकारियों के लिए सांख्ययोग तथा कर्मी लोगों के लिए निष्काम कर्मयोग" (गीता : ३-३)। यदि संन्यासियों का लोप हो जाये तो भारत का गौरव जाता रहेगा। वे भारत से कभी भी विलुप्त नहीं हो सकते हैं। उनके कोशों, स्नायुओं तथा ऊतकों में त्याग तथा संन्यास के संस्कार अधिश्लिष्ट हैं। बौद्धों के यहाँ भिक्षु होते हैं। मुसलमानों के यहाँ फकीर होते हैं। ईसाइयों के अपने पुरोहित, पादरी तथा श्रद्धेय आचार्य (फादर) होते हैं। संसार के प्रत्येक धर्म में त्याग-भावना वाले लोग होते हैं। प्रत्येक धर्म में लोगों का एक समूह ऐसा होना चाहिए जो भगवद्-ध्यान के लिए पूर्णतया समर्पित हो। गृहस्थों का यह कर्तव्य है कि वे उनकी आवश्यकताओं का ध्यान रखें। उन्हें उनके आशीर्वाद प्राप्त होंगे। ये ही लोग हैं जो निवृत्ति मार्ग का जीवन यापन करते, योग में खोज कर सकते तथा विश्व को नवीन सन्देश दे सकते हैं। ये ही लोग सामान्य रूप से विश्व की वास्तविक सहायता तथा लोक-कल्याण-कार्य कर सकते हैं।

अतीन्द्रिय-दृष्टि

अतीन्द्रिय-दृष्टि अन्त सूक्ष्म नेत्र अथवा अतीन्द्रिय नेत्र के द्वारा सुदूर के पदार्थों का अवलोकन है। जैसे आपके भौतिक शरीर में भौतिक नेत्र हैं, वैसे ही सूक्ष्म लिंग-देह में इन इन्द्रियों के सूक्ष्म प्रतिरूप हैं। योगी अथवा तान्त्रिक इन आभ्यन्तर इन्द्रियों को धारणा के अभ्यास द्वारा विकसित करता है। वह अतीन्द्रियदर्शी दृष्टि विकसित करता है। वह सुदूर देशों के पदार्थों को देख सकता है। यह सिद्धि या शक्ति दूर-दृष्टि कहलाती है।

जैसे प्रकाश की रश्मियाँ काँच में प्रवेश कर जाती हैं, वैसे क्षरश्मियाँ ठोस अपारदर्शी पदार्थों में प्रवेश कर जाती हैं उसी प्रकार योगी अपने आभ्यन्तर अतीन्द्रिय नेत्र से ठोस दीवार से पदार्थों को, मोहरबन्द लिफाफे की तथा भूमि के नीचे गुप्त निधि की अन्तर्वस्तु को देख सकता है। यह अतीन्द्रिय-दृष्टि अन्तःप्रज्ञा की दृष्टि अथवा दिव्य दृष्टि या ज्ञान-चक्षु है। व्यक्ति को इस आभ्यन्तर दृष्टि को धारणा द्वारा विकसित करना होता है। जैसे अणुवीक्षण यन्त्र छोटे कोशाणुओं, जीवाणुओं आदि को आवर्धित करता है, उसी भाँति वह योगी भी अपने आभ्यन्तर नेत्र से सूक्ष्म जगत् के पदार्थों को बड़ी स्पष्टता से देख सकता है तथा आभ्यन्तर सूक्ष्म वीक्ष के विशेष संकेन्द्रीयकरण द्वारा उन्हें आवर्धित भी कर सकता है।

वह संकल्प-बल, दृढ़ इच्छा-शक्ति तथा विचार द्वारा एक सूक्ष्म नली की रचना करता है और इस सूक्ष्म नली के द्वारा वह दूर के पदार्थों को देखता है। ऐसा हो सकता है कि प्रारम्भ में दृश्य सुस्पष्ट न हो। जैसे नवजात शिशु सीखता है, वैसे ही वह भी प्रारम्भ में सीखता है। वह अपने अभ्यास में ज्यों-ज्यों प्रगति करता है, त्यों-त्यों उसकी आभ्यन्तर दृष्टि सुस्पष्ट होती जाती है। एक अन्य विधि भी है। योगी सूक्ष्म लोक की यात्रा करता है और अपने इस सूक्ष्म लोक के यात्रा-काल में वह पदार्थों को अनजाने में ही देखता है।

जैसे सूर्य-रश्मियाँ आकाश में यात्रा करती हैं, वैसे ही सूक्ष्म प्रकाश की किरणें आश्चर्यजनक वेग से यात्रा करती हैं। वे सूक्ष्म नेत्रों द्वारा पकड़ी जाती हैं। आपमें से प्रत्येक के पास ये सूक्ष्म इन्द्रियाँ हैं; किन्तु कुछ ही लोग बोधपूर्वक इनका विकास करते हैं। अतीन्द्रियदर्शी आकाशीय अभिलेखों की जाँच-पड़ताल करके अतीत की घटनाओं को देख सकता है और उसे त्रिकाल ज्ञान भी हो सकता है। शक्ति की मात्रा पृथक् पृथक् व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न होती है। उन्नत अतीन्द्रियदर्शी बहुत ही दुर्लभ हैं।

अतीन्द्रिय-श्रवण

अतीन्द्रिय-श्रवण सूक्ष्म श्रोत्रों द्वारा सूक्ष्म लोक के शब्दों का श्रवण करना है। इसकी प्रक्रिया अतीन्द्रिय-दृष्टि की प्रक्रिया के समान ही है। सूक्ष्म शब्द-प्रकम्पन सूक्ष्म श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा पकड़े जाते हैं। अतीन्द्रियदर्शी का अतीन्द्रिय श्रोता होना आवश्यक नहीं है। ये दो भिन्न शक्तियाँ हैं।

महर्षि पतंजलि इस दूर-श्रवण की शक्ति को विकसित करने की विधि बतलाते हैं। "श्रोत्राकाशयोः सम्बन्धसंयमाद्दिव्यं श्रोत्रम् - श्रोत्र और आकाश के सम्बन्ध में संयम करने से दिव्य श्रोत्र होता है" (पातंजल योगसूत्र : ३-४१)। धारणा तथा ध्यान का एक विषय में होना संयम कहलाता है।

सभी पितृलोकवासियों को यह सिद्धि प्राप्त है। उनके वंशज जब इस लोक में श्राद्ध और तर्पण करते हैं तो वे इन शब्दों अतीन्द्रिय-श्रवण की शक्ति के द्वारा श्रवण करते और अत्यन्त प्रसन्न होते हैं।

ये अतीन्द्रिय-संवेदन की सिद्धियाँ धारणा के उप-फल हैं। जैसे अनेक प्रकार के तारकोल व्युत्पन्न और अनेक प्रकार के भूतेल सम्पाक होते हैं, वैसे ही ये सिद्धियाँ योगी के धारणा करने पर उसमें अभिव्यक्त होती हैं। ये सब अध्यात्म-पथ में बाधाएँ हैं। साधक को इनकी उपेक्षा करनी चाहिए और वैराग्य विकसित करना चाहिए। तभी वह लक्ष्य तक पहुँच पायेगा।

अतीत के सभी शब्द-कम्पन आकाशीय अभिलेख में विद्यमान है। योगी इन शब्दों को भली प्रकार सुन सकता है। वह शेक्सपियर, जान्सन, वाल्मीकि, विश्वामित्र आदि के शब्दों को सुन सकता है। जैसे आप पचास वर्ष पूर्व मृत गायक के संगीत और गायन को अब भी ग्रामोफोन रेकार्ड से सुन सकते हैं, वैसे ही योगी भी सूक्ष्म श्रोत्र तथा आकाशीय अभिलेख के सम्बन्ध में संयम करके अतीत के उन व्यक्तियों के शब्दों को सुन सकता है। जैसे आपके बालकपन के संस्कार आपके मस्तिष्क तथा अवचेतन मन (चित्त) में बने रहते हैं, वैसे ही प्राचीन काल के शब्दों के चिह्न आकाशीय अभिलेख में बने रहते हैं। व्यक्ति को केवल योगियों की प्रविधि ज्ञात होनी चाहिए। जैसे कार्यालय में एक अनुभवी अभिलेख-पाल कोई भी पुराना अभिलेख अल्पकाल में ही निकाल लाता है, वैसे ही योगी भी पर्याप्त प्राचीन काल के शब्द पल-भर में सुन सकता है।

परिशिष्ट-३

मनोनाश

मन आत्म-शक्ति है। मन वासनाओं और संकल्पों का समूह है। मन राग-द्वेष का समूह है। मन का विनाश ही मनोनाश है।

मनोलय मन का अस्थायी विलयन है। यह मोक्ष प्रदान नहीं कर सकता है। मन पुनः वापस आ सकता है और ऐन्द्रिक विषयों में विचरण कर सकता है। एकमात्र मनोनाश ही मोक्ष प्रदान कर सकता है।

विचार

मन को कैसे शुद्ध तथा नियन्त्रित किया जाता है और इसकी गति-विधियों को कैसे रोका जाता है तथा इसका विनाश कैसे किया जाता है? यहाँ कुछ लाभदायक तथा व्यावहारिक सूत्र हैं। मन को विचार अथवा 'मैं कौन हूँ' की जिज्ञासा से नियन्त्रित तथा नष्ट किया जा सकता है। यह सर्वोत्तम तथा सर्वाधिक प्रभावशाली विधि है। यह मन को नष्ट करेगी। यह वेदान्त की विधि है। दार्शनिक चिन्तन के द्वारा मन की अवास्तविकता का अनुभव करें।

अहं को मारें

अहंकार-भावना का उन्मूलन करें। अहं मन-रूपी वृक्ष का बीज है। 'अहं' का विचार सभी विचारों का स्रोत है। सारे विचार इस क्षुद्र 'मैं' पर केन्द्रित हैं। पता लगायें कि यह श्रुद्र 'अहं' क्या है? यह क्षुद्र 'अहं' असार अनस्तित्व में क्षीण हो जायेगा। यह अनन्त 'मैं' अथवा अहंकार के स्रोत परब्रह्म में विलीन हो जायेगा।

अहंकार-रूपी मेघ के तिरोभाव होने पर आत्म-साक्षात्कार का सूर्य पूर्ण रूप से दृष्टिगोचर होता है।

वैराग्य

वैराग्य मनोनाश की दूसरी विधि है। यह वैषयिक जीवन के दोषों से अवगत होने पर ऐन्द्रिय भोग-पदार्थों के प्रति अरुचि है। विषय विनाशशील हैं। इन्द्रिय-भोग क्षणिक तथा भ्रामक हैं।

अभ्यास

अभ्यास एक अन्य विधि है। मन को ब्रह्म पर केन्द्रित कर उसे एकाग्र करें। उसे स्थिर करें। अभ्यास अविरत ध्यान है। इससे समाधि अधिगत होती है।

असंग

असंग मन को नष्ट करने के लिए खड्ग है। मन को पदार्थों से दूर हटा लें। विलग करें। संलग्न करें। इसे विषयों से विलग करें और प्रभु में संलग्न करें। इसे बारम्बार करें। संसार की अनुभूति के बीज अथवा अंकुर की सत्त्व-रूपी वासना असंग-रूपी अग्नि से ही नष्ट की जा सकती है।

वासना-क्षय

वासना-क्षय एक अन्य विधि है। वासना कामना को कहते हैं। कामनाओं के त्याग से वासना-क्षय होता है। इससे मनोनाश होता है। विषय-सुख की कामना बन्धन है, उसका त्याग मोक्ष है। वासना मन का सर्वाधिक सारभूत स्वरूप है। मन और अहंकार पर्यायवाची है।

प्राणायाम

प्राण के स्पन्दन से मन में गति होती है। यह मन को जीवन प्रदान करता है। प्राण मन के कार्यकलाप को रोकता है; किन्तु यह विचार की भाँति मन को समूल नष्ट नहीं करता है।

विचारों का नियन्त्रण

विचारों अथवा संकल्पों का नियन्त्रण करें। कल्पना अथवा दिवास्वप्न का परिहार करें। मन नष्ट हो जायेगा। संकल्पों का उन्मूलन ही मोक्ष है। कल्पना के अभाव में मन नष्ट हो जाता है। संसार-भ्रान्ति की अनुभूति आपकी कल्पना के कारण ही होती है। जब कल्पना को पूर्णतया रोक दिया जाता है तो यह लुप्त हो जाती है।

त्याग

सम्पत्ति का मानसिक त्याग अन्य विधि है। विचार-निलम्बन समाधि की अवस्था में रहना यदि आप सीख जायें तो परमानुभूति का भी साक्षात्कार किया जा सकता है।

सन्तुलित रहें

समचित्तता की प्राप्ति अन्य विधि है। सुख-दुःख, शीत-उष्ण आदि में सन्तुलित रहें।

जो मन का अतिक्रमण कर चुका है और अपने सच्चिदानन्द आत्मा में विश्राम लेता है, एकमात्र वह ही चिरन्तन शान्ति और शाश्वत आनन्द का उपभोग कर सकता है।

भक्ति तथा सेवा

जप, कीर्तन, प्रार्थना, भक्ति, गुरु की सेवा तथा स्वाध्याय भी मनोनाश के साधन हैं।